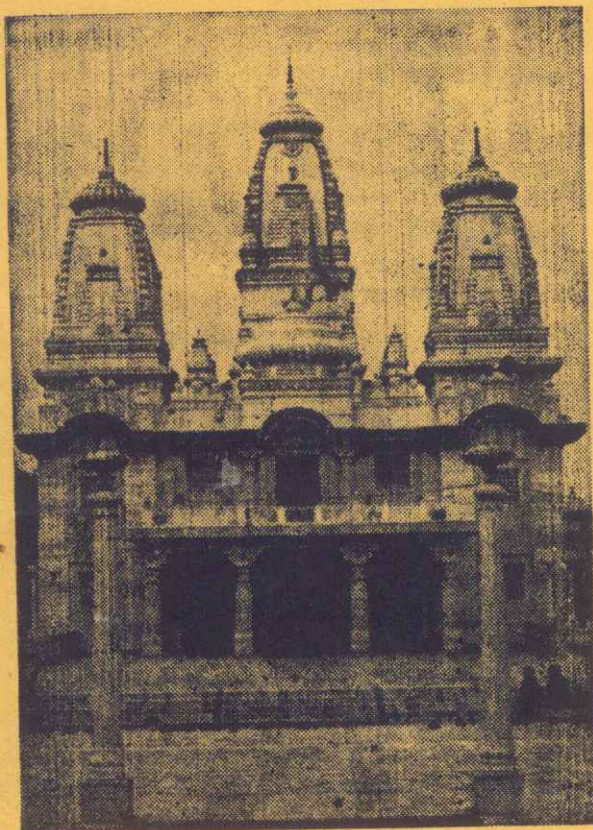


गोरक्षदर्शन



गोरखनाथ-मन्दिर, गोरखपुर

60५००

योगसाधन

द्विजसेवितशाखस्य श्रुतिकल्पतरोः फलम् ।

शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमाः ॥

वेद कल्पतरु हैं । जिस तरह कल्पतरु की शाखायें पक्षियों के आश्रयस्थान हैं, ठीक इसी तरह द्विजों (पण्डितों, विद्वानों) द्वारा वेद की शाखाओं, प्रतिशाखाओं का परिशीलन किया जाता है । वेदरूपी कल्पतरु का फल योग है । हे सत्पुरुषो ! इसका सेवन (साधन) करो । यह योग संसार के त्रय—आधिदैहिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ताप का शमन (नाश) कर देता है । इसके अभ्यास अथवा साधन से सांसारिक दुःख अथवा भवबन्धन समाप्त हो जाता है, स्वरूप बोध प्राप्त होता है ।

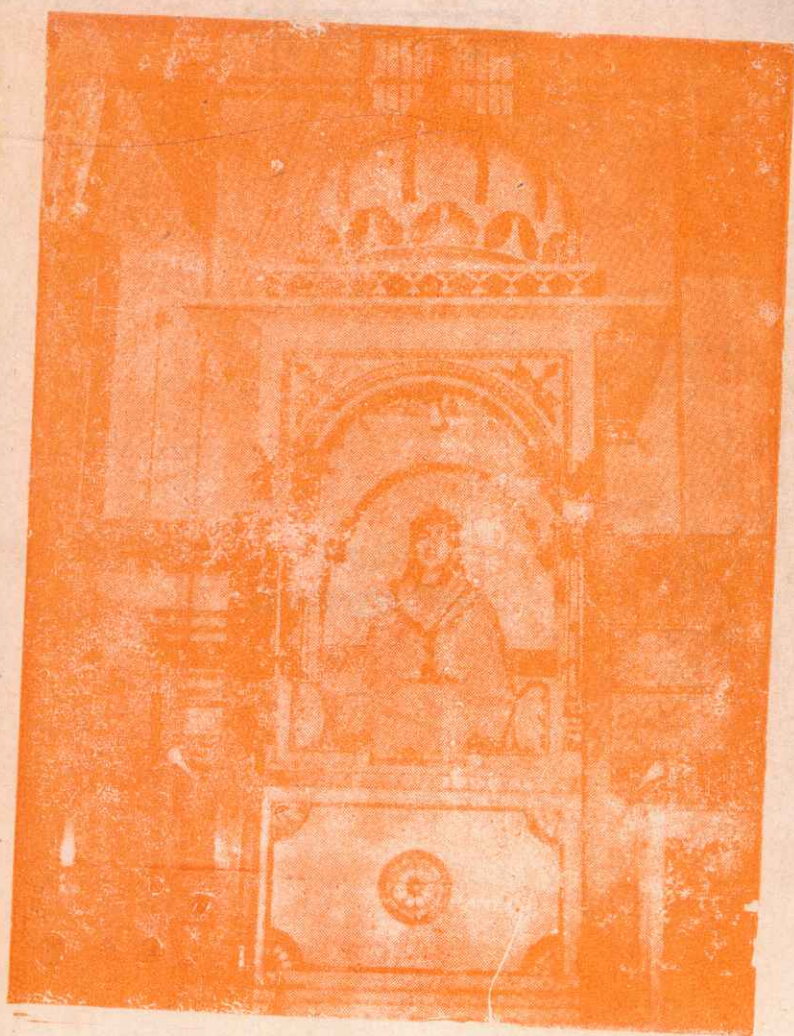
[महायोगी गोरखनाथ]

(गोरक्षशतक—६)



अलखनिरंजन

क्षेत्रों व.
) द्वारा
ग है।
धन)
क ओ
अथव,
वरूप
थ]
-६)



भगवान् गोरक्षनाथ

गोरक्षदर्शन

प्रस्तुति :
विजयपाल सिंह

गोरखनाथ-मन्दिर, गोरखपुर

प्रकाशक
श्री गोरखनाथ - मन्दिर
गोरखपुर

पहला संस्करण
केवल 2000 प्रतियाँ
सं० 2049 वि०

मूल्य: ₹ 40.00

प्राप्ति-स्थान :
गोरखनाथ - मन्दिर
गोरखपुर

मुद्रक :
दी इउरेका प्रिंटिंग वर्क्स प्रा० लिमिटेड
गीता प्रेस रोड, गोरखपुर
फोन : 335310

सम्बोधन

आपा भाजिबा सतगुर भोजिबा
जोग पंथ न करिबा हेला ।
फिरि फिरि भनिषा जनम न पायबा
करिलै सिध पुरिस सूं मेला

अहंकार मिटा देना चाहिये । सद्गुरु की खोज करनी चाहिये । योगमार्ग की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। बार-बार मनुष्य का जन्म नहीं मिलता। सिद्ध पुरुष का साक्षात्कार कर लेना चाहिये ।

॥ गोरखबानी - 203 ॥

आशीर्वचन

नाथयोग अपने आप में समग्र जीवन का आध्यात्मिक, यौगिक धरातल पर अत्यन्त मौलिक सार्वभौम व्याख्यात्मक व्यावहारिक दर्शन है। नाथयोगामृत परम शक्तिमान् भगवान् शिव द्वारा जगदीश्वरी महाशक्ति पराम्बा पार्वती के प्रीत उनकी जिज्ञासा के सामाधान हेतु क्षीरसागर के सौम्य शृंगपर उपादिष्ट महायोग ज्ञान है जो देतादैत विलक्षण स्वरूप में भारतीय ही नहीं, विश्वमनीषा के क्षेत्र में स्वीकृत है। मुझे संतोष और प्रसन्नता है कि प्रस्तुत विवेचनात्मक शोधनिबन्ध में शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथ के सच्चिदानन्दस्वरूप व्यक्तित्व से समन्वित उनके महायोगज्ञान - देतादैत विलक्षण दर्शन को शोधकर्ता ने बड़े अध्यवसाय पूर्ण श्रम, निष्ठा और पवित्र श्रद्धा से प्रस्तुत कर नाथसम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष को उजागर किया है। महायोगी गोरखनाथ का योगदर्शन मनुष्य मात्र के निःश्रेयस का अमोघ साधन है, यह निर्मल आध्यात्मिक महायोगज्ञान के प्रकाश में पिण्ड - ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्म सत्ता के सामरस्य स्वरूप अमृतत्व का ज्ञापक है। प्रस्तुत शोध निबन्ध अपने आप में जीवन के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक धरातल किंवा स्तर पर अत्यन्त उपादेय और सन्मार्गदर्शन का प्रेरणा स्रोत है। मैं इस शोधप्रबन्ध की प्रस्तुति के लिये शोधकर्ता विजयपाल सिंह को हार्दिक स्नेह-साधुवाद देता हूँ और मेरा विश्वास है कि इस निबन्ध को योगसाधकों, अध्यात्मचिन्तकों और विद्वानों की दृष्टि में महत्वपूर्ण स्थान मिलेगा। यह निबन्ध अपने आप में बहुत श्रेयस्कर है।

गोरखनाथ - मन्दिर,

गोरखपुर

30-8-1992

महन्त अवेद्यनाथ

§गोरक्षपीठाधीश्वर§



गोरक्षपोठाधीश्वर महन्त अवेचनाथ

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ पर अबतक अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं, तथापि भारतीय दार्शनिक विचारधारा में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ और उनके दर्शन को प्रायः भुला दिया गया है। जहाँ विभिन्न दर्शनों पर शोध कर्त्ताओं द्वारा शोध कार्य किया गया है, वहीं गोरक्षनाथ का दर्शन अभी तक प्रायः अछूता रहा है। यदि कुछ लिखा गया है, तो वह अंश मात्र ही है। गोरक्षनाथ का दर्शन आज के युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उपादेय विषय है। सौभाग्य से इस विषय पर शोध कार्य करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है, किन्तु इसके योग्य सामर्थ्य न होते हुए भी परम पिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा तथा गुरुजनों की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से मैंने महायोगी गोरक्षनाथ के दार्शनिक पक्ष का मात्र रेखाचित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ का व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में कितना महत्वपूर्ण है तथा गोरक्ष दर्शन, दार्शनिक विचारधारा में क्या स्थान रखता है, यह भारतीय संस्कृति एवं सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों का गूढ़तम अध्ययन करने के बाद ही इंगित किया जा सकता है। यह मेरे जैसे अल्प ज्ञानी के दो-चार वर्षों के शोध का कार्य नहीं है, अपितु अधिकारिक विद्वानों द्वारा जीवन पर्यन्त गहन अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि गोरक्षनाथ समय के साथ युग प्रवाह को मोड़ देने वाले युगान्तकारी सिद्ध महायोगी हैं, जिन्हें अवतारी महापुरुष भी माना जाता है। भारतीय जन मानस को जितना अधिक गुरु गोरक्षनाथ ने प्रभावित किया उतना और किसी सन्त अथवा दार्शनिक ने नहीं। उन्होंने उस योग मार्ग का प्रवर्तन किया जो महत्वपूर्ण एवं अलौकिक है, जिस पर चलकर मनुष्य अलौकिक आनन्द की अनुभूति को प्राप्त होता है। गोरक्ष दर्शन में आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना ही योग है। शिव-शक्ति की अभेदता भी योग ही है। पिण्ड में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आत्माभिव्यक्ति भी योग ही है। वैदिक काल और उसके पूर्व से लेकर आज पर्यन्त हमारे ऋषि, महर्षि, सन्त-महात्माओं एवं दार्शनिकों द्वारा योग के महात्म्य का प्रकाश होता आ रहा है। अध्यात्म-साधकों, तत्त्व दर्शियों आदि की प्रसिद्धि और सिद्धि का आधार उनकी योग-साधना ही रही है। योग-मार्ग वस्तुतः एक ऐसी साधना पद्धति है, जिसकी अपेक्षा ज्ञान, कर्म एवं भक्ति सभी मार्गों में विहित और अनिवार्य है। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ का सम्पूर्ण दर्शन योग परक साधना पर ही आधारित है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध नौ अध्यायों में विभक्त है -
 संक्षेप में - प्रथम अध्याय में नाथ पन्थी दर्शन के उद्गम एवं विकास की समीक्षा है। द्वितीय अध्याय में, गोरक्षनाथ एवं उनके दर्शन का सामान्य परिचय दिया गया है। तृतीय अध्याय में शिव-शक्ति तत्त्वों का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में पिण्ड-ब्रह्माण्ड के सामरस्य पर प्रकाश डाला गया है। पंचम अध्याय में आत्मा के स्वरूप, उसके बोध, उसकी श्रेष्ठता तथा परमात्मा से तादात्म्य को प्रस्तुत किया गया है। षष्ठ अध्याय में बाह्याडम्बर खण्डन कर्मादि उपासनाओं की असमर्थता, शास्त्राभ्यास की अपेक्षा योगाभ्यास की महत्ता और देवताओं की भगवत्ता के खण्डन आदि का विवेचन किया गया है। सप्तम अध्याय में गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित शरीरस्थ गोप्य रहस्यों की समीक्षा की गयी है। अष्टम अध्याय में गोरक्ष दर्शन एवं शैव दर्शन के साम्य पर विचार किया गया है तथा नवम् अध्याय में गोरक्षनाथ की प्रमुखदेन तथा मानवता के लिये गोरक्ष-संदेश की समीक्षा प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में गोरक्षनाथ एवं उनके दर्शन को संक्षेप में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विषय की गूढ़ता एवं गहनता को देखते हुए अनुसंधाता का यह प्रयास श्री गोरक्ष दर्शन का सामान्य परिचय मात्र समझा जा सकता है।

किसी भी कार्य को करते समय कुछ बाधाएं भी अवश्य सामने आती हैं। अनुसंधाता भी इनसे किसी प्रकार बरी नहीं रहा। प्रतिकूल वातावरण एवं विपरीत परिस्थितियों तो सामने आयी हीं, साथ ही बेरोजगारी के कारण आर्थिक अभाव तथा मानसिक उत्पीड़न भी बराबर बने रहे हैं। विषय सम्बन्धी प्रचुर साहित्य की उपलब्धि न होना भी एक विकट समस्या बनी रही, क्योंकि नाथ पंथी साहित्य

बाजार तथा कालेजों के पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हो पाया। फिर भी सुविधाओं की अनुकूलता के लिए शोध कार्य को बीच में रोका नहीं जा सकता था।

अतः सीमाओं एवं बन्धनों के होते हुए भी विषयानुसार शोध प्रबन्ध को पूरा करने का तुच्छ प्रयास किया है। इस दुर्गम कार्य में मैं कहां तक सफल हुआ हूँ, यह उदार गुरुजनों के विचार का विषय है।

शोध प्रबन्ध को पूरा करने में जहाँ एक ओर कठिनाईयाँ थीं वहीं दूसरी ओर माँ जी, पिता जी, भाईयों एवं गुरुजनों की प्रेरणा एवं वत्सलता का सहारा भी था। उन्होंने मुझे धैर्य दिलाया, मेरे कार्य में रुचिपूर्वक हाथ बटाया तथा समय-समय पर प्रेरणा, निर्देश और परामर्श भी दिया। जिसका स्मरण कर मेरा मस्तक उनके चरणों में श्रद्धावन्त हो जाता है।

पूज्य गोरक्षापीठाधीश्वर महन्त अवेधनाथ जी, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके प्रसाद से प्राप्त, विषय सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

मेरे शोध निदेशक, पूज्य गुरुजी १५डा० लक्ष्मी चन्द्र जी शास्त्री १ की प्रेरणा तो जीवन की सबसे अमूल्य वस्तु बन गई है, उनके चरणों में बैठकर इस कार्य को करने का अवसर प्राप्त होना, उनकी अहैतुकी कृपा का ही प्रतिफल है। मुझे उनके व्यक्तिगत पुस्तकालय में अध्ययन करने का अवसर तो मिला ही साथ ही जो स्नेह और

वात्सल्य मुझे उनसे प्राप्त हुआ वह अवर्णनीय है। उस
में शब्दों में व्यक्त कर सकूं ऐसी सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

सन्दर्भ सूची प्रत्येक अध्याय के अन्त में दी गयी
है तथा सन्दर्भ ग्रन्थों के संकेताक्षरों का ही प्रयोग किया
गया है, जिनका पूर्ण विवरण परिशिष्ट "ग"में दिखाया ।
गया है।

टंकण यन्त्र में संस्कृत के कुछ अक्षरों के अभाव
के कारण उन्हें हाथ से लिखा गया है।

शोध छात्र
विजयपाल सिंह

एम०ए०

साहित्य रत्न

प्राक्कथन

- 1- नाथ पन्थी दर्शन का उद्गम एवं विकास
- 2- गोरक्षनाथ एवं उनका दर्शन: सामान्य परिचय
- 3- गोरक्ष दर्शन में शिव-शक्ति
- 4- गोरक्ष दर्शन में पिण्ड-ब्रह्माण्ड
- 5- गोरक्ष दर्शन में आत्मा
- 6- गोरक्ष दर्शन में बाह्याडम्बर खण्डन
- 7- गोरक्ष दर्शन में गोप्य रहस्य
- 8- गोरक्ष दर्शन एवं शैव दर्शन
- 9- गोरक्ष दर्शन की प्रमुख देन
- 10- परिशिष्ट :

क- गोरक्ष वचन-संग्रह

ख- गोरक्ष - चित्र - संग्रह

ग- सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची

घ- मन्त्र - तन्त्र - सूची

ङ- नाथ योगी महन्तों की सूची

प्रथम अध्याय

नाथ पन्थी दर्शन का उद्गम एवं विकास

- 1- नाथ शब्द नामकरण
- 2- नाथ पंथ नाम की सार्थकता
- 3- नाथ पन्थी आचार्य
- 4- नवनाथ
- 5- नाथ पन्थी दर्शन का उद्गम
- 6- नाथ पन्थी दर्शन का विकास
- 7- प्रभाव
- 8- निष्कर्ष

नाथ शब्द नामकरण :

नाथ शब्द की व्युत्पत्ति, इसके मूल नाथ धातु में "अ" प्रत्यय लगाकर सिद्ध की जाती है।¹ "नाथृ" धातु याचना, उपताप, आशीर्वाद, ऐश्वर्य आदि अर्थों में प्रयुक्त देखी जाती है, जो अविद्या के अज्ञानमय अन्धकार को हर लेती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि दोषों को और आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक आदि तापों को तपस्या से तपाकर राजस, तामस वृत्तियों के साथ भस्मसात् कर देता है, वह इस लोक में अभ्युदयार्थ तथा परलोक में निश्चयसार्थ ऋक्त्याणार्थ = मोक्षार्थ आशीर्वाद देता है। षडैश्वर्य सम्पन्न ईश्वर के समग्र गुणों से युक्त और स्वम् ब्रह्म रूप होता है, वह "नाथ" ब्रह्म ही है।²

कोष ग्रन्थों में "नाथ" शब्द का अर्थ साधारणतः आशीर्वाद, ऐश्वर्य, उपताप, याचना, ईश्वर, अधिपति, नाथने की रस्सी आदि रूपों में ही प्रयोग किया गया मिलता है।³

अधिपः, ईशः, नेता, परिवृढ, अधिभूः, पतिः, इन्द्रः स्वामी, आट्यः, प्रभुः, भर्ता, ईश्वरः, विभुः, ईशिता, इनः, नायक, आदि "नाथ" के ही पर्याय बतलाये गये हैं।⁴

1- भ० दि० ना० स्मृ० - पृष्ठ - 281

2- ना० सन्देश पृष्ठ - 3

3- नाथ ऋ ड. आशिषि। दवैश्येडर्ये। इति कवि कल्पद्रुम।
 ऋवां-परं-आत्मं-च-सकं-ऐश्ये अंक सेठ ऋ दन्यादिरम्।
 ऋ अनभायत। ड. प्रणायते प्रनायते। दव उपतापः
 आशीरिष्टार्थसंशंसनम्। डित्वेडपि शपथाशोर्गत्यनुकारे।

"ना" का अर्थ है अनादि रूप और "थ" का अर्थ है भुवनत्रय का स्थापित होना। अतः नाथ वह तत्व है, जो अनादि रूप है तथा भुवनत्रय की स्थिति का कारण है।⁵ अन्य स्थल पर "ना" का तात्पर्य उस नाथ ब्रह्म से है, जो मोक्ष दान में दक्ष है, उसका ज्ञान कराता है और "थ" का अर्थ अज्ञान के सामर्थ्य को स्थगित करने वाला है। चूँकि नाथ के आश्रयण से ही इस नाथ ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अज्ञान की माया अवरूद्ध होती है इस लिए नाथ शब्द का व्यवहार किया जाता है।⁶ स्पष्ट है कि "नाथ" परमतत्त्व है। वह भुवनत्रय का कारण है, परज्ञान का दाता तथा मोक्षदाता है। मोक्षदाता के रूप में नाथ को वर्णित करते हुए कहा गया है, सृष्टि स्थिति लय की प्रक्रिया में शक्ति शिव का सृजन करती है, शिव उसका परिपालन करते हैं, काल उसका संहार करते हैं तथा नाथ मुक्ति देते हैं।⁷ अतः नाथ मोक्ष का करण है। उन्हीं के आश्रयण से योगी मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

नाथ शब्द के कुछ प्रयोग वैदिक साहित्य तक में प्राप्त बतलाये जाते हैं। "ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध सूक्त के अन्तर्गत यह समर्थ वा सक्षम के अर्थ में प्रयुक्त जान पड़ता है। परन्तु अथर्ववेद के एक स्थल पर इसका प्रयोग वस्तुतः आश्रय ग्रहण करने योग्य स्थान के लिए किया गया प्रतीत होता है। अन्यत्र इसे स्वामी अथवा रक्षक के अर्थ में भी प्रयुक्त समझा जा सकता है। इसी प्रकार बौद्धों के प्रसिद्ध मान्य ग्रन्थ "धम्मपद" के अन्तर्गत भी

हम इसे स्वामी अथवा मालिक वाले अर्थ में ही व्यवहृत होता देखते हैं। इसके जैन धर्म वाले दिगम्बर सम्प्रदाय के साहित्य में भगवान् महावीर के कुल का नाम तक "नाथ वंश" के रूप में दिया गया पाया जाता है। कहा तो यहाँ तक भी गया है कि आर्येतर जातियों की विभिन्न आदिम भाषाओं के अन्तर्गत यह शब्द प्रायः "नत", "नात" वा "नाथ" जैसे अनेक रूपों में मिलता है। जिसके आधार पर ऐसा अनुमान कर लेना भी असंगत न होगा कि समग्र इण्डोचीन जाति का कोई सुप्राचीन लौकिक देवता भी किसी "नात" जैसे नाम का ही रहा होगा।⁸

"नाथ" शब्द के उक्त अर्थों से भिन्न भी कई अर्थों में प्रयोग मिलते हैं। "कबीर ने नाथ शब्द का प्रयोग "मायाजेता" के अर्थ में किया है। उसे त्रिभुवन का पति कहा गया है। नाथ को छोड़कर सभी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवता, नर तथा अन्य पशु पक्षी आदि जीव स्त्रियों द्वारा विजित है, केवल एक नाथ ही अविजित है। इसीलिए नाथ को मायाजेता कहा जाता है।⁹

"नाथ" शब्द एक उपाधि रूप में भी देखा जाता है। जो साधकों को नाथपंथ में दीक्षित होने के बाद प्रदान की जाती है और यह शब्द दीक्षा के बाद उनके नाम के अन्त में जोड़ दिया जाता है। बंगाल के योगी लोग भी अपने नाम के साथ "नाथ" शब्द जोड़ते हैं तथा अधिकांशतः कपड़ा बुनने, पान बेचने तथा चूने का व्यवसाय करते हैं।¹⁰

"नाथ" पद को पति का वाचक भी माना जाता है। क्योंकि "गौरीपति शिव" को गौरीनाथ कहा जाता है। प्रजापति ब्रह्मा को प्रजानाथ कहा जाता है। रघुपति राघव राजा राम को रघुनाथ कहा जाता है। यदुपति यादव श्री कृष्ण भगवान को यदुनाथ कहा जाता है। प्राणपति को प्राणनाथ कहा जाता है। इस प्रकार नाथ पद पति का वाचक भी है।¹¹

डा० एस०पी० चन्दोला ने नाथ को शैव मताव लम्बी योग प्रचारक योगी बतलाया है।¹²

नाथपंथ से सम्बद्ध साहित्य में नाथ शब्द के उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि "नाथ" ईश्वर, ब्रह्म का वाचक है। पति और उपाधि रूप नाथ शब्द के वाचक केवल दृष्टव्य ही है। यह नाथ शब्द तो परमतत्व की ओर संकेत करता है। परमतत्व प्राप्ति का कारण मोक्षदाता, भुवनत्रय में परिव्याप्त "नाथ" ही सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा एवं सर्वश्रेष्ठ है। "नाथ" ही अव्यक्त पर ब्रह्म शिव की साकार मूर्ति हैं। यही "नाथ" सबके लिए साध्य तथा प्राप्तिलक्ष्य का मूलभूत कारण है। नाथ के आश्रय से ही परमपद, मुक्तिऽमोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। इसी नाथ के तीन रूप माने गये हैं:- अद्वैतोपरिवर्ती नाथ प्राप्य देवता है। निराकार ज्योति रूप नाथ ध्येय है तथा आदिगुरु के रूप में साकार नाथ उपास्य है।¹³

"इति नियमादाभ्यामाशिषोऽन्यत्र परस्मै पदम्। नाथति शत्रुं वली उपतापयतीत्यर्थः। नाथते श्रियं लोकः आशंसते इत्यर्थः। नाथति धनी ईश्वरः स्यादित्यर्थः नाथति भूपं भूमिं

"नाथ" शब्द की प्राचीनता के विषय में कहा गया है कि यह नाम नया नहीं है। अपितु यह उतना ही पुराना है जितना की शिव-शक्ति योग सम्प्रदायों का इतिहास। "नाथ" स्वयं शिव-शक्ति योग मत का शब्द है।¹⁴ दूसरी ओर "नाथ पन्थ" के विषय में "डा० कल्याणी मलिक का कथन है कि यह "नाथ पंथ" नाम पुराना नहीं है। यह नाम अति आधुनिक है। महामहोपाध्याय डा० हर प्रसाद शास्त्री ने सबसे पहले यह नामकरण किया था।¹⁵

वस्तुतः "नाथपंथ" नाम अति आधुनिक है अथवा प्राचीन इस विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि "नाथ" शब्द चूँकि प्राचीन साहित्य में भी उपलब्ध होता है इसलिए "नाथ पंथ" "नाथ" शब्द व्यवहृत हो जाने के समय अथवा कुछ बाद में अवश्य प्रचलित हो गया होगा, जिसके इस समय कई अन्य नाम भी प्रचलित हैं। गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह जो सिद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादक ग्रन्थ है उसमें "नाथपंथ" के अन्य नाम सिद्धान्त¹⁶ सिद्धमार्ग¹⁷ योगमार्ग¹⁸ नाथ मार्ग¹⁹ योग सम्प्रदाय²⁰ अवधूतमार्ग²¹ आदि लक्षित होते हैं।

विप्रं प्रार्थयतीत्यर्थः। मार्गरौरथ तव प्रयोजनं नाथसे। किमु न भूभृतः पीतिमिति भाखौ याचनमप्याशंसा विशेषः। आशिधि, नित्यमात्मने प्रदमन्यत्र विभाषयेति केचित। इति दुर्गादासः।
-श० क० द्र०

4- तत् पर्यायः 1 अधियः 2 ईशः 3 नेता 4 परिवृढः 5 अधिभूः 6 पीति 7 इन्द्रः 8 स्वामी 9 आयुर्य 10 प्रभुः 11 भर्ताः 12 ईश्वरः 13 विभुः 14 ईशितो 15 इनः 16 नायकः।
इति हेम चन्द्रः । - श० क० द्र०

इस पंथ के "योग मार्ग" एवं "योग सम्प्रदाय" नाम तो प्रायः सार्थक ही हैं। क्योंकि इनका मुख्य धर्म ही योगाभ्यास है। ये योगाभ्यास को ही अपना धर्म मानते हैं। अतः इस पंथ का योगमार्ग योग सम्प्रदाय आदि नाम योग साधना के आधार पर ही लक्षित किए गये हैं। दूसरे अपने पंथ को ये सिद्ध मत अथवा सिद्ध मार्ग इसलिए कहते हैं क्योंकि ये नाथ को ही सिद्ध मानते हैं। इसी के साथ अवधूत मत भी नाथपंथ का ही प्रतिरूप कहा जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि ये सभी नाम नाथोक्त अर्थात् नाथ द्वारा ही कथित हैं, तथा एक ही नाथपंथ के लिए व्यवहृत हुए हैं।

उक्त नामों के अतिरिक्त नाथपंथी के लिए, कनफटा, दर्शनी, गोरखनाथी, रावल आदि नामों का उल्लेख भी प्रायः हुआ पाया जाता है। लेकिन ये नामकरण सम्प्रदाय की विशिष्टता के आधार पर अथवा साधना सम्बन्धित वैशिष्ट्य के आधार पर कर दिए गये हैं। डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने इन नामों को इस प्रकार वर्णित किया है - "हठयोग की साधना करने के कारण इन्हें "योगी" कहा जाता है। कान की लौ चिरवाने के कारण इन्हें "कनफटा" कहा जाता है। दीक्षा के समय यह कान पड़वाने की क्रिया की जाती है। दर्शनी शब्द का मूल दर्शन है। इसी दर्शन

- 5- नकारो नाद रूपं धकारः स्थाप्यते सदा।
भुवनत्रययमेवैकः श्री गोरक्ष नमोऽस्तुते ॥
-गो०सि०स०पृष्ठ-26 ॥राजगुह्य से उद्धृत॥
- 6- श्री मोक्षदान दक्षत्वान्नाथ ॥द॥ ब्रह्मानुबोधनात्।
स्थगिता ज्ञान विभावात् श्री नाथ इति गीयते॥।
-गो०सि०स०पृष्ठ-26 ॥शक्ति संगम तन्त्र
से उद्धृत॥

को कुण्डल भी कहते हैं। कान फड़वाकर स्फटिक या अन्य किसी धातु या दाँत का कुण्डल धारण करने के कारण ही इन्हें "दर्शनी" कहते हैं। पंजाब प्रान्त में मुसलमान वर्ग में भी योगी मिलते हैं। उन्हें "रावल" नाम से पुकारा जाता है। "गोरखनार्थी" नामकरण सम्प्रदाय के प्रवर्तक या संगठन कर्ता के कारण ही हुआ है।²²

नाम पंथ के विभिन्न नामों पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नामकरण भिन्न-भिन्न दृष्टियों से किये गये हैं। सिद्धमत, सिद्धमार्ग, अवधूतमत, योगमार्ग, योगसम्प्रदाय आदि नामकरण सिद्धान्त, साधना, दर्शन को ध्यान में रख कर किये गये हैं तथा कनफटा, योगी, दर्शनी, गोरखनाथी, रावल आदि नाम दीक्षा, जाति, सम्प्रदाय के प्रवर्तक की ओर संकेत करते हैं।

इस प्रकार साहित्य एवं सिद्धान्त प्रतिपादन में वर्णित नाम ही इस मत के प्राचीन नाम है। अन्य नाम तो केवल संकेत मात्र हैं जो कि सामाजिक, धार्मिक अध्येताओं एवं खोजियों द्वारा ढूँढ निकाले गये हैं।

- 7- शक्ति जगत् कर्त्री शिवः पालकः।
काल संहारकः। नाथो मुक्तिदायकः।
-गो०सि०स० पृष्ठ - 123
- 8- म० दि० ना० स्मृ० पृष्ठ-281
- 9- गो० ना० पृष्ठ-3
- 10- गो० ना० पृष्ठ - 3
- 11- ना० सन्देश पृष्ठ - 4
- 12- ना० प० पृष्ठ - 80

नाथ पंथ नाम की सार्थकता :

उक्त "नाथ" शब्द विवेचन से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि "नाथ" शब्द का अर्थ परमपद अर्थात् ईश्वर-स्वरूप ही है। अतः "नाथपंथ" सर्वग्राह्य है। नाथपंथ के पूर्व कथित²³ नाम, इतने व्यापक हैं कि उनके अन्तर्गत अन्य साधकों के समूह का भी अन्तर्भाव हो सकता है। इन मतों में भी सिद्धमत को सबसे व्यापक बतलाया गया है। सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में इसकी सर्वव्यापकता तथा उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। क्योंकि "कर्कश तर्क परायण वेदान्ती माया से ग्रसित हैं। भाट्ट मीमांसक कर्मफल के चक्कर में पड़े हुए हैं। वैशेषिक लोग अपनी दैत बुद्धि से ही मारे गये हैं तथा अन्यान्य दार्शनिक भी तत्त्व से वंचित ही हैं। फिर सांख्य, वैष्णव, वैदिक, वीर, बौद्ध, जैन ये सब लोग व्यर्थ के कष्ट कल्पित मार्ग में भटक रहे हैं। फिर होम करने वाले बहु दीक्षित आचार्य, नग्नव्रत वाले तापस, नाना तीर्थों में भटकने वाले पुण्यार्थी बेचारे दुःख भार से दबे रहने के कारण तत्त्व से शून्य रह गये हैं। इसलिए एक मात्र स्वाभाविक आचरण के अनुकूल सिद्ध मार्ग का आश्रय करना ही उपयुक्त है।²⁴ यह "सिद्ध मत" या "सिद्धमार्ग" नाथपंथ ही है। दूसरे उक्त सभी नाम चूँकि "नाथोक्त" अर्थात् नाथ द्वारा कथित है। अतः नाथपंथ में दूसरे समस्त साधक समूहों का अन्तर्भाव होना स्वाभाविक ही है। "नाथपंथ" नाम का आधुनिक विवेचन, व्यापकता की दृष्टि से उचित, सर्वग्राह्य एवं सार्थक ही है।

13- अस्मिन् मार्गे अद्वैतोपरिवर्ती नाथो देवता प्राप्या निराकार।
ज्योति नाथो ध्येयः साकार नाथ उपास्योऽथ च आदिगुरुः॥

- गो० सि० सो० पृष्ठ - 123

नामपन्थी आचार्य :

नाथ पन्थियों का यह अटूट विश्वास है कि अनादि काल से ही धर्म जगत में नाथ-प्रचारित रहा है। उनके विचार में यह भी सत्य है कि नाथ-सृष्टि, ब्रह्मा की सृष्टि से भिन्न है। विष्णु की उत्पत्ति "सलिल" से होती है। विष्णु से ब्रह्मा और ब्रह्मा से नर-नारी सम्बन्धत्व से मैथुनी सृष्टि की उत्पत्ति होती है। यह सृष्टि अज्ञान आवरण से आच्छादित है और हिंसा वृत्ति से जीवन यापन करती है तथा राग, द्वेष, लोभ मोहादि से विप्लावित होकर भयकातर है तथा संशय से सुख-दुख धर्म को प्राप्त है।

इसके विपरीत नाथ सृष्टि का आकर्भाव "नाद" से माना गया है। जिसके सर्वप्रथम उत्पन्न अनादि देव आदि नाथ शिव है। तदुपरान्त नाद शक्ति की आहूति से क्रमशः आदिनाथ, भक्त्येन्द्र नाथ, उदय नाथ, दण्डनाथ, सत्यनाथ, सन्तोषनाथ, कूर्मनाथ, भवनाभि तथा गोरक्षनाथ हुए। ये ईश्वर सन्तान, शिवावतार, ब्राह्मण सूक्ष्मवेदी अद्वैत से भी परे अलखनिरंज देवता, अनाहतश्रृंगी और खेचरी मुद्रा रूप थे।²⁵

तदनन्तर सिद्धाचार्यों का समुदाय विकसित हो उठा और इस पंथ में अनेकों सिद्धाचार्यों का प्रादुर्भाव होता गया और आज के समय में नाथ सिद्धाचार्यों की विभिन्न सूचियाँ प्रकाश में आ गयी है जिनमें आपसी भिन्नता भी इतनी दिखलाई पड़ने लगी है कि उनकी अनेकरूपता के कारण ही उनकी प्रमाणिकता भी संदिग्ध हो जाती है। हठयोग प्रदीपिका के प्रारम्भ में ही नाथ पंथ के अनेक सिद्धाचार्यों

के नाम गिनाये गये हैं। इस पुस्तक में जिन सिद्धाचार्यों का नामोल्लेख किया गया है वे ऐसे ही हैं जो कालदण्ड को खण्डित करके ब्रह्माण्ड में विचरण कर रहे हैं उनके नाम निम्नवत्-²⁶

प्रथम सूची :

1- श्री आदिनाथ	2- मत्स्येन्द्र	3- शाबर
4- आनन्द भैरव	5- चौरंगी	6- मीन
7- गोरक्ष	8- विरूपाक्ष	9- विलेशय
10- मन्थान	11-भैरवयोगी	12-सिद्धि
13- बुद्ध	14-कन्धडी	15-कोरष्टेक
16- सुरानन्द	17-सिद्धपाद	18-चर्पटी
19- कानेरी	20-पूज्यपाद	21-नित्यनाथ
22- निरन्जन	23-कपाली	24-बिन्दुनाथ
25- काकचण्डीश्वर	26-अल्लाम	27-प्रभुदेव
28- घोड़ा चोली	29-टिण्टिबि	30- भानुकी
31- नारदेव	32-खण्डकापालिक	

इस सूची के कुछ सिद्धाचार्यों के नाम तान्त्रिकों योगियों और निगुणियां सन्तों की परम्परा में बचे हुए हैं। कुछ की अभिन्नता सहजयानी और वज्रयानी सिद्धों से स्थापित की जा सकती है। प्रायः जितनी भी सूचियां सिद्धाचार्यों के विषय में प्राप्त होती है उनमें से अधिकांश पौराणिक, अर्द्धपतिहासिक या पतिहासिक है।

14-	ना०	प०	पृष्ठ	-	4
15-	गो०	ना०	पृष्ठ	-	4
16-	बाक०	हस०	स०	पृष्ठ	- 26
17-	वही			पृष्ठ	- 64

वस्तुतः सिद्धाचार्यों की संख्या चौरासी मानी गयी है। इस संख्या के नामांकन के विषय में भी विद्वानों को अनुमान का ही आश्रय लेना पड़ा है। कुछ के मतानुसार चौरासी सिद्धों का सम्बन्ध चौरासी लाख योनियों से है तो कुछ इनका सम्बन्ध चौरासी आसनों से लगाते हैं। यद्यपि "वर्णरत्नाकर" एवं "संख्य विहार" से उपलब्ध सूचियों में सिद्धों की संख्या ८४ ही पायी जाती है तथापि "वर्णरत्नाकर" की सूची में ८४ सिद्धाचार्यों के नाम न मिलकर ७७ सिद्धों के ही नाम मिलते हैं। यह या तो ग्रन्थकार का प्रमाद ही रहा होगा या फिर ८४ के विशिष्ट संख्या मानकर ८४ नाम से सम्बोधित किया होगा। कुछ भी रहा हो यह विषयविवादास्पद ही है तथा संशय उत्पन्न करता है कि ८४ नाम देकर उनकी पूर्ण गणना नहीं की गयी। "वर्णरत्नाकर" में नाथ सिद्धों की सूची को इस प्रकार वर्णित किया गया है^{२७}

द्वितीय सूची :

- | | | |
|-------------|--------------|--------------|
| १- सीलनाथ | २- गोरक्षराथ | ३- चौरंगीनाथ |
| ४- चमारीनाथ | ५- तीतिया | ६- हलिया |
| ७- केदारिपा | ८- ढोगंपा | ९- दारिया |
| १०- विरूप | ११- कपाली | १२- कभारी |
| १३- कन्त | १४- कनखल | १५- मेखल |

- १८- गो० सि० स० पृष्ठ - ९
 १९- गो० सि० स० पृष्ठ - ६४
 २०- वही पृष्ठ - १३६
 २१- वही पृष्ठ - ४१
 २२- गो० ना० पृष्ठ - ४, ५
 २३- इसी में पृष्ठ - ६

16-उन्मन	17- कान्तलि	18- धोबी
19-जालन्धर	20- ढोगी	21- मवह ॥सरह?॥
22-नागार्जुन	23- दौली	24- भिवाणी
25-अचिंत	26- चंपक	27- मेदिनी
28- चेंटस	29- भूसुरी	30- धाकल
31- कूजी	32- चपीट	33- भादे
34-चांदन	35- कामरि	36- करवत
37-धर्मपापतंय	38- भद्र	39- पातलि भद्र
40-पालिहिह	41- भांड	42- मीनो
43-निर्दय	44- सबर	45- सीत
46-भार्तृहरि	47- भीसन	48- भटी
49-गगणपा	50- गमार	51- मेंडरा
52-कुमारी	53- जीवन	54- अधोसाधर
55-गिरिवर	56- सायारी	57- नागवालि
58-धिभरह	59- सारंग	60- विविकिधज
61-मगरधज	62- अचित	63- विचित
64-नेवक	65- चाटल	66- नायन
67-भीलो	68- पाहिल	69- मासल
70-कमल	71- कंगारी	72- चिपिल
73-गोविन्द	74- भीम	75- भैरव
76-भाद्रममरी	77- भुरूकृति	--चउरासी सिद्ध ॥

24-वेदान्ती बहुतर्क कर्कशमति ग्रस्तः परं माययथा।
भादटाः कर्मफला कुला हतधियो दैतेन वैशेषिकाः॥
अन्ये भेदरता विषाद विकलास्ते तत्त्वतो वीचता।
स्तस्मात् सिद्धभतं स्वभाव समयं धीरः मररम् सश्रययेत्॥
सांख्या वैष्णव वैदिका विधिपराः सन्ययासिनस्तापसाः।
सौरा वीर पराः प्रपंचनिरता बौद्धा जिनाः श्रावकाः॥

उक्त सूची में नामान्त उपाधि में भी भिन्नता है। सूची के प्रथम चार सिद्धों के नामान्त में "नाथ" उपाधि जुड़ी है। अगले छः के अन्त में "पा" उपाधि जुड़ी है। अधिकांश नामों के अन्त में उपाधि रूप कुछ भी नहीं जुड़ा है। कुछ भद्र लोग भी इस सूची में प्राप्त हैं। लेकिन आदरार्थक एवं नामान्त औपधाधिक शब्दों के आधार पर यह सत्य नहीं कहा जा सकता कि यह केवल नाथ सिद्धों की सूची है। क्योंकि इस सूची को नाथ सिद्धों की सूची मान ले इसके लिए कोई पुष्ट या सन्तोषजनक प्रमाण प्राप्त नहीं होता। "सख्य विहार" की सूची का क्रम उक्त सूची से भिन्न है जो इस प्रकार वर्णित की गयी है :-

तृतीय सूची :

- | | |
|-----------------------|-------------------------------|
| 1- लुइपा | 2- लीलापा |
| 3- विरूपा | 4- डोबिपा |
| 5- शबरपा | 6- सरहपा |
| 7- कंकालिपा॥ | 8- मीनपा |
| कंकालिपा, कंकरिपा॥ | |
| 9- गोरक्षपा | 10- चौरगिपा |
| 11- वीणापा | 12- शान्तिपा॥ रत्नाकर शान्ति॥ |
| 13- तीतिपा | 14- चमरिपा |
| 15- खड्गपा | 16- नागार्जुन |
| 17- कण्हपा॥ याचर्यपा॥ | 18- कर्णरिपा॥ आयदेव॥ |
| 19- धगनपा | 20- नारोपा |

- | | |
|-------------------------------|--------------------------|
| 21- शालिपा॥शीलपा, शृंगालीपाद॥ | 22-तिलोपा |
| 23- क्षत्रपा | 24-भाद्रपा |
| 25- देखीधिपा॥यादिखण्डपा॥ | 26-अजोगिनपा |
| 27- कालपा | 28-धौभिपा |
| 29- कंकणपा | 30-कभरिपा॥कंबलपा॥ |
| 31- डोंगपा | 32-भादोपा |
| 33- तथेपा॥या तंतेपा॥ | 34-कु कुरिपा |
| 35- कुचिपा॥या कुसुलिपा॥ | 36-धर्मपा |
| 37- महिपा॥या महिलपा॥ | 38- औचितीपा |
| 39- भलहपा॥या भवपा॥ | 40-नलिनपा |
| 41- भुसुकुपा | 42-इन्द्र भूति |
| 43- मेकोपा | 44-कु ठालिपा |
| 45- कमीरिपा॥कंपरिपा॥ | 46-जालन्धरपा |
| 47- राहुलपा | 48-धाबीरिपा॥या धर्मशिपा॥ |
| 49- धोकिरिपा | 50-म'दनीपा॥या ठालीपार॥ |
| 51- पंकजपा | 52-घांटापा ॥ब्रज॥ |
| 53- जोगीपा॥या अजोगिपा॥ | 54-च'लुकपा॥ |
| 55- गुडोंरिपा ॥गोरूर॥ या | 56-लुचिकपा |
| 57- निर्गुणपा | 58-जयानन्त |
| 59- चर्पटीपा॥या पचरिपा॥ | 60-चपंकपा |

ऐते कष्टरता वृथा पथगता ते तत्वतो वीचिंता-
स्तस्मात् सिद्धमतं - - - - - ॥

आचार्या वहुं दीक्षिता हुतिरता नेग्नव्रतास्तापसाः ।
नाना तीर्थ निषेवका जिनपरा यौनेस्थिता नित्यशः ॥
एते ते खलु दुःख भाग निरता तत्वतो वीचिता-
स्तस्मात् सिद्धमतं स्वभाव सभयं धीरः परं संश्रयेत ॥

61- भिखनपा	62-भालिपा	
63- कुम्भरिपा	64-वधरिपा ॥या जवरि= अजपालिपा॥	
65- मणिभद्रा ॥योगिनी॥	66-मेखलपा ॥योगिनी॥	
67- कनखलापा ॥योगिनी॥	68-कलकलपा	
69- कंतालीपा ॥या कथालिपा॥	70-धाहुलिपा ॥या धहुरिपा॥	
71- उधालिपा ॥या उधरिपा॥	72-कपालपा ॥या कमलपा॥	
73- किलपा	74-सागरपा	
75- सर्वभक्षपा	76-नागबोधिपा	
77- दाहि कपा	78-पुतुलिपा	
79- पनहपा ॥या उपानहपा॥	80-कोका लिपा	
81- अनंगपा	82-लक्ष्मीकरा ॥योगिनी॥	
83- समुदपा	84-भालिपा ॥या व्यालिपा ॥	28

इस सूची में नाथ उपाधि युक्त कोई भी सिद्ध नहीं है। जबकि अधिकांश सिद्धों के अन्त में "पा" "पाद" उपाधि जुड़ी है। इस सूची को भी उक्त सूची की तरह ही नाथ सिद्धाचार्यों की सूची मान लेना उचित न होगा। इस सूची में यथह भी सशंय उत्पन्न होता है कि एक सिद्ध के नाम दो और तीन तक गिनाये गये है। अतः उनमें किस एक नाम को सही माना जाय।

25- एवं श्री गुरुरादि नाथः, मत्स्येन्द्रनाथः तत्पुत्र उदयनाथः दण्डनाथः सत्यनाथः सन्तोषनाथः कूर्मनाथः भवनार्जिः, तस्त्य श्री गोरक्षनाथः ईश्वर सन्तान आदिब्रह्मणः सूक्ष्मवेदी, अद्वैतोपरि सदानन्द देवता अनाहत शृंगी खेचरी मुद्रा।

वस्तुतः उक्त तीनों ही सूचियों में पर्याप्त भिन्नता के होते हुए भी कुछ समता भी दिखलायी पड़ती है। कुछ की भिन्नता तो केवल नामान्त में उपाधि अन्तर से जान पड़ती है। लेकिन उन्हें एक ही मान लेना उचित होगा। इस विषय में यह रहा होगा कि एक-एक गुरु से दीक्षा लेने पर नाथ उपाधि से विभूषित किया गया होगा तथा इसके पहले या बाद उन्होंने किसी अन्य गुरु से दीक्षा ग्रहण की होगी तब उन्हें "पा" अथवा "पाद" उपाधि से मुक्त किया गया होगा। यद्यपि यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह ही सही है, कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं तथापि कुछ सिद्धाचार्यों के नामों में नामान्त उपाधि के भिन्न होते हुए भी समता ही जान पड़ती है। जैसे कि वर्ण रत्नाकर की सूची में प्राप्त गोरक्षनाथ और चौरंगीनाथ सस्क्य विहार की सूची में क्रमशः गोरक्षपा चौरंगीपा नाम से प्राप्त होते हैं। प्रथम सूची में 32 सिद्धाचार्यों के नाम गिनाये गये हैं जिन्हें हठ योग प्रदीपिका में महा सिद्ध कहा गया है। प्रथम और द्वितीय सूची की तुलना में यदि देखा जाय तो प्रथम सूची में प्राप्त मत्स्येन्द्र नाथ का नाम द्वितीय सूची में प्राप्त नहीं होता, जबकि प्रथम सूची के गोरक्ष, कपाली, कानेरी, टिटिणी, चर्पीट, मीन, शाबरानन्द, आनन्द भैख द्वितीय सूची के क्रमशः गोरक्षणाथ, कपाली, कन्हन, टेटंस, चर्पीट, मीनो, शबर तथा आनन्द भैरव से तुलित किए जा सकते हैं।

26- श्री आदिनाथ मत्स्येन्द्र शाबरानन्द भैरवा ।

चौरंगी मीन गोरक्ष विरूपाक्ष विलेशया ।। 5 ।।

इसी प्रकार द्वितीय, तृतीय सूची में भी कुछ सिद्धाचार्यों में नामान्तर के पश्चात् भी साम्य ही दिखलायी पड़ता है। तृतीय सूची में भी मत्स्येन्द्र का नाम नहीं मिलता। द्वितीय सूची में प्राप्त मीननाथ, गोरक्षनाथ, चौरंगीनाथ, चमारीनाथ, तोंत्रपा, ढोंगपा, दारिपा, विरूपा, कपाली, कान्ह, कनखल, मेखल, कान्तिल, धोबी, जालन्धर, डोंगो, सरह, नागार्जुन, दौली, अचिंत, चंपक, मेदिनी, कूंजी, चर्पटी, भादे, काभरी, धर्मपा, भद्र, सबर, शान्ति, गगणपा, कुमारी, सियारी, नागवाली, भीलो, कमल, भद्रभारी, आदि 37 सिद्धाचार्यों की समता क्रमशः तृतीय सूची के मोनपा, गोरक्षपा, चौरंगीपा, चमरिपा, ततिपा, धोभिपा, दारिकपा, विरूपा, कपालपा, कण्ठपा, कनखलापा, मेखलपा, कान्तिलपा, धवीरपा, जालन्धरपा, डोंगपा, सरहपा, नागार्जुन, दोखीपा, अर्चोतपा, चपकपा, मेदनीपा, कुचिपा, चर्पटीपा, भद्रपा, काभरिपा, धर्मपा, भद्रपा, शबरपा, शान्तिपा, धगनपा, कुमरिपा, शृंगोलिपाद, नागबोधिपा, भलिपा, कमलपा, भद्रपा से की जा सकती है।

प्रथम सूची के शाबरानन्द, मीन, गोरक्ष, विरूपाक्ष, कंधाल, चौरंगी, चर्पट, कानेरी, कपाली आदि नौ सिद्धों का नाम भी न्यूनाधिक रूपान्तरित रूप में तृतीय सूची में मिल जाता है।

मन्थानो भैरवो योगी सिद्धि बुद्धश्च कन्थाङ्ग ।

कोरुण्टकः सुरमन्दः सिद्धपादश्च चर्पटः ॥ 6 ॥

कानेरी पुज्य पादश्च नित्यनाथो निरंजनः ।

कपाली बिन्दु नाथश्च काक चण्डीश्वरराह्वयः ॥ 7 ॥

डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने कुछ दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ सिद्धों की गणना भी की है। जिनमें दिव्यौघ तो सर्वथा दैवी है। सनक, सनद ॥सनंदन?॥ सनातन, सनत्सुजात, ऋतु, दत्तात्रेय, ररैवतक, वामदेव, व्यास, शुक सिद्धौघ तथा नृसिंह, महेश, भास्कर, महेन्द्र, माधव आदि की गणना मानवौघ सिद्धों में की गयी है।²⁹

डा० रांगेय राघव ने भी इन दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ सिद्धों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।³⁰ इसके अतिरिक्त उन्होंने 24 का पालिक ॥12 गुरुओं तथा शिष्यों॥ के नामों का उल्लेख भी किया है। जिनमें उन्होंने कुछ को प्रसिद्ध नाथ और सिद्ध होना माना है। उनमें आदिनाथ, अनादिनाथ, कालनाथ, अतिकाल नाथ, करालनाथ, विकरालनाथ, महा कालनाथ, काल और भैरवनाथ, बटुकनाथ, भूतनाथ, पीरनाथ, श्रीकंठनाथ गुरु तथा नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चर्पटनाथ, अदयनाथ, वैराग्यनाथ, कंबधारी, जालंधर, मलयार्जुन का शिष्यों के रूप में उल्लेख किया गया है।³¹

स्व० डा० हजारी प्रसाद दिवेदी ने एक स्थल परवत्सिद्ध, ईश्वरनाथ, चरपटनाथ, धुधुनाथ, चंपानाथ, खिथंडनाथ, झंगररनाथ, धर्मनाथ, धगरनाथ, मंगलनाथ, प्राणनाथ आदि ग्यारह सिद्धों का भी उल्लेख किया है।³²

अल्लाम प्रभुदेवश्च घोड़ा चोली च टिण्टिणाः ।
भानुकी नारदेवश्च खण्डः कापालिकस्तथा ॥ 8 ॥

- ह० प्र० पृष्ठ - 2 एवं 3

27- गो० ना० पृष्ठ - 14

वस्तुतः पूर्व वर्णित दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ सिद्धों का कोई खास महत्व नाथ पंथ में दिखलायी नहीं पड़ता जबकि कापालिकों में से कुछ सिद्धाचार्यों के नाम पूर्व वर्णित तीनों तालिकाओं में मिल जाते हैं। ऐसे भी संकेत प्राप्त होते हैं कि प्रथम एवं द्वितीय सूची भारतीय स्रोतों से तथा तृतीय सूची तिब्बत स्रोतों से प्राप्त है। लेकिन द्वितीय एवं तृतीय सूची में अधिक समता दिखलायी पड़ती है। अतः यदि समस्त सूचियों का सिद्धान्तलोकन कर सिद्धों की गणना की जाय तो लगभग सवासौ सिद्धों की प्रामाणिकता तथा ऐतिहासिकता की सम्भावना की जा सकती है। लेकिन कुल मिलाकर यह भी सत्य नहीं कहा जा सकता ।

स्व० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भिन्न-भिन्न तालिकाओं का विहंगावलोकन कर 137 सिद्धों के नामों का उल्लेख निम्नवर्तिका है :

- | | | |
|-------------|--------------|-------------|
| 1- अक्षय | 2- अधोसाधव | 3- अचित |
| 4- अजपानाथ | 5- अजयनाथ | 6- अतिकाल |
| 7- अनादिनाथ | 8- अवध | 9- आदिनाथ |
| 10-उदययनाथ | 11-उन्मन | 12-एक नाथ |
| 13-कनखल | 14-कमल कगारि | 15-कंधाधारी |

- 28-गो० ना० पृष्ठ - 15
 29-गो० ना० पृष्ठ - 11
 30-गो० ना० मु० पृष्ठ - 5 से 9
 31-गो० ना० मु० पृष्ठ - 9
 32-ना० स० पृष्ठ - 38

16-कन्हडी	17-करवत	18-काणेरी
19-काण्डाल	20-कन्ह	21-काभरी
22-कापालि	23-काल	24-कालभैरवनाथ
25-कुभारी	26-कूर्मनाथ	26-केदारिपा
28-कोरटक	29-काण्डकापालिक	30-गगनपा
31-गमार	32-गिरिवर	33-गाहिनीनाथ
34-गोपीचन्द्रनाथ	35-गोरक्षनाथ	36-गोविन्द
37-घोड़ा चूली	38-चर्पट	39-चाटल
40-चम्पक	41-चाँदन	42-चाभरी
43-चिपिल	44-चौरंगी	45-जडभरत
46-ज॥जा॥लन्धर	47-जीवन	48-ज्ञाननाथ
49-टोंगी	50-दिण्ढी	51-ढेण्टस
52-ततिपा	53-तुजी	54-तारकनाथ
55-दण्डनाथ	56-दत्तात्रेय	57-दारिपा
58-देवदत्त	59-दौली	60-धर्मपापतंग
61-धोगपा	62-धोरंग॥दूरगम॥	63-धोबी
64-नागनाथ	65-नागवाला	66-नागबोध
67-नागार्जुन	68-नाचना	69-नित्यनाथ
70-निरंजन	71-निर्दय	72-निवृत्तिनाथ
73-नीमनाथ	74-मेचक	75-पलिहह
76-पातलीभद्र	77-मासल	78-पूज्यपाद
79-प्रभुदेव	80-बटुक	81-बाकिल
82-भाटी	83-भाद्र ॥1॥	84-भाद्र ॥2॥
85-भामरी	86-भार्तृहरि	87-भावनार्जि
88-भाल्लटि	89-भादे	90-भानु
91-भिषाल	92-भा०मनाथ	93-भीषण

94-भीलो	95-भुरूकुटी	96-भूतनाथ
97-भूम्बरी	98-भैरव	99-मगरधन
100-मत्स्येन्द्रनाथ	101-मन्थान भैरव	102-मय
103-भवह	104-मलयार्जुन	105-महाकाल
106-भाणिक नाथ	106-मालीपाव	108-मीन
109-मेखल	110-मेनुरा॥मयनामती॥	111-रेवानाथ
112-विकराल	113-विचित	114-बिन्दुनाथ
115-विभवत	116-विरूपा	117-विरूपाक्ष
118-विविगधज	119-विलेशय	120-वीरनाथ
121-वैराग्य	122-शंभुनाथ	123-श्रीकण्ठ
124-सत्यनाथ	125-सन्तोषनाथ	126-सवर
127-सहस्रार्जुन	128-सारदानन्द	129-सन्ति
130-सारंग	131-सिद्धपाद	132-सिद्धबाध
133-सियारी	134-सुरानन्द	135-सूर्यनाथ
136-हरिश्चन्द्र	137-हालिपा	॥

दूसरी ओर डा0 नागेन्द्र नाथ उपाध्याय ने समस्त सिद्धाचार्यों की प्राप्त सूचियों का विहंगावलोकन कर क्रमशः अधिकाधिक सूचियों में आये सिद्धाचार्यों की सूची निम्न प्रकार वर्णित की है।³⁴

1- मत्स्येन्द्रनाथ	2- गोरक्षनाथ	3-आदिनाथ
4- जालन्धरनाथ	5- चर्पटीनाथ	6-कानिफनाथ
6- चौरंगीनाथ	8- भर्तृहरिनाथ	9-गोपीचन्द्रनाथ
10-गैनीनाथ	11-उदयनाथ	12-सत्यनाथ

33-ना0 स0 पृष्ठ - 36

34-गो0 ना0 पृष्ठ - 39

13- सन्तोषनाथ	14-रवणनाथ	15-कथंलिनाथ
16- नागनाथ	17-कूर्मनाथ	18-विरूपाक्षनाथ
19- निर्वृत्तिनाथ	20-ज्ञाननाथ	21-दण्डनाथ
22- भवनाथ	23-नागार्जुन	24-विष्णु
25- अचलनाथ	26-गणेशनाथ	27-मयनावती
28- अङ्ग	29-मङ्गलनाथ	30-प्राणनाथ
31- दत्तात्रेय	32-निरञ्जननाथ	33-जङ्गभरत
34- भीमनाथ	35-शाबरानन्द	36-भैरव
37- विलेशय	38-मन्यानभैरव	39-कोकण
40- अनङ्ग	41-अरूणाचलनाथ	42-शारङ्गधर
43- मेघनाथ	44-सिद्धबुद्ध	45-कणिक
46- कार्तिकनाथ	47-गजकर्ण	48-औधङ्ग
49- एकनाथ	50-ओंकारनाथ	51-गजबली
52- अचलेश्वर	53-शैलनाथ	54-नाथनाथ
55- सत्यामलनाथ	56-गैवीनाथ	57-गुप्तनाथ
58- उद्धोधननाथ	59-केशरीनाथ	60-शिवदिननाथ
61- नरहरिनाथ	62-लक्ष्मणनाथ	63-मल्हारनाथ
64- बुग्गनाथ	65-सूरतनाथ	66-कम्बनाथ
67- धर्मनाथ	68-धुरधरनाथ	69-करनारिनाथ
70- दूरतङ्गनाथ	71-गोधङ्गनाथ	72-हरिश्चन्द्र
73- अवधनाथ	74-वैराग्यनाथ	75-कंधाधारीनाथ
76- मलयार्जुननाथ	77-सहस्रार्जुननाथ	78-देवदत्त
79- वशिष्ठ	80-हरिनाथ	81-कुलेश्वर
82- महेश्वर	83-सुखनाथ	84-पारिजातनाथ
85- विमलनाथ	86-कृशरनाथ	87-सुधाकरनाथ

88- भोजदेव	89- प्रजापति	90-कुलदेव
91- वृत्तिदेव	92- विश्वेश्वर	93-हनुताशन
94- निराकार	95- निर्विकल्प	96-निराभय
97- विधि	98- प्रकाश	99-विमर्श
100-आनन्द	101-पूर्ण	102-स्वमा
103-प्रतिभा	104-सुभग	105-धूगो
106-चम्पा	इस प्रकार कुल संख्या 106 होती है।	

इस प्रकार उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाथसिद्धों की किसी एक संख्या को नहीं माना जा सकता। क्योंकि किन्हीं दो नामों में समानता मान लेने के बाद भी इतना कुछ भ्रम अवश्य शेष रह जाता है कि कहीं ये भिन्न भिन्न दो ही सिद्ध तो नहीं। अतः संख्या स्पष्ट नहीं है। यह भी है कि पंथ प्रवर्तक सिद्धाचार्य कुछ पुराने है तो नये और कुछ ऐसे भी है जिनका मूलनाम विकृत होकर कुछ और हो गया है। किन्हीं के एक, दो और तीन नाम तक भी मिलते हैं। आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ भी इसी श्रेणी में आते हैं। आदिनाथ को जालन्धर कहा गया है।³⁵ कहीं कहीं मत्स्येन्द्रनाथ को मीननाथ भी कहा जाता है।³⁶

अतः नाथ पन्थी सिद्धाचार्यों की संख्या के सम्बन्ध में अनेक परम्पराये प्रचलित हैं। अतः किसी एक परम्परा को ही उचित मान लें यह सम्भव नहीं है। दूसरी ओर सिद्ध नाम एक क्रम में नहीं है। क्योंकि प्रथम सूची में गोरक्षनाथ का सातवाँ स्थान है। द्वितीय मीननाथ प्रथम

सूची में छठे स्थान पर द्वितीय में सर्वप्रथम तथा तृतीय सूची में आठवें स्थान पर है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि भिन्न-भिन्न सूचियां किस समय और अनुक्रम में बनी है। अधिकांश तो किवदंती और सुनी सुनाई परम्परा पर ही इन सूचियों का आधार मान लेना उचित है।

नवनाथ प्रचलित धारणाएँ :

नाथपंथ में नाथ सिद्ध परम्परा में नवनाथों का विवरण एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह जानना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव सा ही है कि नवनाथों में कौन नाथ आते हैं। क्योंकि विभिन्न ग्रन्थों एवं प्रचलित परम्पराओं में नवनाथों के नामों के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। ऐसा विवरण भी प्राप्त होता है कि नवनाथों की लगभग 30 सूचियों का सिंहावलोकन कर निम्न नवनाथों के नामों का संग्रह किया गया है।³⁷

- | | | |
|--------------------------------|--------------------------|---------------|
| 1- मीनपा या
मत्स्येन्द्रनाथ | 2- गोरखनाथ | 3- जालन्धरनाथ |
| 4- चौरंगीनाथ | 5- कानिफ वा
काणेरीनाथ | 6- चर्पटीनाथ |
| 7- भर्तृहरिनाथ | 8- कथोडिनाथ | 9- गहनीनाथ |

35-जालन्धरनाथ को, उनके समझे जाने वाले किसी "विमुक्त मंजरी" नामक ग्रन्थ के भोटिया अनुवाद के आधार पर आदिनाथ कहा गया है।

36-मत्स्येन्द्रनाथ को अधिकतर मीननाथ से अभिन्न तक मान लिया जाता है।

- म० दि० ना० स्मृ० पृष्ठ - 291

गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में नवनाथों के उक्त नामों से कुछ भिन्न नाम दिये गये हैं। कुछ विद्वानों ने इन्हीं को नवनाथों के रूप में लिया है।

- | | | |
|-------------|--------------------|-----------------------------------|
| 1- आदिनाथ | 2- मत्स्येन्द्रनाथ | 3- उदयनाथ |
| 4- दण्डनाथ | 5- सत्यनाथ | 6- सन्तोषनाथ |
| 7- कूर्मनाथ | 8- भवनार्जि | 9- गुरू गोरक्षनाथ ॥ ³⁸ |

एक अन्य स्थल पर नवनाथ परम्परा में निम्न नाथ सिद्धों को सम्मिलित किया गया है।

- | | | |
|-----------------|-------------|--------------------------|
| 1- मत्स्येन्द्र | 2- गोरक्ष | 3- जालन्धर |
| 4- कानफा | 5- भर्तृहरि | 6- रेवण |
| 7- नागनाथ | 8- चर्पट | 9- गहिनी ॥ ³⁹ |

स्व० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा नवनाथों के नामों का संकलन इस प्रकार किया गया है :

- | | | |
|---------------|--------------------|---------------------------|
| 1- आदिनाथ | 2- मत्स्येन्द्रनाथ | 3- जालन्धरनाथ |
| 4- गोरक्षनाथ | 5- नागार्जुन | 6- सहस्रार्जुन |
| 7- दत्तात्रेय | 8- देवदत्त | 9- जड़भरत ॥ ⁴⁰ |

इसके अतिरिक्त उन्होंने सुधाकर चन्द्रिका के अनुसार नवनाथों की सूची निम्नवत् वर्णित की है-

- | | | |
|--------------|-------------|-------------------------------|
| 1- एकनाथ | 2- आदिनाथ | 3- मत्स्येन्द्रनाथ |
| 4- उदयनाथ | 5- दण्डनाथ | 6- सत्यनाथ |
| 7- सन्तोषनाथ | 8- कूर्मनाथ | 9- जालन्धरनाथ ॥ ⁴¹ |

37-पौडत परशुराम चतुर्वेदी ने नवनाथों की कल्पना पर विचार करते हुए नवनाथों की लगभग 30 सूचियों का उल्लेख किया है - गो० ना० पृष्ठ - ॥

स्व० डा० दिवेदी ने ही एक अन्य परम्परा में नवनाथों के नाम एकदम भिन्न गिनाये हैं -

- | | | |
|-----------|------------|-------------------------|
| 1- प्रकाश | 2- विमर्श | 3- आनन्द |
| 4- ज्ञान | 5- सत्य | 6- पूर्ण |
| 7- स्वभा | 8- प्रतिभा | 9- सुभग।। ⁴² |

तान्त्रिक सिद्ध परम्परा में नवनाथ सिद्धों की गणना की गयी है। इसमें भी तीन मत प्रचलित हैं तथा तीनों ही मतों में भिन्न-भिन्न नवनाथों को सम्मिलित किया गया है। इन मतों को कादि, हादि, सादि के नाम से उद्धृत किया गया है। कादि मत के नवनाथ निम्नवत् हैं -

- | | | |
|-------------|------------------------|-----------|
| 1- प्रह्लाद | 2- कुमार | 3- क्रोध |
| 4- ध्यान | 5- सनक | 6- वशिष्ठ |
| 7- सुख | 8- बोध।। ⁴³ | 9- x |

इस सूची में केवल आठ नाम ही गिनाये गये हैं नवाँ नाम प्राप्त नहीं है।

हादिमत के नवनाथों का नामोल्लेख इस प्रकार किया गया है -

- | | | |
|---------------|------------|-------------------------|
| 1- उद्ध्व केश | 2- नीलकण्ठ | 3- वशिष्ठ |
| 4- मीन | 5- हरिहर | 6- व्योम केश |
| 7- वृषध्वज | 8- कूर्म | 9- महेश।। ⁴⁴ |

सादिमत के नवनाथ निम्नवत् वर्णित हैं -

- | | | |
|-----------|----------|----------------------------|
| 1- प्रकाश | 2- आनन्द | 3- सत्य |
| 4- स्वभाव | 5- सुभग | 6- विमर्श |
| 7- ज्ञान | 8- पूर्ण | 9- महेश्वर।। ⁴⁵ |

उक्त कादि, हादि, सादि नवनाथों के नामान्त में "आनन्दनाथ" उपाधि जुड़ी है।⁴⁶ उक्त परम्पराओं के अतिरिक्त डा० एस० पी० चन्दौला ने नवनाथों का स्वरूप निम्नवत् वर्णित किया है-⁴⁷

- | | |
|----------------------------------|-----------------------|
| 1- ज्योति स्वरूप ओंकार महेश्वर - | आदिनाथ |
| 2- धरणी स्वरूप पार्वती विख्यात - | उदयनाथ |
| 3- जल स्वरूप ब्रह्मा - | --सत्यनाथ |
| 4- तेज स्वरूप विष्णु | - सन्तोषनाथ |
| 5- वायु स्वरूप शेषनाग | - अचलनाथ |
| 6- आकाश स्वरूप गणेश | - गज कंथोडिनाथ |
| 7- वनस्पति स्वरूप चन्द्रमा | - चौरंगीनाथ |
| 8- माया स्वरूप करुणामय | - मत्स्येन्द्रनाथ |
| 9- अलक्ष्य स्वरूप अयोनिशंकर | - त्रिनेत्र गोरक्षनाथ |

कुछ प्रचलित धाराओं में यह भी विश्वास व्यक्त किया जाता है कि नवनारायणों के अवतार रूप ही नवनाथ थे। अर्थात् नव नारायण ही नव नाथ थे।⁴⁷ डा० रांगेय राघव ने इनकी अवतरित होने की कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है " द्वापर के अन्त में ईश्वर - वियोग हो गया तब समय को नाश की ओर जाते हुए देखकर धार्मिक जनों ने प्रार्थना की। महादेव ने नारद को बदरिकाश्रम जाकर नवनारायण को योग मार्ग का दाता उद्बोध करने का आदेश देने को भेजा। नवनारायण जड़ भरतादि --

38- गो० सि० स० पृष्ठ - 98

39- गो० ना० पृष्ठ - 11

40- ना० स० पृष्ठ - 27

ऋषभ राजा के पुत्रों से नारद ने जाकर संवाद कह सुनाया। कवि नारायण, करभाजन नारायण, अन्तरिक्ष नारायण, प्रबुद्ध नारायण, अविहीत्र नारायण, पिप्पलायन नारायण, चमस नारायण, हरि नारायण, द्रुमिल नारायण - ये विरक्त ब्रह्मनिष्ठ पुरुष थे। ये सब जाकर विष्णु से मिले, उन्हें लेकर शिव के पास गये। शिव ने कहा इनको चाहिए कि जहाँ- तहाँ भारत में अवतार धारणकर संसारान्ततप्त हृदय भुमुक्षु जनों को उद्धृत करें। हम भी जिसमें हमारा भेद जानना अनुचित होगा फिर गोरक्षनाथ नाम का व्यक्ति प्रकट करेंगे, इसमें "फिर" शब्द का क्या अर्थ है यह स्पष्ट नहीं होता।"⁴⁸ तदन्तर शिवादेश से ये नवनारायण निम्नवत् नव नाथों के रूप में भारत भूतल पर अवतरित हुए⁴⁹ -

नवनारायण	अवतार स्वरूप नवनाथ
1- कविनारायण	- मत्स्येन्द्रनाथ
2- कर भाजन नारायण	- गृह्णीनाथ
3- अन्तरिक्ष नारायण	- ज्वालेन्द्रनाथ
4- प्रबुद्ध नारायण	- कीरणापानाथ
5- अविहीत्र नारायण	- नागनाथ
6- पिप्पलायन नारायण	- चर्पटनाथ
7- चमस नारायण	- रेवणनाथ
8- हरि नारायण	- भर्तृनाथ
9- द्रुमिल नारायण	- गोपीचन्द्रनाथ।।
41- ना०स० पृष्ठ-28	॥सुधाकर चन्द्रिका के पृष्ठ-24। से उद्धृत॥
42- ना०स० पृष्ठ-39	॥नेपाल केट ताग द्वितीय भाग पृष्ठ-149 से उद्धृत॥
43- गो० न० पृष्ठ - 11	

अन्यत्र भी उक्त परम्परा के अनुसार वर्णन प्राप्त होता है। डा० एस० पी० चन्दोला ने लिखा है " दापर युग के अन्त में महादेव जी ने नारद जी को बदरिकाश्रम में नवनारायणों के पास भेजा कि वे योग मार्ग के उदारार्थ नवनार्यों के रूप में अवतरित हों। ये नवनारायण, ऋषभ राजा आदिनाथ ऋषभदेव § वृषभदेव = आदिनाथ = शिव § के पुत्र थे।" 50

इस प्रकार उक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि नवनार्यों की श्रेणी में किन्हें गिना जाय, यह जानना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि किसी भी सूची के विषय या प्रचलित परम्परा के विषय में ठोस प्रमाणों का पर्याप्त अभाव है। तथापि यह सत्य है कि व्यापक एवं विलक्षण प्रभाव वाले सिद्धों को अधिकांश सूचियों में किसी ने किसी रूप में मान्यता अवश्य मिली है। अतः व्यापक एवं विलक्षण तथा प्रभाव विस्तार के आधार पर नवनार्यों की सूची दी जाय तो नवनार्यों का विवरण निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है-

- | | | |
|--------------------|--------------|---------------|
| 1- मत्स्येन्द्रनाथ | 2- गोरक्षनाथ | 3- जालन्धरनाथ |
| 4- चौरंगीनाथ | 5- कानिफनाथ | 6- कणेरीनाथ |
| 7- चर्पटीनाथ | 8- कंथडीनाथ | 9- गोपीचन्द |

44- गो० ना० पृष्ठ - 11

45- वही

46- वही

47- ना० प० पृष्ठ - 61

§ गोरक्ष टिल्ला से प्रकाशित "नवनार्य कथा"
वि० सं० 2008 से उद्धृत

नाथपन्थी दर्शन का उद्गम :

नाथ सिद्धाचार्यों की दृष्टि में शिव ॥ ब्रह्म ॥ का प्रापक अर्थात् उससे साक्षात्कार कराने वाला योग मार्ग ही है। वहीं सन्मार्ग है। नाथ पंथ के मत में इसी सन्मार्ग योग का ही सेवन उपयुक्त बतलाया है। भगवान् शिव ने स्तुति, स्मृति तन्त्र और पुराण तथा आगमों में यही कहा है कि योग मार्ग ही श्रेष्ठ, मोक्षप्रद, परमात्म बोध प्रदायक है, अन्य कोई मार्ग नहीं है।⁵¹

यद्यपि वर्तमान समय में योग की अनेकानेक पद्धतियाँ एवं परम्परायें प्रचलित हैं तथापि इसका उद्भव इतिहास के काल क्रम में धर्म मत मतान्तरों, विभिन्न पंथों, साधना पद्धतियों एवं संस्कृतियों के उद्भव के साथ ही हुआ है। वस्तुतः विभिन्न मतों में ईश्वर, जीव, सृष्टि, बन्ध, मोक्ष आदि के विषय में अपना-अपना विचार एवं दर्शन है। इसी विचार भेद के कारण योग दर्शन की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ वैदिक, पौराणिक दार्शनिक तथा अन्यान्य साहित्यों में प्राप्त होती हैं।

योग दर्शन की परम्परा अतिप्राचीन काल से ही आगम और निगम दो मार्गों के रूप में दो धाराओं में प्रवाहित

48- गो० ना० यु० पृष्ठ - 4

49- ना० प० पृष्ठ - 2

तथा गो० ना० यु० - पृष्ठ - 5

50- ना० प० पृष्ठ - 22

होती आ रही है। 'निगम मार्ग वेद प्रतिपादित मार्ग है। वेद में उच्चकोटि की आध्यात्मिक उपलब्धियों एवं साधना विधियों के रहस्यपूर्ण संकेतात्मक वर्णन मिलते हैं। वैदिक साधना पद्धति में योगा विद्या, उपासना, भक्ति आदि शब्द सामानार्थक रूप में मिलते हैं। उपनिषद् काल में 'विद्या' शब्द का प्रचलन अधिक था। योग शब्द का अधिक प्रचलन श्वेताश्वतर उपनिषद् के समय के बाद हुआ था। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ही प्रथम बार ध्यान योग शब्द का उल्लेख हुआ है। पीछे ब्राह्मण युग में वैदिक श्रुति में कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड के भेदों के रूप में विभाजन होने पर योग मार्ग का भी कर्मयोग एवं ज्ञान योग के नाम से विभाजन हुआ, जिसका उल्लेख त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद् में मिलता है। इसमें भी निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्ति ज्ञान योग से ही बतलायी गयी है। यही दोनों भेद अविद्या और विद्या नाम से उपनिषदों, देवी भागवत पुराण, एवं विष्णुपुराण में वर्णित है।" 52

वामन पुराण में कहा गया है कि सिद्धों का धर्म है - सर्वोत्तम योग विधियों के द्वारा योग साधना, स्वाध्याय, ब्रह्म-विज्ञान, शिव एवं विष्णु दोनों में अविचल भक्ति है। 53

51 - योगमार्गात्परो मार्गो नास्ति नास्ति श्रुतौ स्मृतौ।
शास्त्रेष्वन्येष सर्वेषु शिवेन कथितः पुरा ।।

दूसरी ओर आगम धारा के प्रवर्तक एवं आद्यउपदेष्टा भगवान् आदिनाथ सदाशिव हैं तथा यह धारा प्रमुख रूप से हठयोग, तंत्रयोग, पाशुपत योग, सिद्धयोग के नाम भेद से प्रवाहित हुई है।⁵⁴ यही आदिनाथ सदाशिव नाथ पन्थी सिद्धाचार्यों के आदि गुरु माने जाते हैं।⁵⁵ इन्हीं शिव स्वरूप आदिनाथ ने सर्वप्रथम योगमार्ग दर्शन का उपदेश दिया था।⁵⁶ अतः वर्तमान नाथपन्थी दर्शन का अभ्युदय चिरकाल से आदिनाथ शिव के मुखार-बिन्द से निकले योगोपदेश से प्रतीत होता है। अन्य स्थल पर भी कहा गया है - " आदिनाथ कृत आदि युग में जो " कौलज्ञान " था वहीं द्वितीय {त्रेता} युग में "सिद्ध कौल" या "महत्कौल" नाम से तृतीय युग में सिद्धामृत नाम से तथा कलियुग में "मत्स्योदर" या "योगिनी कौल" नाम से प्रकट हुआ।⁵⁷ जो कालान्तर में कर्णात्कर्णोपदेश द्वारा गुरु शिष्य परम्परा के माध्यम से भूतल पर अवतरित हुआ है।

नाथ पन्थी दर्शन का विकास :

नाथ पन्थी दर्शन के विकास में अतिप्राचीन काल के कर्णात्कर्णोपदेश कालान्तर में साहित्यिक ग्रन्थों के रूप में परिणत हुए। यह साहित्यिक ग्रन्थ हिन्दी - संस्कृत दोनों ही भाषाओं में उपलब्ध है, किन्तु विद्वानों के साहित्यिक विवेचन के बाद भी कुछ ग्रन्थों को छोड़कर समस्त साहित्य की प्रामाणिकता आज भी सौदृग्य है।

53- सिद्धनाभुदितो धर्मो योगमुक्तिरनुत्तमा ।
स्वाध्यायं ब्रह्मं विज्ञानं भक्तिर्दाम्यामपिस्थिरा ॥

-यो० वा० ना० यो० सा० वि० पृष्ठ - 71

॥ वामनपुराण अ० ॥ से उद्धृत ॥

स्व० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने नाथ पन्थी साहित्य में गोरक्ष कृत अठ्ठाईस ग्रन्थों का उल्लेख किया है। साथ ही उन्होंने यह सन्देह भी व्यक्त किया है कि निम्नलिखित ग्रन्थों में से अधिकांश के कर्ता स्वयं गुरु गोरक्ष नहीं थे।

- | | | |
|------------------------------|-------------------|--------------------------|
| 1- गोरक्षशतक
॥ज्ञानशतक॥ | 2- चतुरशीत्यासन | 3-ज्ञानामृत |
| 4- योग चिन्तामणि | 5- योग महिमा | 6-योगमार्तण्ड |
| 7- योगसिद्धान्त पद्धति | 8- विवेक मार्तण्ड | 9-सिद्धिसिद्धान्त पद्धति |
| 10-अमनस्क | 11-अमरौघशासनम् | 12-अवधूतगीता |
| 13-गोरक्ष कल्पा | 14-गौरक्ष कौमुदी | 15-गोरक्षगीता |
| 16-गोरक्ष चिकित्सा | 17-गोरक्षपंचम | 18-गोरक्षपद्धति |
| 19-गोरक्ष संहिता | 20-ज्ञानामृत योग | 21-नाडीज्ञान प्रदीपिका |
| 22-महार्थमंजरी | 23-योगबीज | 24-योगसिद्धासन पद्धति |
| 25-श्रीनाथ सूत्र | 26-हठयोग | 27-हठसंहिता |
| 28-योग विषय ।। ⁵⁸ | | |

डा० नागेन्द्र उपाध्याय ने नाथ पन्थ साहित्य पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उन्होंने लगभग 37 ग्रन्थों को नाथ पंथियों में मान्य एवं प्रचलित रूप में

- 54- यो० वा० सि० द० वि० पृष्ठ - 74
 55- आदिनाथं नमस्कृत्य शक्तियुक्तं जगद्गुरुम् ।।
 - सि० सि० प० पृष्ठ - 1- 1/1

गिना है। जिनमें उपरिलिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त कौल ज्ञान निर्णय, अकुलवीर तन्त्र §५§, अकुलवीर तन्त्र बी, कुलानन्द तन्त्रम्, ज्ञानकारिका में मत्स्येन्द्रनाथ कृत तथा इनका सम्पादन डा० प्रबोधचन्द्र बागची द्वारा कौल ज्ञान निर्णय नामक संग्रह में किया गया बतलाया गया है। निरंजन पुराण, वैराट पुरण, रुद्रयामत तन्त्र, विष्णु सहस्रनाम आदि है।⁵⁹

संस्कृत ग्रन्थों के साथ ही नाथपंथ में हिन्दी साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया है। "मिश्र बन्धुओं ने सर्वप्रथम हिन्दी रचनाओं को उद्धृत किया था।"⁶⁰ किन्तु सर्वप्रथम स्व० डा० पीताम्बर दत्त बड़धवाल द्वारा हिन्दी रचनाओं का संकलन "गोरखबानी" नामक संग्रह में किया गया।⁶¹ यह उनका प्रथम संकलन था, इसमें " सबदी, पद, सिध्यादरसन, प्राणसंकली, नृपतिबोध, आत्मबोध, मछीन्द्र गोरखबोध, ज्ञानदीप बोध, दयाबोध आदि संकलित है।"⁶² तदन्तर उनके द्वारा दूसरा संकलन प्रकाशित कराया जाना था किन्तु उनकी आकस्मिक मृत्यु के कारण यह कार्य पूरा न हो सका।

कुछ समय बाद डा० कल्याणी मलिक ने " सिद्ध सिद्धान्त पद्धति एण्ड अदर क्वर्स आवै नाथ योगीज" नामक ग्रन्थ में §प्रकाशन सन् 1954§ नाथ योगियों की रचनाओं

56- योग शास्त्रं पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तारैः।
यत्स्वयं आदिनाथस्य निर्गतं वदनाम्बुजात् ।।

-गो० सि० सो० पृष्ठ - 10 शिविवेक मार्तण्ड
से उद्धृत §

का संग्रह कार्य सम्पादन कार्य किया। "64 डा० रागेय राधव ने भी गोरक्ष कृत हिन्दी रचनाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला है। 65

"गोरखबानी" का नया कलेवर §स० 2035 वि०§ गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर से सम्पादक तथा टीकाकार रामलाल श्रीवास्तव द्वारा संग्रहीत किया गया है, जिसमें सबदी, पद, शिष्यादरसन, प्राणसंकली, बत्तीसलक्षण, नरवैबोध, व्रत, आत्म बोध, ज्ञान, चौतिंसा, अष्टचक्र, ग्यानीतलक, पंच अग्नि, अम्भे मात्रा जोग, सिष्ट पुराण, दयाबोध, रहरासी, पन्द्रह तिथि, सप्तवार मछीन्द्र-गोरषबोध, अष्ट मुद्रा, रोम्भावली, गोरष गणेश गुष्टि, पंच मात्रा, महादेव गोरष गुष्टि, सप्तवार नवग्रह, चौबीस सिद्धि, ज्ञानदीप बोध §गोरष दत्त गुष्टि§ आदि रचनाओं को संग्रह किया गया है ।

इसके अतिरिक्त डा० एस०पी० चन्दोला ने अपने शोध प्रबन्ध के अन्तिम भाग में कुछ नाथ योगियों की अप्रकाशित रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनमें सिद्ध हड़ताल जी की सबदियां, चौरंगीनाथ की सबदी, बालानाथ सबदी, कणेरीपाव सबदी, भरधरी सबदी, गोपीचन्द्र की सबदी, रामरामग्री, अजयपाल की सबदी, चरपट नाथ की सबदी, अबली सलूक ग्रन्थ आदि संकीर्त है। 66

57- यो० वा० सि० द० वि० पृष्ठ - 67

58- ना० स० पृष्ठ - 98

59- गो० ना० पृष्ठ - 44

60- गो० ना० पृष्ठ - 48

61- गो० ना० पृष्ठ - 49

इस प्रकार नाथ पंथी साहित्य अतिप्रचुर मात्रा में हिन्दी संस्कृत दोनों ही भाषाओं में उपलब्ध है। यद्यपि कुछ ग्रन्थों को छोड़कर अधिकांश ग्रन्थों की ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों द्वारा सन्देह व्यक्त किया गया है तथापि नाथ पंथ के अध्ययन की दृष्टि से समस्त हिन्दी संस्कृत रचनाएँ अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, क्योंकि इसी साहित्य के आधार पर नाथ पंथ के इतिहास, दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड आदि के सम्बन्ध में जाना जा सकता है।

यदि एक ओर नाथ पंथी इतिहास, दर्शन, धर्म, कर्म आदि साहित्यिक ग्रन्थों के रूप में विकासशील था तो दूसरी ओर विभिन्न शाखाओं एवं उपशाखाओं, में परिणत होता गया, जो नाथ पंथी दर्शन के केन्द्र बिन्दु थे, जिनके माध्यम से नाथ पंथी दर्शन की विचार धारा समस्त जनमानस तक पहुँची।

एक अनुश्रुति के अनुसार सर्वप्रथम शिव द्वारा प्रवर्तित 18 सम्प्रदाय थे तदनन्तर गुरु गोरक्षनाथ जी ने 12 सम्प्रदायों का संगठन किया। किन्तु दोनों दलों में पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न हो गया तथा आये दिन आपसी विवाद उत्पन्न होने लगा। इसीलिए अन्त में गुरु गोरक्षनाथ जी ने शिव द्वारा प्रवर्तित छः तथा स्वयं के संगठित छः सम्प्रदायों को तोड़कर शेष छः शिव के तथा तथा छः स्वयं के सम्प्रदायों को मिलाकर 12 पन्थों का पुनर्गठन किया, जो निम्नवत् है

- | | | |
|--------------|-------------|-------------------------------|
| 1- सत्यनाथी | 2- धर्मनाथी | 3- रामपंथ |
| 4- नाटेश्वरी | 5- कन्हड़ | 6- कपिलानी |
| 7- वैरागपंथ | 8- माननाथी | 9- आईपंथ |
| 10- पागलपंथ | 11- धाजपंथ | 12- गंगांनथी ।। ⁶⁷ |

उक्त वर्णित प्रत्येक पंथ का एक-एक विशेष स्थान होता है जिसे उस पंथ से सम्बन्धित नाथ लोग अपना पुण्य क्षेत्र मानते हैं प्रत्येक पंथ में एक एक विशेष पौराणिक देवता या महात्मा को अपना आदि प्रवर्तक माना जाता है। स्व० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रत्येक पंथ के विशेष स्थान, उसके मूल प्रवर्तक, या देवता, प्रदेश को ध्यान में रखकर उक्त 12 पन्थों का विवरण निम्नांकित §अंगीकृत§ तालिका के रूप में वर्णित किया है।⁶⁸

सं०	नाम	मूलप्रवर्तक	स्थान	प्रदेश	विशेष
1	सत्यनाथी	सत्यनाथ	पाताल उड़ीसा भुवनेश्वर	उड़ीसा	सत्यनाथ स्वयं ब्रह्मा का ही नाम है। अतः ये लोग ब्रह्मा के योगी कहलाते हैं।
2	धर्मनाथी	धर्मराज §युधिष्ठिर§	दुल्लु देलक	नेपाल	--
3	रामपंथ	श्रीराम चन्द्र	चौक तप्टे पंचौरा	गोरखपुर	इस समय में लोग गोरखपुर को ही अपना स्थान मानते हैं।
4	नाटेश्वरी	लक्ष्मण	गोरख झेलम टिल्ला पंजाब		इनकी दो शाखायें हैं-नाटेश्वरी, दरियापन्थी

5	कन्हड़	गणेश	मानफरा हच्छ	--
6	कपिलानी	कपिलमुनि	गंगा बंगाल सागर	इस समय कलकत्ते दमदम के पास गोरखवंशी इनका स्थान है।
7	वैराग्यपंथ	भर्तृहरि	रतदोडा पुष्कर के पास अजमेर	--
8	माननाथी	गोपीचन्द	अज्ञात -	इस समय जोधपुर का महामन्दिर मठ इनका स्थान है।
9	आईपंथ	भगवती विमला	जोगीगुफा बंगाल या दिनाज- गोरख पुर जिले कुई में	--
10	पागलपंथी	चौरंगीनाथ ॥ पुरनभगत् ॥	अबोहर पंजाब	--
11	धजपंथ	हनुमान जी	- -	--
12	गंगानाथी	भीष्म पितामह	जरववार गुरूदास पुर पंजाब	--

उक्त 12 पन्थों के विषय में डा० एस० पी०
चन्दौला ने भी विस्तार से प्रकाश डाला है।⁶⁹

- 62- म० गा० एवं उ० त० स्थली - पृष्ठ - 26
 63- गो० ना० पृष्ठ - 50
 64- गो० ना० पृष्ठ - 50
 65- गो० ना० यु० पृष्ठ - 157 से 236
 66- ना० प० पृष्ठ - 223 से 247
 67- ना० स० पृष्ठ - 12

इस प्रकार ये 12 पंथ विशेष रूप से नाथपंथ में आविर्मित हुए। तदनंतर इनमें भी अनेक उपशाखायें परिवर्तित हो गयीं। "जिनमें कायिकनाथी, पागलनाथी, उदयनाथी, आरय्यपंथ, फीलनाथी, चर्पटनाथी, गैनी या गहनीनाथी, निरंजननाथ, वरजोगी, पा पंथ, कामभज, काषाय, अर्द्धनारी, नायरी, अमरनाथ, कुंभीदास, तारकनाथ, अमापंथी, भृगनाथ आदि अनेक उपशाखायें युक्त हुईं जिनका विस्तार समस्त भारतवर्ष एवं अफगानिस्तान भी है।" 70

एक अन्यश्रुति के अनुसार मत्स्येन्द्र नाथ ने चार पंथ चलाये गोरखनाथी, अरजनंगा, मीननाथ, पारसनाथ। अन्तिम दोनों जैन हैं। 71

नाथ पंथ में कुछ अन्य पंथ भी युक्त हुए जिन्होंने विस्तृत रूप से या फिर आंशिक रूप से भेष की मर्यादा को स्वीकार किया। इस पंथ में भेष रूप छः दर्शनों की कहावत प्रसिद्ध है जो नाथ पंथ के अन्तर्गत ही माने जाते हैं-

जोगी, जंगम सेवडा §जैनसाधु§, सन्यासी दरवेश।

घटा दरसण ब्रह्म का जामें मीन न भेष। 72

इस प्रकार डा० एस० पी० चन्दौला ने मुसलमान, योगी, खूबड़, सूखड़, गूदड़, कूकड़ औधड़, भन्नाथी, सेवड़ा, गृहस्थयोगी, मन्त्रतन्त्र, जादूटोना, झाड़फूंक और वैदिक आदि विभिन्न आंशिक भेष की मर्यादा स्वीकार करने वाली उपशाखाओं पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है। 73

68- ना० स० पृष्ठ - 13

69- ना० प० पृष्ठ - 63

70- ना० स० पृष्ठ - 14

इस प्रकार उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाथपंथ के उदय के बाद उसमें विभिन्न शाखाओं एवं उपशाखाओं का समुचित विकास हुआ।

प्रभाव :

भारतीय साधना पद्धति में नाथ पंथ का एक विशेष स्थान रहा है। यह भारतीय इतिहास और साहित्य की प्रबल धारा है, जो भारतवर्ष में अखण्ड रूप से कई शताब्दियों तक बहती रही है तथा जिसका प्रभाव आज भी समग्र भारत तथा उसके बाहर अनेक सीमावर्ती देशों विशेष रूप से नेपाल आदि पर छाया हुआ है। नाथ पन्थी साधना पद्धति ने अपने में विभिन्न साधना पद्धतियों को आत्मसात् करके एक स्वतन्त्र रूप स्थिर किया तथा परवर्ती काल की विभिन्न साधना पद्धतियों, साहित्य की धाराओं, सन्तों, साधुओं, कविओं तथा राजा महाराजाओं को प्रभावित किया।

यहाँ तक की बादशाह बाबर के प्रभावित होने के संकेत "बाबरनामा" में प्राप्त एक घटना के उल्लेख से मिलते हैं " नाथ सिद्धों की करामातों, दार्शनिक तथा योगसाधना की ख्याति सूफी सन्तों और दरबारियों के माध्यम से बाबर तक पहुँची। उन दिनों गोरखत्री या गोरखतारी नाथ पन्थी साधना का प्रसिद्ध केन्द्र था। बाबर उस मठ का दर्शन करने गया बाबरनामा में इस घटना का उल्लेख है।"⁷⁴

- 71- ना० स० पृष्ठ - 14
 72- ना० प० पृष्ठ - 66
 73- ना० प० पृष्ठ - 66 से 69
 74- यो० बा० ना० यो० सा० वि० - पृष्ठ - 56

निष्कर्ष :

नाथसिद्धों की परम्परा में नाथ पंथ के पूर्व वर्णित अनेक नामों का प्रयोग होता आया है। किन्तु उसके उदय काल की ओर संकेत करने वाले किन्हीं ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों का ठीक पता नहीं चलता। अस्तु नाथ सिद्धों के मान्य गुरु शिव स्वरूप आदिनाथ से ही नाथ पंथ तथा दर्शन का प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है। नाथपंथ तथा उसके दर्शन के विकास के सम्बन्ध में सम्भवतः नाथ साहित्य तथा उसकी शाखाओं एवं उपशाखाओं पर निर्भर किया जा सकता है जो भारत तथा नेपाल आदि देशों में बिखरी पड़ी है। नाथ पंथी साहित्य पर आज भी विस्तार से प्रकाश डाला जा रहा है जिसमें गोरखपुर मन्दिर गोरखपुर से प्रकाशित पत्रिका "योगवाणी" नाथ पंथी इतिहास, दर्शन, धर्म, कर्म आदि के विकास का अभूतपूर्व कार्य कर रही है। इसके अतिरिक्त नेपाल के राजगुरु योगीनरहरिनाथ शास्त्री ने गोरक्षग्रन्थमाला के अन्तर्गत काशी योग प्रचारिणी गोरक्ष टिल्ला, मन्दाकिनी काशी से लगभग एक सौ ग्रन्थों को प्रकाशित किया जिससे नाथ साहित्य की विपुलता एवं समृद्धि का पता चलता है।

नाथपंथ में 12 संस्थाओं का पुनर्गठन हुआ। लेकिन इन का गठन कब किन परिस्थितियों तथा रूपों में हुआ इसका कोई सर्वमान्य विवरण प्राप्त नहीं होता। वस्तुतः इन 12 संस्थाओं का विवरण देने वाली 20 सूचियां बतलायी गयी है।⁷⁵ अतः 20 सूचियों में किस एक को आधार माना जाय। दूसरी ओर यह विषय भी विवादास्पद ही है कि पूर्वकथित शिव प्रवर्तित 18 गुरु गोरक्षनाथ संगठित

१२ संस्थाओं में से मात्र १२ पन्थों का पुनर्गठन किया गया। तब यह जानने कि जिज्ञासा भी प्रबलतम् हो उठती है कि सर्वप्रथम संगठित शिव और गुरु गोरक्षनाथ के कुल ३० पन्थ कौन से रहें होंगे तथा उनका अन्तर्भाव १२ पन्थों में किस प्रकार किया गया होगा। यदि इस विषय में यह मान लिया जाय कि ये १२ पन्थ गुरु गोरक्षनाथ जी के शिष्यों द्वारा चलाये गये होंगे, तो यह निश्चित करना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है कि उनके किन शिष्यों द्वारा किस काल और क्रम में इनका संगठन किया गया।

अनुमानतः इस सम्बन्ध में इतना मात्र कहा जा सकता है कि इन पंथों का संगठन नाथ सिद्धाचार्यों की परम्परा के कुछ समय पीछे किया गया होगा तथा यह कार्य विभिन्न व्यक्तियों ॥ सिद्धाचार्यों ॥ द्वारा अपने-अपने पंथ के रूप में सम्पन्न किया गया होगा।

इस प्रकार इन १२ पन्थों के कालक्रम तथा संगठन के विषय में किसी ठोस प्रमाण के न मिलने के बाद भी यह अवश्य है कि कालान्तर में संगठित शाखा प्रशाखाओं ने उक्त १२ शाखाओं से किसी न किसी रूप में अपना सम्बन्ध जोड़ा है।

इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि तत्कालीन समय में ही नाथ पंथ की विभिन्न शाखाओं, उपशाखाओं सम्बन्धित जातीय वर्गों का तेजी के साथ विकास हुआ।

उनके द्वारा नाना तीर्थ स्थलों को अपनाया गया तथा जगह-जगह नाथ मन्दिर तथा मठों की स्थापना की गयी, जो आज भी विद्यमान है।

डा० एस० पी० चन्दोला ने भारत में यत्रतत्र विद्यमान नाथों के जालौर, सौगन्धिक पर्वत, गिरनार, गोरखभण्डी, प्रभास, धीणोधर, कच्छ, राणा और कन्यकोट ग्राम, कच्छेली, दुमच, हिंगलाज, कद्रीमठ, मँगलौर, मैसूर, इल्वल षोडशा मंडली ग्राम मँगलौर, चुचुनागिरि, गोरखडिब्बी, सुनारी भैरव और अभीर मठ, कुशावर्त, चौपड़ा, अचलपुर, पंचवटी, नासिक क्षेत्र, इशारा पर्वत और शुक तीर्थ, हांडी भडण्ग, बेलगाँव, हैदराबाद दक्षिण, चितौड़, उदयपुर, नेवाली, शेषावाटी, गोरखपुर, चतुर्मुखग्राम, तुलसीपुर, काशी, हरिहर क्षेत्र और फाल्गुन तीर्थ, वैद्यनाथ, विशालक-महानाद-गोरवशी आदि बंग देश में, महानाद हुगली जिले में, कलकत्ते में दमदम के पास, सिद्ध कुण्ड और पुरुषोत्तम वन उड़ीसा में, कामाख्या, नागदेश के आंकारेश्वर वर्मा की सीमा पर, नेपाल में काठमाण्डू, हरिद्वार, श्रीनगर, देवलगढ़, नागनाथ, हरियाना क्षेत्र, मुण्डाल, सरगोदा ४पंजाब४, गोरियापीठ, जरववा ४चम्बा४, ज्वाला मुखी, धुआरायी, शमशेरगाह खुरासान, काबुल, जलालाबाद, पेशावर, अटक, कटासराज, मरवड्ड, झेलम टिल्ला आदि तीर्थ स्थानों का विस्तार से वर्णन किया है।⁷⁶ इसके अतिरिक्त वर्तमान में स्थित लगभग 132 प्रमुख नाथ गोदियों तथा पीर महन्तों की सूची भी उन्होंने प्रस्तुत की है।⁷⁷

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्तमान समय में भी पूर्ववत् विभिन्न नाथ पंथों द्वारा भारत-नेपाल तथा सीमावर्ती अन्य देशों में स्थापित मन्दिर, मठ आज भी सर्वत्र अपना आलोक बिखर रहे हैं।

76- ना० प० पृष्ठ - 86 से 101

77- ना० प० पृष्ठ - 101

द्वितीय - अध्याय

- गोरक्षनाथ और उनका दर्शन : सामान्य परिचय

- 1- महिमाशाली व्यक्तित्व
- 2- जन्म सम्बन्धी धाराणाएँ
- 3- स्थान
- 4- समय
- 5- महायोगी
- 6- गुरु शिष्य परम्परा
- 7- समवर्ती परवर्तीनाथ सिद्धों एवं राजा-महाराजाओं पर प्रभाव
- 8- दार्शनिक विचार धाराओं का संक्षिप्त परिचय
- 9- प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थ
- 10- गुरु गोरक्ष योग दीक्षा पद्धति

महिमाशाली व्यक्तित्व -

यद्यपि गुरु गोरक्षनाथ के व्यक्तित्व एवं चरित्र पर प्रमाणिक एवं पूर्ण सामग्री के अभाव में स्पष्ट रूप से कुछ भी कहना कठिन है, तथापि अनुश्रुतियों तथा धारणाओं के आधार पर उनकी सद्चरित्रता, उदारता तथा उच्च व्यक्तित्व-शीलता पर अनेक विद्वानों ने प्रकाश डाला है ।

गुरु गोरक्षनाथ का व्यक्तित्व सर्वतो मुखी तथा सर्व शक्ति सम्पन्न था।

स्व० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है-¹ " गोरक्षनाथ अपने युग के सबसे महान धर्मनेता थे। उनकी संगठन-शक्ति अपूर्व थी। उनका व्यक्तित्व समर्थ धर्म गुरु का व्यक्तित्व था। उनका चरित्र स्फटिक के समान उज्ज्वल, बुद्धि भावावेश से एक दम अनाविल कुशाग्र और तीव्र थी। उनके चरित्र में कहीं भी भारीविह्वलता नहीं है। जिन दिनों उन्होंने जन्म ग्रहण किया था, उन दिनों भारतीय धर्म-साधना की अवस्था विचित्र थी। शुद्ध जीवन, सात्त्विक-वृत्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना उन दिनों अपनी निम्नतम सीमा तक पहुँच चुकी थी। गोरक्षनाथ जी ने निर्भभ हथोड़े की चोट से साधु और गृहस्थ, दोनों की कुरीतियों को चूर्ण-विचूर्ण कर दिया। लोक जीवन में जो धार्मिक चेतना पूर्ववर्ती सिद्धों से आकर उसके पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो रही थी, उसे गोरक्षनाथ ने नई प्राण शक्ति से अनुप्राणित किया। किसी रूढ़ि पर चोट करते समय उन्होंने दुर्बलता नहीं दिखाई। वे स्वयं पण्डित व्यक्ति थे, पर यह अच्छी तरह जानते

थे कि पुस्तक लक्ष्य नहीं, साधन है। उन्होंने किसी से भी समझौता नहीं किया, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं, परन्तु फिर भी उन्होंने समस्त प्रचलित साधना मार्ग से उचित भाव ग्रहण किया।"

दूसरी ओर डा० नागेन्द्र उपाध्याय ने गुरु गोरक्षनाथ के व्यक्तित्व पर विहगम दृष्टि डालते हुए लिखा है-² "बौद्धों की दार्शनिक क्षेत्र में पराजय तो कुम्हारिल और शंकराचार्य प्रमाणित कर चुके थे, लेकिन साम्प्रदायिक और सामाजिक क्षेत्र में बौद्धों का अग्र भी बड़ा प्रभाव था। बौद्ध सन्यासियों का प्रभाव हर्षवर्धन के समय तक कितना था, यह इतिहास स्पष्ट बतलाता है। सन्यासियों में उनकी संख्या सबसे ज्यादा थी। लेकिन शंकराचार्य के बाद भी शैव सन्यासियों का पूर्ण संगठन न हो पाया था। कालामुख, काशीलिक, पाशुपत, लिंगायत आदि अनेक सम्प्रदाय तत्कालीन बौद्धों की तरह जनमानस में भय, शंका, घृणा आदि की दृष्टियों से देखे जाते थे। समाज की साधनागत और धर्मगत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने की इनकी शक्ति समाप्त हो चुकी थी। यों कहा जा सकता है कि इनकी सामाजिक उपयोगिता समाप्त हो गयी थी। अतः यह भी शक्तिहीन होते जा रहे थे। उसी समय काश्मीर में शैवदर्शन और साधना का विकास हो रहा था। उसमें कई आचार्यों का अभ्युदय हो चुका था। इन सारी आवश्यकताओं और परिस्थितियों को भली-भाँति परखकर गोरक्षनाथ ने सदाचार परायण, संयम पूर्ण परम्परागत

1- ना० स० पृष्ठ - 128

2- गो० ना० पृष्ठ - 93

शैव दर्शन और साधना पर आधारित और जीर्णप्राय शैव सम्प्रदायों से संगठित सिद्धमत अथवा नाथयोगी सम्प्रदाय का समारम्भ किया। बहुत पहले ही लकुलीश, पाशुपत लिगायत, कालामुख आदि वेदवाह्य घोषित हो चुके थे। शंकराचार्य की शैवता और वेदानुकूलता तो गोरक्षनाथ के पहले से ही घोषित थी। अतः इन तथाकथित वेदवाह्य, जीर्णप्राय, शैव सम्प्रदायों का नये संगठित रूप में पुनरुज्जीवन आवश्यक था जो गोरक्षनाथ के हाथ से सम्पन्न हुआ। "

वस्तुतः उक्त महत्वपूर्ण कार्य किसी सामान्य व्यक्तित्व वाले व्यक्ति द्वारा सम्पन्न होने सम्भव नहीं थे। ऐसे दुरूह एवं कठिन कार्यों को करने में कोई उच्च आदर्श से युक्त धर्मपरायण व्यक्ति ही सफल हो सकता था। सामान्य जनमानस को आकर्षित कर लेने वाले आकर्षक चरित्र एवं पूर्ण व्यक्तित्व शील, सदाचार परायण व्यक्ति के द्वारा ही ये कार्य सम्भव थे। सर्वोच्च चरित्र युक्त व्यक्ति ही इस प्रकार किसी सम्प्रदाय या संस्था का नेतृत्व संभाल सकता था। इसी प्रकार के गुणों से युक्त थे गुरु गोरक्षनाथ, तभी तो उन्होंने समय की पुकार के साथ लोक कल्याणार्थ अपने जीवन को समर्पित किया।

डा० रागेय राघव ने उनके सौन्दर्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है " वे अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति थे, जिनके सौन्दर्य में यदि एक ओर स्त्रियों का सा लावण्य था, तो दूसरी ओर पुरुषों की अखण्ड शक्ति भी उनमें प्रतिबिम्बित होती है। उनके सिर पर जटायें थी। माथे पर भस्म लगी रहती थी। श्रृंगी तथा योगियों के लिए आवश्यक वस्तुओं

से सुसज्जित उनका व्यक्तित्व अत्यन्त भव्य दिखाई देता था। ऐसे कम ही महापुरुष होंगे, जिनके साथ सौन्दर्य का इतना भाव चित्रित किया गया हो।"

गुरु गोरक्षनाथ रूप बदलने में अत्यन्त कुशल व्यक्ति थे। वे मृदंग-वादन तथा नृत्य-कला में भी अत्यन्त निपुण थे। एक अनुश्रुति में इसी प्रकार के प्रमाण मिलते हैं - गुरु गोरक्षनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ के उद्धार के लिए, जो कि रानी मैनाकिनी के साथ त्रिया राज्य में विलासिता में रत थे, स्त्री वेश धारण करना पड़ा। कलिंगा अपनी सहेलियों और स्त्री वेशधारी गोरक्षनाथ के साथ राजदरबार में पहुँची। वहाँ एक रत्नजटित स्वर्ण सिंहासन पर रानी मैनाकिनी बैठी थी। उसी के पास राजसी वेशभूषा में मत्स्येन्द्रनाथ भी बैठे थे। सभी ने राजदरबार में पहुँच कर दोनों को सादर अभिवादन किया। उसके पश्चात् कलिंगा की सखियाँ अपने-अपने साज ठीक करने लगी। स्त्री रूप गोरक्षनाथ ने भी मृदंग बजाना आरम्भ किया।⁴ जिससे "जाग मच्छन्द्र गोरख आया" की ध्वनि सुनाई पड़ती थी।

प्रायः यह देखा जाता है कि इतने लावण्य, गुणों तथा निपुणता से युक्त व्यक्ति चरित्र तथा नैतिकता की दृष्टि से गिर जाता है। वह इतना कुछ प्राप्त होने पर संभाल नहीं पाता। लेकिन गुरु गोरक्षनाथ इतने गुणों से युक्त होने के बाद भी संयमशील तथा काम-विजेता थे। उनमें काम विकार नहीं था। स्त्रियों को वे माता सदृश ही देखते थे। एक अनुश्रुति में इसका पुष्ट प्रमाण मिलता है।

" एक बार शिव से गौरी ने कहा कि वे सिद्धों को विवाह करके वंश चलाने का आदेश दें। शिव ने कहा कि सिद्ध लोगों में काम विकार नहीं है। तब शिव से आज्ञा लेकर गौरी ने चार सिद्धों की परीक्षा ली। चारों दिशाओं में तपस्या कर रहे थे। पूरब में हिडया, दक्षिण में कानफा, पश्चिम में गोरक्ष तथा उत्तर में मीननाथ। गौरी को परीक्षा का अवसर देने के लिए शिव ने ध्यान बल से चारों सिद्धों का आवाहन किया। चारों उपस्थित हुए। देवी ने भुवन मोहिनी रूप धारण कर चारों को भोजन परोसा। चारों ही सिद्ध उस पर मुग्ध हुए। मीननाथ ने सोचा यदि ऐसी सुन्दरी मिल तो आनन्द केली से रात काटू। देवी ने उन्हें शाप दिया कि तुम महाज्ञान भूलकर कदली देश में सौलह सौ सुन्दरियों के साथ काम कौतुक में रत होगें। हाडिपा ने ऐसी सुन्दर का झाड़ूदार होने में भी कृतार्थता की अभिलाषा की और फलस्वरूप मयनामांति रानी के घर में झाड़ूदार होने का शाप पाया। कानफा ने सोचा की ऐसी सुन्दरी मिले तो प्राण देकर भी कृतार्थ होंऊ। इसलिए देवी ने शाप दिया कि तुम मानदेश में डाहुका होओ। पर गोरक्ष ने सोचा कि ऐसी सुन्दरी मेरी माता हो तो उसकी गोद में बैठकर स्नेह पाऊँ और दूध पीऊँ। गोरक्ष परीक्षा में खरे उतरे और वर भी पाया।"⁵

"गौरी ने परीक्षा में खरे उतरने पर गोरक्ष को सुन्दर स्त्री रत्न पाने का वर दिया।" देवी के वर की

3- गो० ना० यु० पृष्ठ - 46

4- गो० ना० च० पृष्ठ - 52

मान रक्षा के लिए शिव ने माया से एक कन्या उत्पन्न की जिसने गोरक्षनाथ को पतिरूप में वरण किया। गोरक्ष उसके घर में जाकर छः माह के बालक बन गये और दूध पीने के लिए मचलने लगे। कन्या बड़े फेर में पड़ी। गोरक्षनाथ ने उससे कहा कि मुझमें काम विकार तो होने से रहा पर तुम हमारा कोपीन ॥करपटी॥ धोकर उसका पानी पी जाओ तुम्हे पुत्र होगा। आदेश के अनुसार कन्या ने करपटी धोकर जलपान कर लिया। जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम कर्पटीनाथ पड़ा" ⁶

इससे यह स्पष्ट है कि वे नारी के केवल मातृरूप के ही पूजक थे। उन्होंने जीवन के उच्चादशों में संयम, और ब्रह्मचर्य को ही उचित माना ।

एक ओर यह था तो दूसरी ओर उनमें बच्चों के प्रति स्नेह की भावना तथा उनके प्रति उदारता के भाव भी विद्यमान थे। एक अनुश्रुति ⁷ के अनुसार एक बार जब गोरक्षनाथ संजीवनी मन्त्रों के पाठ में मग्न थे तब कुछ बालक उनके पास आकर उनसे गाड़ी बनाने की जिद करने लगे। बच्चों के भावों को समझ कर उन्होंने गाड़ी बना दी। तत्पश्चात् वे उनसे गाड़ीवान बनाने की जिद करने लगे। जब मना करने पर भी वे नहीं माने तब वे मिट्टी का पुतला बनाने लगे, साथ ही संजीवनी मन्त्रों का उच्चारण भी करते जा रहे थे, जिनके प्रभाव से उस पुतले में प्राण संचार होने लगा। जब वह पूरा हो गया तब सचमुच का बालक था जिसे गहिनीनाथ नाम दिया गया।

एक अन्य कथा में भी उनकी उदारता तथा सहृदयता का परिचय मिलता है। एक बार⁸ गोरक्षनाथ अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ के साथ कौण्डल्य पुरनगर में पहुंचे। वहाँ उन्होंने नगर बीच चौरंगी पर एक हाथपाँव कटा बालक पड़ा देखा तो गुरु से आज्ञा लेकर उन्होंने उसे अपने साथ ले लिया। चौरंगी से उठाने के कारण उसका नाम चौरंगीनाथ रखा और अपने शिष्य रूप में ग्रहण किया।

एक अन्य अनुश्रुति⁹ भी इस प्रकार के संकेत देती है - एक बार दुग्ध की आवश्यकता पड़ने पर गुरु गोरक्षनाथ ने अपने शिष्य पवननाथ को दुग्ध लाने के लिए ग्राम में भेजा। कुछ युवकों द्वारा परिहास स्वरूप बतलाने पर उन्होंने एक निर्धन ब्राह्मण के द्वार पर अलख जगाया। ब्राह्मणी द्वार पर आयी और अश्रुपूरित नेत्रों से बोली - योगी मैं तुम्हें खाली हाथ न भेजती किन्तु देने के लिए कुछ नहीं है। पवननाथ अन्य घर से दुग्ध लेकर लौट आये तथा सारा वृत्तान्त गुरु जी से कह सुनाया। सुनकर गोरक्षनाथ को दया आ गयी तथा एक चुटकी राख अभिमन्त्रित कर पवननाथ को दी तथा ब्राह्मण के घर डाल आने को कहा जिसके प्रभाव से ब्राह्मण धनधान्य से परिपूर्ण हो गया।

- 5- ना० स० पृष्ठ - 49
 6- ना० स० पृष्ठ - 50
 7- गो० ना० च० पृष्ठ - 20
 8- गो० ना० च० पृष्ठ - 18

जहाँ उनमें इस प्रकार की सद्वृत्ति थी वहीं पवित्र गुरु भक्ति भी विद्यमान थी। गुरु के प्रति उनमें विशेष श्रद्धा थी। समय पर वे गुरु के लिए अपनी जान भी देने के लिए तत्पर रहते थे। एक कथा के अनुसार¹⁰ एक बार मत्स्येन्द्र नाथ ने परीक्षा लेने के उद्देश्य से उन्हें ग्राम में भोजन मांग लाने को कहा। गोरक्षनाथ जी ने एक द्वार पर जाकर अलख जगाया। उन्हें वहाँ से भोजन में बड़े प्राप्त हुए जिन्हें लेकर वे गुरु के पास आये। मत्स्येन्द्र नाथ जी ने उन्हें खाकर और इच्छा प्रकट की तो गोरक्षनाथ जी ने फिर उसी द्वार पर जाकर अलख जगाया। लेकिन इस बार गृहिणी ने उन्हें फटकारा, फिर काफी अनुनय विनय के बाद गृहिणी ने एक आँख के बदले एक बड़ा देने को कहा। तब गोरक्षनाथ ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। गृहिणी जबतक अन्दर जाकर बड़ा लेकर लौटी तबतक उन्होंने आँख की पुतली निकाल ली थी जिसे देखकर गृहिणी आश्चर्य चकित हुई तथा तुरन्त ही बड़ा देकर अन्दर चली गयी। गोरक्षनाथ वापस लौटे तो मत्स्येन्द्रनाथ घटित घटना को जानकर उनकी गुरु भक्ति से प्रसन्न हुए तथा आँख की पुतली लेकर यथास्थान लगा दी।

इससे पता लगता है कि उनमें गुरु भक्ति अटूट थी। आप जाति-पाति के भेद-भाव से भी बहुत दूर थे। डा० रागेंय राघव ने लिखा है¹¹ " गोरख

9- गो० ना० च० पृष्ठ - 104

10- गो० ना० च० पृष्ठ -

ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं मानते थे। कबीर को यह परम्परा बहुत कुछ अंश तक सम्भवतः उन्हीं से प्राप्त हुई थी। धनी हो या दरिद्र, ब्राह्मण हो या शूद्र, बौद्ध हो या जैन, जहां तक मनुष्य का सम्बन्ध था, वे सबको समान दृष्टि से देखते थे।"

इस प्रकार अनुश्रुतियों, धारणाओं के आधार पर यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि समय की पुकार के साथ बिगड़ती हुई धर्म-साधना व्यवस्था को संवारने के लिए अपने म अन्य समस्त समुदायों को आत्मसात् करके नाथपन्थ को प्रतिष्ठित करने वाले गुरु गोरक्षनाथ का व्यक्तित्व अप्रतिम था। वे एक व्यक्ति नहीं वरन् संस्था थे, जिन्होंने कितने ही योगियों को दीक्षित कर नाथपन्थी प्रभाव को प्रशस्त किया। आप धर्म जगत् के उन्नायक अलौकिक ज्योति स्वरूप थे। वे दिव्य द्रष्टा तथा युगस्रष्टा थे। वे समय के अनुरूप युग प्रवाह को मोड़ने वाले तथा समाज सुधारक थे। आपने सत्याचरण, ईमानदारी और सच्चाई का उपदेश दिया। गुरु गोरक्षनाथ जिस पंथ की स्थापना कर गये वह आज भी उनकी सर्वव्यापकता, लोक प्रसिद्धि की पताका भारत तथा अन्य सीमावर्ती देशों में फहरा रहा है।

अस्तु, लोक प्रसिद्ध गुरु गोरक्षनाथ का व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रभावशाली था।

जन्म सम्बन्धी धारणाएँ :

गुरु गोरक्षनाथ का जन्म और कर्म दोनों ही दिव्य है। आपका जन्म रहस्यमय है। आपके जन्म के सम्बन्ध में अनेक प्रवाद प्रचलित है। एक अनुश्रुति के अनुसार¹² भिक्षाटन के समय मत्स्येन्द्र नाथ ने गोदावरी नदी के तटवर्ती चन्द्रागिरि नामक स्थान पर एक निःसन्तान स्त्री को विभूति दी। लोक निन्दा के भय के कारण उसने वह विभूति झाड़ू के पास गोबर में फेंक दी। पुनः बारह वर्ष पश्चात् मत्स्येन्द्र नाथ के अनुसन्धान स्वरूप उसी झाड़ू के निकट गोबर के ढेर से एक दिव्य, अलौकिक बारह वर्ष का बालक प्रकट हुआ।

नेपाली परम्परा के अनुसार¹³ महादेव ने एक पुत्राकांक्षिणी नारी को विभूति दी। नारी ने अविश्वास कर उसे गोबर के ढेर में फेंक दिया। बारह वर्ष बाद महादेव के पुनः अनुसन्धान के फलस्वरूप उस स्थान से गोरक्ष का आविर्भाव हुआ।

एक अन्य अनुश्रुति¹⁴ में अयोध्यया के निकट सरयू के तट पर थोड़ी दूर जयश्री अथवा जायस नामक स्थान पर मत्स्येन्द्रनाथ ने निःसन्तान स्त्री को अभिमन्त्रित विभूति दी। ब्राह्मणी ने विभूति गोबर के ढेर में फेंक दी। बारह वर्ष पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ के आवाहन पर वहीं से गोरक्षनाथ का प्रादुर्भाव हुआ।

एक अन्य मतानुसार¹⁵ निराकार निरंजन के धर्म से गोरक्ष की उत्पत्ति हुई। ये मत्स्यजात मत्स्येन्द्र

के पिता थे। इन्होंने अपने पाप का प्रक्षालन करने के लिए गुरु का अन्वेष्टन किया और अन्त में अपने पुत्र को ही गुरु रूप में वरण किया।

यद्यपि गुरु गोरक्षनाथ जी का जन्मवृत्तान्त रहस्यमय है तथापि उपर्युक्त मतों की परीक्षा कर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

- 1 - गुरु गोरक्षनाथ जी का जन्म अयोध्या था।
- 2 - उनके गुरु मत्स्येन्द्र नाथ थे।
- 3 - माता-पिता के सम्बन्ध में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता है।
- 4 - यद्यपि जन्म किस वंश में हुआ इस विषय में पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते तथापि अधिकांश मत उनके ब्राह्मण होने की ओर संकेत करते हैं।

जन्म स्थान :

डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने गुरु गोरक्षनाथ जी के जन्म स्थान तथा जीवन वृत्त के विषय में विविध मतों का संकलन किया है। उनमें से निम्नलिखित मत उनके जन्म स्थान के विषय में उद्धृत किए जा रहे हैं।¹⁶

- 1 - नेपाल, पंजाब, गोरक्षपुर आदि को उनका जन्म स्थान माना जाता है।
- 2 - गोदावरी के तट पर एक ब्राह्मणी के गर्भ से गोरक्ष का जन्म हुआ और बारहवें वर्ष के

अन्त में मत्स्येन्द्र द्वारा आन्तर्धानिक रीति से गोरक्ष का सम्प्रदान हुआ। गोरक्ष ने गौसेवा की ओर योग शक्ति प्राप्त की।

3- योगिसंपदायाविष्कृति में उन्हें गोदावरी तीर के किसी चन्द्रागिरि में उत्पन्न बताया गया है।

4- दरबार लाईब्रेरी, नेपाल के गोरक्ष सहस्रनाम नामक एक लघुकाय हस्तलेख के एक श्लोक के अनुसार दक्षिण दिशा में स्थित किसी बड़व नामक देश में महामन्त्र के प्रसाद से महा बुद्धिशाली गोरक्षनाथ का अभ्युदय हुआ था।

5- कुक्स और ग्रियर्सन द्वारा उद्धृत एक परम्परा के अनुसार गोरक्षनाथ सत्ययुग में पंजाब के पेशावर में, त्रेता में गोरक्षपुर में, दापर में दारिका के भी आगे हुरभुज में और कलिकाल में काठियावाड़ की गोरखमढ़ी में प्रादुर्भूत हुए थे।

6- बंगाल में प्रचलित एक विश्वास के अनुसार गोरक्षनाथ उसी प्रदेश में उत्पन्न हुए थे।

7- नेपाली परम्परा के अनुसार गोरक्षनाथ पंजाब से नेपाल गये थे।

8- गोरखपुर के महन्त के अनुसार गुरु गोरखनाथ टिला झेलम, पंजाब से गोरखपुर आये थे।

12- म० गो० एवं उ० तपः स्थलि पृष्ठ - 7

13- गो० ना० पृष्ठ - 89

14- म० गो० ए० उ० तपः स्थली पृष्ठ - 8

9- नासिक के योगियों का विश्वास है कि वे पहले नेपाल से पंजाब आये और बाद में नासिक की ओर गये थे।

10- सम्प्रदाय में टिला के प्राधान्य को देखकर ब्रिग्स ने अनुमान किया है कि गोरक्षनाथ सम्भवतः पंजाब के निवासी रहे होंगे।

11- कच्छ में प्रसिद्ध है कि गोरक्षनाथ नाथ के शिष्य धर्मनाथ पेशावर से कच्छ आये। ग्रियर्सन के अनुसार धर्मनाथ गोरक्षनाथ के सतीर्थ थे।

12- ग्रियर्सन का अनुमान है कि गोरक्षनाथ सम्भवतः पश्चिमी हिमालय के रहने वाले थे।

13- गोरक्षनाथ ने उड़ीसा की भी यात्रा की थी और भल्लिकानाथ को शिष्य बनाया।

उपर्युक्त मतों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य मत प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं -

14- गोरक्षनाथ अवध की परम्परा के अनुसार जायस नामक नगर में एक परम् पवित्र ब्राह्मण कुल में प्रकट हुए थे।¹⁷

15- महार्थ मंजरी गोरक्षनाथ जी की रचना मानी जाती है। उसके त्रिवेन्द्रम् संस्करण से पता चलता है कि वे चोल देश के निवासी थे।¹⁸

15- गो० ना० पृष्ठ - 90

16 गो० ना० पृष्ठ - 90

16- गोरक्षनाथ का जन्म स्थान पेशावर का उत्तर पश्चिमी पंजाब था।¹⁹

17- श्रीयुत दिनेश चन्द्र महाशय का अनुमान है कि वे पंजाब प्रान्त में जालन्धर स्थान में जन्म ग्रहण किये थे।²⁰

उपर्युक्त विविध मतों की परीक्षा कर गुरु गोरक्षनाथ के जन्म स्थान के सम्बन्ध में निम्नीलिखित तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं -

1- गुरु गोरक्षनाथ जी के जन्म स्थान के सम्बन्ध में अधिकांश मत भारत के पश्चिमोत्तर भाग की ओर संकेत करते हैं।

2- इनमें अधिकांश पंजाब की ओर संकेतित है।

3- गुरु गोरक्षनाथ ने सम्पूर्ण भारत ही नहीं आप्तु नेपाल आदि अनेक सीमावर्ती देशों में भी यात्राएँ की थी।

4- प्रचलित विश्वासों तथा प्रवादों से ऐसा अनुमान भी किया जा सकता है कि सारा संसार ही उनका घर था। उनके लिए कोई बन्धन नहीं था। वे इच्छानुसार कहीं भी घूम सकते थे। अतः अन्वेषकों द्वारा उनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न तथ्य प्रस्तुत किये गये तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनके जन्म के विषय में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की सूक्ति अक्षांशः सत्य उतरती है।

17- म० गो० एवं उ० तपः स्थली पृष्ठ - 7

18- वही पृष्ठ - 8

समय :

गुरु गोरक्षनाथ के काल सम्बन्धी अनेक तथ्य है। यद्यपि इस विषय में अनेक अन्वेषकों ने समय-समय पर जानने के प्रयास किये हैं तथापि कोई अकाट्य प्रमाण आज भी प्राप्त नहीं हैं। क्योंकि उन्होंने अपने पीछे ऐसा कोई तथ्य नहीं छोड़ा, जो किसी निश्चित समय की ओर संकेत करते हों। प्रायः ऐसा अधिकांश सन्तों के साथ देखा जाता है। क्योंकि सन्यासी होना जन्मान्तर माना जाता है। सन्यासी होने के बाद नामादि का भी परिवर्तन होता है। अतः सन्यासी होने के बाद अधिकांश के सम्बन्ध में ऐसा ही देखा जाता है कि वे अपने पूर्व जन्म, वंश, कुल, स्थान, समय आदि के सम्बन्ध में कहीं कोई चर्चा नहीं करते। तब उनके जीवन वृत्त को जानने के लिए किंवदन्तियों, कथाओं तथा अनुश्रुतियों पर ही निर्भर करना पड़ता है। ऐसा ही गुरु गोरक्षनाथ जी के विषय में भी है।

अतः गुरु गोरक्षनाथ जी के समय के सम्बन्ध में जो कथाएँ, प्रचलित हैं उन्हें संक्षेप में निम्न लिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

1- वे सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि चारों ही युगों में वर्तमान रहते हैं।²¹

19- गो० ना० यु० पृष्ठ - 43

20- आ० यो० पृष्ठ - 5

21- आ० यो० पृष्ठ - 2

2- नेपाल के इतिहास की आलोचना करके प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान "सिल्वी लेवी" इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि वे राजा नरेन्द्रदेव के समसामयिक थे, अर्थात् सप्तम् शताब्दी में वर्तमान थे।²²

3- नेपाल में ही प्रचलित एक अन्य प्रवाद के अनुसार गोरक्षनाथ जी ने चतुर्थ शताब्दि के अन्तिम भाग में नेपाल के बौद्ध राजा महीन्द्रदेव को पदच्युत करके अपने स्नेहास्पद सेवक वसन्तदेव को सिंहासन पर अभिषिक्त किया।²³

4- राजा भर्तृहरि गोरक्षनाथ जी के शिष्य थे। वे एक प्रवाद के अनुसार राजा विक्रमादित्य के भाई थे। विक्रमादित्य से विक्रमसंवत् आरम्भ होता है। इसके अनुसार गोरक्षनाथ को ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी का व्यक्ति मानना पड़ेगा।²⁴

5- बहुत से विद्वान भर्तृहरि को ई० संवत् की सातवीं शताब्दि का मानते हैं। तदनुसार गोरक्षनाथ को सप्तम्, पंचम, चतुर्थ शताब्दि का व्यक्ति भी माना जा सकता है।²⁵

6- पश्चिमी भारत में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि सिद्ध योगी धर्मनाथ ने चौदहवीं शताब्दि में कच्छ प्रदेश में योग धर्म का प्रचार किया था और वे गोरक्षनाथ जी के शिष्य अथवा गुरु भाई थे। इसके अनुसार वे चौदहवीं शताब्दि के व्यक्ति जान पड़ते हैं।²⁶

22- आ० यो० पृष्ठ - 4

23- आ० यो० पृष्ठ - 4

7- महाराष्ट्रीय महापुरुष ज्ञानेश्वर महाराज की श्रीभद्र भगवद् गीता की टीका से पता चलता है कि उनके गुरु श्री भन्निवृत्ति नाथ जी श्रीभद्र गैनीनाथ के शिष्य थे। गैनीनाथ योगी गुरु गोरक्षनाथ जी से उपदेश ग्रहण किये थे। ज्ञानेश्वर महाराज तेरहवीं शताब्दि के अन्तिम भाग में जीवित थे। महाराष्ट्र में वे अपने युग के सर्वप्रथम धर्म संस्कारक माने जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि गोरक्षनाथ जी बारहवीं शताब्दि में विद्यमान थे।²⁷

8- बंगीय साहित्य के आचार्य श्रीयुत दिनेश चन्द्र सेन महाशय ने "मयनामती के गीत", "गोरक्ष विजय", धर्ममंगल आदि प्राचीन बंग साहित्यिक ग्रन्थों की आलोचना करके यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि गोरक्षनाथ जी का जीवन काल एकादश शताब्दि है।²⁸

9- इनका जन्म विक्रम की दशम् शताब्दि में हुआ था।²⁹

10- बंगाल में गोपीचन्द्र के गीत मानिकचन्द्र के गीत कहलाते हैं। मानिक चन्द्र गोपीचन्द्र का पिता है। मानिक चन्द्र धर्मपाल का भाई है। धर्मपाल का समय 759 ई० है।³⁰ चूँकि गोरक्षनाथ का सम्बन्ध गोपीचन्द्र से भी जोड़ा जाता है इस विचार से उनका समय सातवीं

24- आ० यो० पृष्ठ - 4

25- आ० यो० पृष्ठ - 4

26- आ० यो० पृष्ठ - 3

27- आ० यो० पृष्ठ - 3

28- आ० यो० पृष्ठ - 3

आठवीं शताब्दि के लगभग बैठता है।

11- गूगा का गोरक्ष से सम्बन्ध था। गूगा औरंगजेब से लड़ा था ॥ 1659-1707 ई०॥ गूगा फिरोज शाह से लड़ते हुए मारा गया ॥ 1351-1388 ई०॥ शाह दिल्ली का अधिपति था। टाइ के अनुसार गूगा एक राजपूत था जो महमूद गजनवी से लड़ता हुआ मारा गया ॥ 1024 ई०॥ फिरोजपुर की किंवदन्ती के अनुसार वह चौहान था। विजनौर की किंवदन्ती के अनुसार वह पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक था जो 1192 ई० में मुहम्मद गोरी से लड़ते हुए मारा गया।³¹

12- गोरख बाबा फरीद से मिले थे, जो 1244 में गिरनार आये थे और 1266 में जिनकी मृत्यु हो गयी थी।³²

13- मेवाड़ में बप्पा रावल का खड्ग अभी तक ससम्मान सुरक्षित है। कहा जाता है कि यह उन्हें गुरु गोरक्षनाथ ने दिया था।³³

14- शंकर जिनका गोरक्षनाथ पर कुछ प्रभाव मिलता है का समय ई० सन् 8वीं शताब्दि का अन्तिम भाग है।³⁴ तदनुसार गुरु गोरक्षनाथ का समय शंकर के बाद नहीं, दशवीं शताब्दि का अनुमानित करता है।

15- दूसरी ओर चौदहवीं विक्रमीय शताब्दि के महामति सायणाचार्य विद्यारण्य स्वामी के शंकर दिग्विजय ग्रन्थ से गोरखनाथ की प्राचीनता का पता चलता है तथा यह भी विदित होता है कि वे शंकराचार्य के पूर्व विद्यमान

थे। शंकराचार्य के द्वारा उपर्युक्त ग्रन्थ में परकाय प्रवेश के सन्दर्भ में अपने शिष्य के प्रति कहलाया गया है कि जिस तरह प्राचीन काल में मत्स्येन्द्र नाम के महात्मा योगी ने परकाय प्रवेश कर अपने शरीर की रक्षा का भार अपने शिष्य गोरखनाथ को सौंपा था, उसी तरह मैं तुम्हें परकाय-प्रवेश के पहले अपने शरीर की रक्षा का भार सौंपता हूँ।³⁵ इस कथा के अनुसार गुरु गोरक्षनाथ का शंकराचार्य का पूर्ववर्ती होना इंगित होता है।

16- एक कथानुसार कानिफानाथ के सामने गोरखनाथ ने योग बल प्रदर्शन किया था। अतः ये दोनों समसामयिक थे तथा इनके गुरु क्रमशः जालन्धरनाथ तथा मत्स्येन्द्र नाथ थे।

17- चर्पट का समय उनके शिष्य शाहिल वर्मा से जो पंजाब की पहाड़ियों में चम्बा रियासत का राजा था, लगभग 920 ई० से पूर्व ज्ञात होता है। गोरख शतक में चर्पट मछंदर के शिष्य कहे गये हैं।³⁶ इसके अनुसार मत्स्येन्द्र का समय नवीं शताब्दि के पूर्व रहा होगा।

18- रसालू जालन्धर का शिष्य था। अनेक सम्बन्धों में रसालू का स्वरूप दृष्टि गोचर होता है। वह एक चौहान राजा का पुत्र था। राजपूतों के बगर नामक स्थान के एक राजा को वह गोरक्ष के प्रसाद से प्राप्त हुआ था। वह लगभग 1150 ई० सन् में जीवित था। वह पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक था और 1024 ई० में वह महमूद गजनवी से युद्ध करते हुए मारा गया।

वह एक भीषण योद्धा था। 1884 में टेम्पल ने रसालू को 8वीं सदी का प्रमाणित किया है। पंजाब में कागड़ा नामक स्थान पर दुर्गा का प्रसिद्ध मन्दिर महमूद गजनवी ने 1009 ई० में लूटा था। इस प्रकार रसालू का समय 1009 ई० में भी हो सकता है।³⁷

19- डा० कालिदास नाग के अनुसार 12वीं शताब्दि तक गोरक्ष से गोपीचन्द के योग दीक्षा प्राप्त करने की कथा गुजरात में प्रसिद्ध हो चुकी थी।³⁸ तदनुसार गोरक्ष का समय 11वीं शताब्दि हो सकता है।

20- दिनेश चन्द्र सेन ने गोपीचन्द को राजेन्द्र चौल के तिरूमलय वाले लेख के गोविन्द चन्द्र से मिलाकर 11वीं शताब्दि का समय नियत किया है। गुर्जर, प्रतिहार, गहड़वाल, कन्नौज वंश के गोपीचन्द का समय 1114 है।³⁹

21- प्र० च० बागची द्वारा सम्पादित कौल-ज्ञान-निर्णय का समय 11वीं शताब्दि है। अतएव मत्स्येन्द्र उससे पूर्व हुए।⁴⁰ गोरक्ष उनके शिष्य थे।

22- मधुसूधन सरस्वती का गोरक्ष से कुछ सम्बन्ध बतलाया जाता है उनका काल 1700 ई० के लगभग है।⁴¹

29-	गो०	ना०	च०	पृष्ठ - 1
30-	गो०	ना०	यु०	पृष्ठ - 25
31-		वही		पृष्ठ - 23
32-		वही		पृष्ठ - 20
33-		वही		पृष्ठ - 20

23- भर्तृहरि का पिंगला से सम्बन्ध है। एक कहानी के अनुसार पिंगला नाम की स्त्री का पति परमारो का अन्तिम चन्द्रवती राजा एक हूण था। एक कथा के अनुसार रानी पिंगला धार ॥मालवा॥ के राजा भोज की पत्नि है, जिसका समय 1018-1060 है।⁴² तदनुसार भर्तृहरि का गोरक्षनाथ जी से सम्बन्ध होने से उनका समय इससे पूर्व बैठता है।

उपर्युक्त साहित्यिक, ऐतिहासिक कथाओं एवं जनश्रुतियों के संक्षिप्त विवरण से गुरु गोरखनाथ जी के आविर्भाव काल के विषय में निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं

1- गोरक्षनाथ तथा कानिफानाथ समसामयिक थे तथा उनके गुरु क्रमशः मत्स्येन्द्र नाथ तथा जालन्धरनाथ थे। अतः इनमें से किसी एक का काल निश्चित हो जाने पर अन्य तीनों का समय निश्चित किया जा सकता है।

2- एक अनुमान के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि वे चारों ही युगों में वर्तमान रहते हैं क्योंकि अधिकांश कथाएँ भिन्न-भिन्न समय प्रदर्शित करती हैं। ईसा पूर्व शताब्दि से ॥उक्त वर्णित चतुर्थ मत॥ लेकर 17वीं शताब्दि ॥उक्त वर्णित 11वाँ तथा 22वाँ मत॥ तक उनके वर्तमान रहने के संकेत मिलते हैं।

34- गो० ना० यु० पृष्ठ - 27

35- म० गो० एवं उ० तयः स्थली - पृष्ठ-10

36- गो० ना० यु० पृष्ठ - 17

37- वही पृष्ठ - 22

38- वही पृष्ठ - 24

3- अधिकांश मत उनके 7वीं शताब्दि से लेकर 12वीं शताब्दि के बची होने के संकेत देते हैं।

4- योगी सिद्धों का दीर्घायु होना माना जाता है। अतः महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी के लम्बे समय तक वर्तमान रहने के संकेत मिलना आश्चर्य की बात नहीं है।

महायोगी :

गुरु गोरक्षनाथ एक महायोगी थे। दार्शनिक शब्द का जो अर्थ सामान्यतः लिया जाता है, उसमें वे मूलतः दार्शनिक नहीं थे तथापि योग साधना के द्वारा प्रत्येक तत्व का साक्षात् अनुभव करने की क्षमता रखते थे। वे तर्क-वितर्क में विश्वास नहीं रखते थे। शास्त्राभ्यास के द्वारा परम् सत्य की अनुभूति करना उनका ध्येय न था। न ही वे किसी भी विचार धारा को उपयुक्त समझते थे। उन्होने सदैव दार्शनिक चिन्तन द्वारा सत्य की पक्षपात् रहित खोज को ही महत्व दिया। योग साधना द्वारा शरीर, इन्द्रियों, मन, बुद्धि, हृदय के पूर्ण नियमन को ही सत्य माना। उन्होने सदैव योग मार्ग द्वारा ही परम् सत्य की खोज को श्रेष्ठ समझा। उन्होने यही माना कि मनुष्य योग साधना मार्ग द्वारा ही अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत निर्मल तथा परम् सत्य के प्रकाश को धारण में समर्थ बना सकता है।

39-	गो०	ना०	यु०	पृष्ठ - 26
40-		वही	पृष्ठ - 28	
41-		वही	पृष्ठ - 26	
42-		वही	पृष्ठ - 25	

इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर योगी गुरु गोरक्षनाथ ने विचारशील सत्यान्वेषकों के लिए जो योग दीक्षा दी, वही उनके द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक मत के रूप में परिणत है।

वस्तुतः गुरु गोरक्षनाथ शिवयोगी थे। जिन्होंने शिव परिवर्तित योग मार्ग को ही अपूर्व निष्ठ के साथ जन-मानस तक पहुँचाया। वे शिव के ज्योतिर्मय रूप थे। वे योग मार्ग के प्रचार के लिए ही इस भूतल पर अवतरित हुए थे।⁴³

गुरु शिष्य परम्परा :

आदिनाथ ॥शंकर॥, मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरक्षनाथ, ये ही नाथ योगियों के सर्वमान्य आदि गुरु हैं जिन्होंने प्रणवमय सूक्ष्म वेद योग की शिक्षा दीक्षा योगियों को दी। आदिनाथ तो साक्षात् शंकर ही है। एक कथा⁴⁴ के अनुसार क्षीर समुद्र के तट पर श्री शंकर ने जो उपदेश दिया वह मत्स्य के पेट में गुप्त रूप से विद्यमान मत्स्येन्द्र नाथ ने सुन लिया। मत्स्येन्द्र नाथ सप्तशृंग पर्वत पर अपूर्णाङ्ग चौरङ्गी से मिले जिससे वह पूर्ण हो गये। तदन्तर मत्स्येन्द्रनाथ ने वह उपदेश गोरक्षनाथ को दिया। गुरु गोरक्षनाथ ने वह अपने प्रिय शिष्य गाहिनीनाथ को दिया। गाहिनीनाथ ने कलिकाल से ग्रस्त जीवों की रक्षार्थ शिष्य परम्परानुसार प्राप्त वह उपदेश निवृत्तिनाथ को दिया।

43- अहमेवाहस्मि गोरक्षो मद्रूपं तन्निबोधत ।
योग मार्ग प्रचाराय मयारूपमिदं धृतम् ।।
॥कल्पदुम तन्त्र से उद्धृत॥

अन्यत्र भी कहा गया है⁴⁵ कि समस्त सिद्धों के गुरु आदिनाथ के अनेक शिष्यों में मुख्य मत्स्येन्द्रनाथ थे। मत्स्येन्द्रनाथ के प्रमुख शिष्य थे गुरु गोरक्षनाथ के शिष्य गाहिनीनाथ। गाहिनीनाथ के शिष्य हुए निवृत्तिनाथ तथा उनके शिष्य थे ज्ञाननाथ।

उक्त विवरणों के अनुसार आदिनाथ ॥शंकर॥ की शिष्य परम्परा निम्नवत् वर्णित की जा सकती है-

आदिनाथ ॥ शंकर ॥
मत्स्येन्द्रनाथ चौरंगीनाथ
गुरु गोरक्षनाथ
गाहिनीनाथ
निवृत्तिनाथ
ज्ञाननाथ

अतः समस्त नाथ सिद्धों के आदि गुरु आदिनाथ शंकर ही थे तथा गुरु गोरक्षनाथ आदिनाथ के प्रशिष्य एवं मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे।

44 - क्षीर सिंधु परिसरी। शक्तिच्या कर्ण कुहरी ।
नैणां के श्रीत्रिपुरारी। सांगितले जें ।
ते क्षीर कल्लोलाआंतु । मकरोदरी गुप्तु ।
होता तया चा हातु । पैहे जाले ।
श्री मत्स्येन्द्र सप्तशृंगी । भगनावयवा चौरगी ।
भेटावा किं तो सर्वांगी। सम्पूर्ण जाला ।

पूर्ववर्ती परवर्तीनाथ सिद्धों तथा विभिन्न राजा-महाराजाओं पर प्रभाव :

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ के आविर्भाव काल के समय तत्कालीन समाज अनेक विचित्र परिस्थितियों का सामना कर रहा था। तान्त्रिक साधना-प्रणाली के उचित स्वरूप को न समझकर उस समय वाह्याचार को ही सब कुछ समझ बैठने वालों की संख्या वृद्धि के साथ अनिष्ट की आशकाएँ तथा अनैतिकता बढ़ती जा रही थी। भारत-वर्षीय धर्म-सम्प्रदायों में परम् शुद्ध तथा साधनोन्नति रूप का दुरुपयोग प्रारम्भ हो गया था। मनुष्य कामेच्छा आदि वासनाओं की पूर्ति को ही स्व साधन समझने लगा था। उसी संकट के समय गुरु गोरक्षनाथ ने इन्द्रिय निग्रह-योग-साधना के आदर्शों को सामने लाकर सयम पूर्ण जीवन की उच्चता, आडम्बर रहित जीवन की महिमा तथा चरित्र की परमोच्चता के महत्व की ओर प्रत्येक का ध्यान आकृष्ट किया। उनमें इतना आत्म विश्वास तथा संकल्प की दृढ़ता थी कि उन्होंने अपने योग-बल से अपने गुरु मत्स्येन्द्र नाथ को भी प्रभावित किया। यद्यपि गुरु गोरक्षनाथ ने योग प्रदर्शन को कभी महत्व नहीं दिया तथापि दूसरों की भलाई के लिए इसमें भी संकोच नहीं हुआ। अस्तु हिमालय के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों से लेकर अफगानिस्तान पर्यन्त सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा भारत के सीमावर्ती नेपाल आदि देशों में गुरु गोरक्षनाथ के अलौकिक प्रभाव का नाना प्रकार से परिचय देने वाली कथाएँ आज भी प्रचलित हैं। उनके व्यक्तित्व ने नाथ सिद्धों को ही नहीं अपितु राजा-महाराजाओं यहाँ

तक कि सामान्य जनता को भी अपने उच्चादर्शों के प्रति प्रभावित किया।

एक कथानुसार⁴⁶ त्रियाराज्य से मत्स्येन्द्रनाथ के उद्धार के लिए गुरु गोरक्षनाथ वहाँ पहुँचे। तब मत्स्येन्द्रनाथ ने उन्हें अपने पुत्र मीननाथ को स्नान करा लाने के लिए कहा। गोरक्षनाथ मीननाथ को लेकर नदी पर गये तथा मीननाथ का पैर पकड़ कर एक शिला से दे मारा तथा खाल अलग कर उसे लाकर छत पर सुखाने के लिए डाल दिया। मत्स्येन्द्रनाथ के पूछने पर उन्होंने जैसा किया था बतला दिया। रानी मैनाकिनी विलाप करने लगी। मत्स्येन्द्रनाथ भी क्रोध करने लगे तब गुरु गोरक्षनाथ ने एक सौ आठ मीननाथ उपस्थित कर दिए। रानी आश्चर्य से देखती रह गयी। अन्त में उन्होंने अन्य को लुप्त कर असली मीननाथ को रानी को सौंप दिया। रानी बहुत प्रभावित हुई तथा मत्स्येन्द्रनाथ को साथ ले जाने दिया।

चलते समय मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने साथ एक सोने की ईंट लेली। जिसे वह पर्वतीय रास्ते में संभालते चल रहे थे। गोरक्षनाथ ने जब यह जाना तो गुरु की इच्छा लुप्त करने के विचार से सामने के पर्वत को स्वर्णमय बना दिया। मत्स्येन्द्रनाथ यह देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए तथा वह ईंट उन्होंने वहीं डाल दी।

ऐते कष्टरता वृथा पथगता ते तत्त्वतो वांचिता -
स्तस्मात् सिद्धमते ----- ।।

आचार्या बहुदक्षिता हुतिरता नग्नव्रतास्ताप साः ।
नाना तीर्थ निषेवका जिनपरा मौनेस्थिरता नित्यशः ।।

एक समय⁴⁷ गुरु गोरक्षनाथ की भेंट कानिफानाथ से हुई। स्वागतार्थ कानिफानाथ ने आम के वृक्ष से कुछ फल अपनी योग शक्ति के द्वारा अपने पास एकीकृत कर लिए। जो स्वयं टूट-टूट कर आ गये थे। दोनों ने फल खाये। खाने के बाद कुछ फल शेष बच रहे। गोरक्षनाथ ने कहा कि इन्हें जहाँ से तोड़ा था वहीं लगा दिया जाय। कानिफानाथ ने पारहास किया कि कहीं टूटे फल भी दुबारा लगाये जा सकते हैं। तब गुरु गोरक्षनाथ ने अभिभन्त्रित भभूत उन पर डाली जिससे वह फल वृक्षों पर जा कर लटक गये। इस चमत्कार को देखकर कानिफानाथ ने कहा कि मुझे आपके विद्या बल का ज्ञान हो चुका है। आपकी सामर्थ्य बहुत बढ़ी चढ़ी है। इससे मैं समझ गया कि अभी मुझे बहुत कुछ सीखना बाकी है।

गोरक्ष ने वीर भद्र को हटाकर ही अपने गुरु मत्स्येन्द्र के शव का उद्धार किया था। उस समय शिव ने वीर भद्र से कहा था यद्यपि यह सत्य है कि तुम गोरक्षनाथ से किसी प्रकार निम्न कोटि में नहीं हो तो भी अभिमान ने तुम्हें पराजित कर दिया।⁴⁸

गोरक्ष ज्वालेन्द्र को इसीलिए दबा लेते हैं क्योंकि गोपीचन्द उनसे भयभीत थे। गोपीचन्द के नगर में §बंगाल में§ एक बड़ा फकीरों का जमघट था। जहाँ गोरख आ गये। इस भीड़ से बचने के लिए जालन्धर कुएँ में जा बैठे और घोड़े की लीद से अपने को ढक लिया। लीद एते ते खलु दुःख भाग निरता ते तत्वतो वञ्चिता। स्वस्मात् सिद्धमतं स्वभाव समयं धीरः परं संश्रयेत् ॥

को जितना ही साफ किया जाता वह उतनी ही रात को फिर कुँपें में आ इकठ्ठी होती। तब मयनावती ने यह सब कहा। मत्स्येन्द्र ने आकर खतरा बतला दिया तब गोरख ने लोहा, चांदी, सोने, की तीन मूर्ति बनाकर जालन्धर को परास्त किया।⁴⁹

दयानाथ बड़ा सशक्त व्यक्ति था। किन्तु गोरखनाथ के सामने उसकी शक्ति एवं चमत्कार क्षीण हो गये। क्रुद्ध होकर उसने एक फूँक से भीषण आग लगा दी। धू-धू जलती आग को गुरु गोरक्षनाथ ने देखा तो उनकी दृष्टि मात्र के आगे ही आग बुझ गयी। तब गोरक्षनाथ ने दयानाथ को दीनोधर पर्वत पर एक सुपारी पर सिर रखे शीर्षासन करते हुए तप करते देखा। तब गोरक्षनाथ ने अपना हाथ लम्बा किया तथा दयानाथ को कान पकड़कर सिन्ध लौटा लाये तथा दयानाथ से कहा लोगों को दुःख न दो तुम्हें और तुम्हारे अनुवर्तियों और परवर्तियों को स्वच्छ श्वेत वस्त्रों और अच्छे घोड़ों की कभी कमी नहीं पड़ेगी। तथा दयानाथ को अपना शिष्य बनाया।⁵⁰

मग समाधि अव्यत्यया । भोगावी वासना यया ।
ते मुद्रा श्री गोरक्षराया । दिधली मीनी ।
तेणें योगाब्जनी सरोकरु । अभिषेकिले ।
मग तिहीं ते शांभव । अदयानन्दवैभव ।
सम्पादिले सभ्रमव । श्री गहिनी नाथा ।
तेणे कलकलितु भूतां । आला देखोनि निरुता ।
ते आज्ञा श्री निवृत्ति नाथा । दिधली ऐसी ।
ना आदिगुरु शंकरा । लागोनि शिष्यपरम्परा ।
बोधा चा हा संसारा । जाला जो आमुते ।

- यो०वा०सि०द०वि० पृष्ठ-17

॥ज्ञानेश्वरी 18/1751-58॥ से

उद्धत ।

गौड बंगाल देश के महाराज गोपीचन्द और उनकी माता मैनावती भी अपना राजपाट छोड़कर दौनो गुरु गोरखनाथ के शिष्य बन गये।⁵¹

नेपाल के एक प्रखण्ड दाङ के राजकुमार रत्नपरीक्षक ने गोरखनाथ से दीक्षित होकर सात सौ वर्षों की दीर्घ आयु का उपभोग करते हुए सिद्ध बाबा रतन नाथ के नाम से एशिया के अनेक भागों को अपनी योग सिद्धि से चमत्कृत किया।⁵²

योगिराज मल्लिकानाथ उड़ीसा के निवासी कहे जाते हैं। उनका पूर्व नाम विबुधेन्द्रमल्ल था। वे क्षत्रिय योद्धा थे। एक बार आखेट के समय कृपामूर्ति गोरखनाथ का उन्हें दर्शन हुआ। उन्होंने योगेश्वर के चरण में प्रणाम किया पर आर्शीर्वाद न पाकर गोरखनाथ के मस्तक पर प्रहार किया। जटाजूट से टकराकर खड्ग के टूट जाने पर राजा को पश्चाताप हुआ। उन्होंने योग बल से प्रभावित होकर महायोगी गोरखनाथ से योग-दीक्षा ली।⁵³

स्याल कोट के नरेश शालिवाहन के प्रवास के लिए जाने पर उनकी छोटी रानी लूना ने बड़ी रानी के पुत्र पूरन से अपनी काम-निषासा-तृप्ति की याचना की और मनोरथ पूरा न होने पर राजा के वापस आने पर पूरन पर कुर्म का दोष लगाकर राजकुमार के हाथ-पाँच कटवा कर कुएं में डलवा दिया। योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ

45- शाके 1212 में महाराष्ट्र सन्त सिद्ध ज्ञाननाथ ॥ज्ञानेश्वर॥ ने ओवी छन्द में मराठी भाषा में योगशास्त्र गीता की भावार्थ दीपिका व्याख्या कर अन्त में अपना परिचय महेशान्वय ॥शिववंशावली॥ के नाम से दिया है-

अपने शिष्य गोरखनाथ के साथ घटना स्थल पर आ पहुँचे। गोरखनाथ ने कुएं में कुमारी कन्या के हाथ से कटे सूत की डोरी कुएं में डाली और कहा यदि निर्दोष है तो डोरी के सहारे कुए से बाहर आ जायेंगे। पूरन परीक्षा में सफल हुए। तब मत्स्येन्द्रनाथ के आशीर्वाद तथा गोरखनाथ जी की कृपा से पूरन पूर्णांक हो गये। वे नाथ पंथ में चौरंगीनाथ नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी प्राण संकली रचना में गोरखनाथ को अपना अन्नदाता कहा है।⁵⁴

योगी राज जसनाथ को अमर कायदेह सिद्ध योगेश्वर गोरक्षनाथ ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर धन्य किया था।⁵⁵

योगी रांझा का नाम अमर है। वह एक बार गुरु गोरक्षनाथ की शरण में पहुँचे और कहा कि मुझे आशीष दीजिए कि मैं हार का प्रेम प्राप्त करूँ। गोरक्षनाथ ने कहा योगी होना आसान नहीं है, प्रेमास्पद तो एकमात्र परमात्मा है। योगी को शरीर पर राख मल कर शरीर को राख समझना होता है। नारी वर्ग को माँ बहन के रूप में देखना होगा। आजीवन भिक्षा माँगना होगा। संसार को सपना समझना होगा। रांझा ने कहा मेरा प्रेमास्पद ही परमात्मा है। मैं योगी बनूँगा। गोरक्षनाथ ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया।⁵⁶

आदिनाथ गुरु सकल सिद्धांचा। मछिन्द्रतयाचा मुख्यशिष्या।
मछिन्द्रा ने बोध गोरक्षासी केला। गोरक्ष वोलला गहनीप्रीति।
गहनी प्रसादे निर्वृत्ति दातार। ज्ञानदेवासार चाजे विले।

-ना० संदेश - पृष्ठ - 7

46- गो० ना० च० पृष्ठ - 67

एक कथानुसार⁵⁷ राजा भर्तृहरि अपनी रानी पिंगला की मृत्यु हो जाने पर उसके शोक में शमसान पर पिंगला-पिंगला की रट लगाये हुए थे। गोरक्षनाथ उनके उद्धा हेतु एक मिट्टी का वर्तन तोड़कर वहीं घड़ा-घड़ा चिल्लाने लगे। भर्तृहरि की आवाज उनसे दब गयी तो वे गोरक्षनाथ के पास आकर बोले क्यों रो रहे हो? ऐसा घड़ा तो और बन जायेगा। किन्तु गोरक्षनाथ ने कहा कि घड़ा तो वैसा नहीं बन सकता पिंगलाएँ बन सकती हैं। तब भर्तृहरि के सामने अनेक पिंगलाएँ उपस्थित हो गयी। योगिक प्रभाव को देखकर भर्तृहरि ने गुरु गोरक्षनाथ की शरण ली तथा योगी बन गये।

एक अन्य कथा में गुरु गोरक्षनाथ ने एक दैवी शक्ति वाला खड़ग बाप्पा को दिया और कहा कि तेरा वंश जबतक इस दैवी शक्ति द्वारा प्रदत्त खड़ग की पूजा करेगा एवं सुरक्षित रखेगा मेवाड़ का राज्य नहीं जायेगा। बाप्पारावल के पश्चात् भी जो समय-समय पर मेवाड़ राज्य के राजा-महाराजा हुए उन्होंने श्री गोरक्षनाथ पंथ के योगियों को बड़ी-बड़ी जागीरे दी तथा आश्रम बनवाये।

एक बार⁵⁹ नेपाल के राजा नरेन्द्र देव के शासन काल में मत्स्येन्द्र नाथ के अनुयायियों पर अत्याचार किये गये। तब गोरक्षनाथ ने वृष्टि के देवता नागों का आसन बनाकर बैठ गये। इस प्रकार छानबे करोड़ मेघ बन्दी हो गये। नेपाल में अकाल पड़ गया। राजा के गुरु

47- गो० ना० च० पृष्ठ - 33

48- गो० ना० यु० पृष्ठ - 31

49- गो० ना० यु० पृष्ठ - 61

बन्धुदत्त अकाल का कारण जानकर मत्स्येन्द्रनाथ को उस स्थान पर लाये जहाँ गोरक्षनाथ आसन लगाये बैठे थे। गुरु के प्रणाम के लिए गोरक्षनाथ उठे तो मेघ मुक्त हो गये। जल वृष्टि हो गयी। उसी समय से नेपाल में उनकी महिमा बढ़ गयी और इस घटना की स्मृति में रथयात्रा निकाली जाती है।

एक कथानुसार⁶⁰ गुरु गोरक्षनाथ ने नेपाल के राजा पृथ्वी नारायण शाह को वरदान दिया था कि जहाँ कहीं भी विजय की इच्छा से तुम पैर रखोगे, वहाँ तक तुम्हारी विजय होगी। पृथ्वी नारायण शाह का ही वंशज आज भी नेपाल का शासक है। सभी शाह वंशीप राजाओं ने गोरक्षनाथ जी को अपना गुरु देव माना और उनकी कृपा तथा आशीष की आकांक्षा करते आ रहे हैं। नेपाल के महाराज की राजतिलक विधि आज भी गोरक्षनाथ जी की तपोभूमि मृगस्थली के महन्त द्वारा सम्पन्न की जाती है। वहाँ के राज सिक्कों पर श्री गोरक्षनाथ अंकित रहता है। मुकुट पर उनकी चरण पाटुकाँ अंकित रहती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुरु गोरक्षनाथ वह महासत्त्वशील व्यक्ति थे, जो दरिद्रों की कुटियों से आरम्भ करके राज महलों तक अपना अबोध प्रभाव रखते थे। धन-यश, पद-यश से बहुत दूर वह केवल योगी थे; सिद्ध योगी। उनमें एक ओर मस्त के भाव थे तो दूसरी ओर उनका विश्वसनीय प्रभाव था, जिसने असंख्य पथ विचलित योगियो, राजा-महाराजाओं को लौटाया अपने निहित शाश्वत परम उद्देश्य की ओर।

दार्शनिक विचार-धाराओं का संक्षिप्त परिचय :

गोरक्ष दर्शन का मूलाधार दैतादैत विवर्जित अनन्त, अखण्ड सर्वेश्वर परमात्म तत्व है। परम तत्व प्राप्ति का कारण शिव-शक्ति तत्व की अभेदात्मक आत्मा भिव्यक्ति है। शक्ति निजा, परा, अपरा, सूक्ष्मा तथा कुण्डलिनी के रूप में विकसित होती है। महामाया कुण्डलिनी शक्ति का अनुभव योगी सपवत सुप्तावस्था में मूलाधार में कुण्डलाकर रूप में करता है। जागृतावस्था में यही कुण्डलिनी शक्ति शिव से तादात्म्य के लिए छटपटाती है, तथा नवचकों जिनकी पिण्डान्तर्गत विशिष्ट भागों में स्थिति का अनुभव किया जाता है को भेद कर सहस्रार पर्यन्त शिव से मिलन करती है। यही परमात्म तत्व मिलन की आनन्दानुभूति का स्थान है।

वस्तुतः शक्ति शिव से अभिन्न है। यही शक्ति प्रत्येक प्राणी में क्रियाशील रूप में विद्यमान है तथा शिव ही सभी का परम तत्व तथा वास्तविक सत्य है। यही शक्ति परम तत्व में स्थित होने पर शिव कहलाती है तथा जब क्रियाशील होती है तो अपने को ब्रह्माण्ड में परिणत कर असंख्य पिण्डों की रचना, विकास एवं संहार में प्रवृत्त होती है। समाधि लीन सिद्ध प्रवर योगी के लिए शिव शक्ति का कोई भेद नहीं रहता वह उनकी तद् रूपता का आनन्दोपभोग करता है।

50- गो० एवं उ० तपः स्थाल पृष्ठ - 20

51- यो० वा० गो० वि० पृष्ठ - 33

52- म० गो० एवं उ० तपः स्थली पृष्ठ-16

53- यो० वा० गो० वि० पृष्ठ - 63

अस्तु शिव-शक्ति तत्त्व के आनन्दमय आच्छादित एकत्व से समस्त ब्रह्माण्ड व्यवस्था का पिण्ड में प्रत्यक्ष दर्शन सुलभ हो जाता है। जो कुछ ब्रह्माण्ड शरीर में व्यवस्थित रूप में विद्यमान है वहीं पिण्ड में भी है। नश्वर शरीर की अनादि, अनन्त ब्रह्माण्ड-व्यवस्था के साथ तद् रूपता की अनुभूति का प्रत्यक्ष दर्शन एक महान आदर्श है।

गुरु गोरक्षनाथ की दार्शनिक विचार धाराओं का परमादर्श "समरसकरण" है। समरसकरण की स्थिति में पिण्ड का ब्रह्माण्ड के साथ, पिण्डों का परम शक्ति के साथ, शक्ति का परमात्मतत्त्व शिव के साथ पूर्ण अभेदात्मक स्थिति का अनुभव होने लगता है। आत्मा-परमात्मा का भेद विलुप्त हो जाता है। असीम और ससीम, जीवात्मा तथा परमात्मा, आत्म तथा अनात्म का भेद समाप्त हो जाता है। उस समय तत्त्वज्ञानालोकित योगी समस्त सांसारिक अस्तित्वों को अपने में प्रत्यक्ष दर्शन करता है। वह समस्त विभिन्नताओं में आनन्दमय एकता के प्रत्यक्ष दर्शन कर परम सुख का भोग करता है।

गुरु गोरक्षनाथ का दर्शन योग परक दार्शनिक चिन्तन तथा पूर्ण आध्यात्म-ज्ञान-आलोकित मनः स्थिति में स्वयं के अनुभव पर आधारित सत्य तथा रहस्यमयी अनुभूतियों को प्रकट करने वाला दार्शनिक विचार है।

- 54- यो० वा० गो० वि० पृष्ठ - 75
 55- यो० वा० गो० वि० पृष्ठ - 47
 56- यो० वा० गो० वि० पृष्ठ - 294

प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थ :

संस्कृत हिन्दी तथा अन्यान्य प्रादेशिक भाषाओं में प्राप्त बहुत से ग्रन्थों के प्रणेता गुरु गोरक्षनाथ कहे जाते हैं। किन्तु आज यह निश्चित करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है कि वास्तव में कौन-कौन से ग्रन्थ स्वयं गुरु गोरक्षनाथ-विरचित है। तथापि "सिद्ध पद्धति" गुरु गोरक्षनाथ के दार्शनिक विचारों को प्रकट करने वाला एक अनुपम एवं उपादेय ग्रन्थ है। गुरु गोरक्षनाथ विरचित प्रमाणिकता के विषय में इस ग्रन्थ में ही अधोलिखित विवरण मिलता है 61 -

आदिनाथ ॥परमेश्वर॥ शक्तियुक्त ॥शिव॥ जगद्गुरु ॥जगत के प्रकाशक॥ को नमस्कार कर मैं गोरक्षनाथ ॥गोरक्षनाथ॥ सिद्ध सिद्धान्त पद्धति का विवेचन करता हूँ।"

यद्यपि गुरु गोरक्षनाथ रचित माने जाने वाले गोरक्षशतक, अमनस्क योग आदि ग्रन्थों में भी योगिक दर्शन प्राप्त होता है तथापि "सिद्ध सिद्धान्त पद्धति" में उनके दार्शनिक विचारों, आध्यात्म चिन्तन पद्धति एवं पररमतत्वादार्श के विषय में व्यवस्थित गम्भीर एवं क्रमबद्ध वर्णन किया गया है।

- 57- गो० ना० च० पृष्ठ - 74
 58- यो० वा० गो० वि० पृष्ठ - 328
 59- म० गो० एवं उ० तपः स्थली पृष्ठ - 15
 60- मा० गो० एवं उ० तपः स्थली पृष्ठ - 16
 61- आदिनाथ नमस्कृत्य शक्तियुक्त जगद्गुरुम्।
 वक्ष्ये गोरक्षनाथोद्धृतं सिद्ध सिद्धान्त पद्धतिम् ॥
 -सि० सि० प० पृष्ठ - 1, 1/1

"गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह" दूसरा प्रमुख संस्कृत ग्रन्थ है। जिसमें अन्यान्य ग्रन्थों के अंशों एवं योगियों की वाणियों का संकलन किया गया है। जो गुरु गोरक्षनाथ के धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करता है। लेकिन यह भी सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के आधार पर ही रचा गया लगता है। अतः गुरु गोरक्षनाथ के दर्शन का मूलाधार ग्रन्थ "सिद्ध सिद्धान्त पद्धति" तत्त्वज्ञानालोकिता योगियों एवं अन्वेषकों के लिए मार्ग दर्शन रूप है।

गुरु गोरक्ष योग दीक्षा पद्धति :

योग साधना उतनी ही प्राचीन है जितनी भारतीय संस्कृति। यह किसी प्रकार के बन्धन से युक्त नहीं है। यह मार्ग प्रत्येक दार्शनिक अन्वेषक के लिए सदैव अनुकूल तथा जीवन की पूर्णता, समस्त आन्तरिक बाह्य सम्बन्धों की एकता, पूर्ण समायोजन तथा आनन्ददायी शान्ति का प्रदायक है। यह मन, बुद्धि, समस्त इन्द्रियों, शारीरिक कुचेष्टाओं आदि पर नियन्त्रण कर "पूर्ण सामरस्य" प्राप्ति का सुगम तथा सर्वव्यापक मार्ग है। यह मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक शक्तियों को विकसित कर चरित्र उज्ज्वल तथा मन को शुद्ध और पवित्र बना देता है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ ने परम तत्व जिज्ञासुओं के लिए योग दीक्षा का प्रचार किया। साधकों के लिए योग ही सर्वश्रेष्ठ है। श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है "योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और

शास्त्र के ज्ञान वालों से भी तथा सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन योगी हो जाओ।" ⁶²

योग साधना प्रणाली केवल शरीर मात्र की ही क्रिया नहीं है। अपितु उसके लिए सच्ची जिज्ञासा, सुदृढ़ विवेक एवं पूर्ण वैराग्य, त्याग चाहिए। वैराग्य मुक्त प्राणी में ही किसी अनुसन्धान की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। अतः वैराग्ययुक्त जिज्ञासा तथा विवेक के साथ तत्त्वज्ञान प्राप्ति हेतु योग के अनुष्ठान में प्रवृत्त होना चाहिए।

प्रारम्भावस्था में योग पथ पर अल्प आचार क्रिया का प्रयोजन करना चाहिए। नित्य प्रातः गुरु का ध्यान कर, शौचादि क्रिया से निवृत्त हो दन्तधावन तथा स्नानादि के बाद श्री नाथ जी के मन्दिर में पूजा करनी चाहिए तदपरान्त भोजन तथा सांयकाल भी हाथ पैर आदि धोकर सांय कालीन पूजा विधि अनुसार पूजा करनी चाहिए। ⁶³

योगी जनों के लिए आचार की यही विधि मान्य है। इससे अधिक आचार में पड़ना योगी के लिए श्रेयस्कर नहीं है। वह तो विचार पूर्वक चिन्तन करता है। आचार तो कल्पित है। केवल विचार ही मुख्य है तथा सैद्धान्तिक रूप है। ⁶⁴ यही योगियों के लिए ग्राह्य है। अतः प्राण रक्षार्थ किये जाने वाले कार्यों को ही करना उचित है। क्योंकि प्राणरक्षा बिना मनःस्थिरता सम्भव नहीं है तथा मन स्थिरता के बिना किसी भी समय मोक्ष प्राप्ति सम्भव नहीं है। ⁶⁵

62- तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन ।।

गीता - 6/46

योग साधना हेतु भौगोलिक अनकूलता आवश्यक है। अतः धार्मिक, उपद्रव रहित, सम्पन्न देश में एकान्त वातावरण में, जल, अग्नि और कंकड आदि विवर्जित स्थान पर मठ की स्थापना कर साधना करना उपदिष्ट है।⁶⁶

मठ छोटे दरवाजे से युक्त, छिद्र, गड्ढे, सुरास्त्र से रहित गोबर से चिकनी और अच्छी तरह लिपा हुआ तथा मण्डप युक्त वेदी सहित चारों ओर पर कोटे से घिरा आदर्श युक्त होना चाहिए।⁶⁷

इस प्रकार योगी साधकों को उचित देश काल व्यवस्था को चुनकर गुरु उपदिष्ट योग मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। यद्यपि योग की पूर्वावस्था में जिज्ञासाओं को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, एकाएक मनुष्य को संसार में माता-पिता घर तथा जीवन की इच्छाएँ मनोवृत्तियाँ उसे विचलित करने में कोई कसर नहीं छोड़ती तथापि उसे इन सबको त्यागना पड़ता है।

एकान्तवासी वन में भूख सताती है, भिक्षार्थ जाने पर नगर में मोह माया उत्पन्न हो जाती है। अत्याधिक भोजन से काम विकार उत्पन्न होता है। अतः इन पर विजय प्राप्त करना होता है। ऐसी अवस्था में गुरु गोरक्षनाथ ने योगियों के लिए कहा है कि उचित

63- प्रातः अथाय गुरु स्मरणं कृत्वा अकालं स्मृत्वा शौचादिक्रियां दन्तधावनं स्नानं च कृत्वा नाथालये गत्वा पूजा कर्तव्या, पूजानन्तरं भोजनं कर्तव्यं सायं काले च हस्तादिकं प्रक्षाल्य सायं कालोचितरीत्या पूजा कर्तव्या।

आहार लेना चाहिए क्योंकि अत्यधिक भोजन से शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। अतः युक्त आहार से ही मन को शान्ति तथा मोह माया आदि समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं।⁶⁸

प्रारम्भिक अवस्था में बहुत से चंचल तथा विचलित बुद्धि युक्त युवा योगी यौगिक सिद्धि मिल जाने पर अहंकारी हो जाने से कार्य सिद्धियों के चक्कर में पड़कर तन्त्र-मन्त्र ॥ जादू टौना-झाड़ फूंक ॥ स्तम्भन, सम्मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटन आदि के रास्ते को अपना लेते हैं। उनके लिए कहा गया है कि तन्त्र मन्त्र, हानिकारक दवाओं का सेवन तथा राजा के दरवाजे पर भिक्षा की आशा नहीं करनी चाहिए। स्तम्भन, सम्मोहन, वशीकरण और उच्चाटन आदि की विधियों से दूसरों को प्रभावित कर स्वकार्य सिद्धि की भावना का परित्याग कर देना चाहिए।⁶⁹

योग की इस प्रथमावस्था में शील, सद्वृत्ति, सन्तोष, दया तथा गुरु उपदेश ही ग्राह्य एवं कल्याणकारी तथा मोक्षप्रद है। गुरु उपदिष्ट यह योग मार्ग अत्यन्त कठिन एवं दुर्लभ है तथापि यदि कोई इस मार्ग पर आगे बढ़ने का सत्प्रयास करता है तो यही मार्ग उसकी सफलता के बाद कल्याणकारी सिद्ध होता है।

64- तस्यादाचार वस्तु कल्पितमेव ---विचार एव मुख्यहीति सिद्धान्तः । - गो० सि० स० पृष्ठः 140

65- प्राणरक्षां बिना मनः स्थिरं न भवते, मनःस्थैर्य बिना कदापि काले मोक्षो न भवेत् - गो० सि० स० पृष्ठः 141

योग के विशिष्ट अंगों में आसन, प्राणायाम्, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि को ही विशेष महत्व दिया गया प्रतीत होता है- तथापि गुरु गोरक्षनाथ ने साधनान्तर्गत उक्त अंगों सहित यम नियम की क्रिया पद्धति पर प्रकाश डालकर उनकी सार्थकता को स्वीकार किया है।⁷⁰

वस्तुतः यम नियम योग साधना के विशेष अंग नहीं जान पड़ते, ये तो प्रत्येक मानव के लिए उपादेय हैं। मनुष्य किसी भी कार्य को करें, यम-नियम का उल्लंघन किसी भी दशा में नहीं किया जा सकता। अस्तु मनुष्य मात्र के लिए यम नियम का पालन आवश्यक होता है। योगी के लिए इनका योग के विशेष अंगों के साथ पूर्व समाहार श्रेयस्कर है।

यम का आशम उपशम है। अर्थात् समस्त इन्द्रियों को विषयभोगादि वृत्तियों की ओर से हटाकर आहार, निद्रा, शीत, वात और आतप आदि द्न्दों पर नियन्त्रण करना चाहिए।⁷¹ मनोव्यापार का नियमन ही नियम है अर्थात् एकान्तवास, असंगता, उदासिनता जो भी समय पर प्राप्त हो जाये उसी पर सन्तोष कर, राग, द्वेष आदि द्न्दों को भी त्याग कर गुरु चरणों का आश्रयण करना चाहिए।⁷² योग शास्त्रों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, अर्जव, मिताहार, शौच

66- सुराज्ये धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रवे।

धनुः प्राणपर्यन्तं शिलाग्निजल वर्जिते।।

एकान्ते मठिकामध्यये स्थातव्यं हठयोगिना।।

-ह० प्र० पृष्ठ -4/2/12

आदि दस लक्षण यम के तथा तप, सन्तोष आस्तिकता, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धान्त वाक्य श्रवण, ह्मी, भीति, तप, हवन आदि दस नियम बतलाये गये हैं।⁷³ इनका अनुसरण प्रत्येक उच्च जीवनाभिलाषि को करना चाहिए। वह चाहे किसी भी धर्म, समाज या युग का क्यों न हो। यम नियमादि का पालन मन की बाह्यमुखी वृत्तियों को नियन्त्रित कर सद्वृत्तियों की ओर ले जाने में सहायक होता है। ये व्यक्ति के चरित्र और आचरण की शुद्धि तथा उसके वैयक्तिक-सामाजिक जीवन के अनुशासन बद्धता के नैतिक सिद्धान्त है। इनके अभ्यास के द्वारा मनुष्य अपनी शक्ति को विकसित कर अपनी समस्त मूल अचेतन प्रवृत्तियों को वंश में कर सकता है। उद्देग रहित, सुख प्राप्ति से सर्वथा दूर तथा निरहकारी होकर जीवन यापन करना ही शान्तिदायक तथा उज्ज्वल चरित्र प्रदायक है।

गीता में भी कहा गया है कि जो मनुष्य समस्त कामनाओं से रहित, ममता, अहंकार, स्पृहा आदि से दूर है वहीं सदैव शान्ति प्राप्त करता है।⁷⁴

- 67- अल्प दारमरन्ध्र गर्तं विवरं नात्युच्चनीचायतं।
 सँश्रूय सहन्द्रलिप्तं ममलं निःशेषं जन्मतुङ्गितम्।
 बाह्ये मण्डपवेदिकूपरूचिरं प्राकारं संवेष्टितं।
 प्रोक्तं योगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाम्या सिभिः॥
 ह0प0 पृष्ठ- 5 / 1, 13

- 68- धाये न पाइबा भूषे न मरिबा अहर्निश लेबा
 ब्रह्म अग्नि का भेवं।
 हठ न करिबा पड्या न रहिबा यूँ बोल्या गोरषदेव ॥
 -गो0 बा0 पृष्ठ - 16/31

यम नियमों का उल्लंघन पर किसी भी प्रकार की भक्ति, कर्म, योग आदि का अनुष्ठान सम्भव नहीं है। अतः स्व कल्याणार्थ, समाज कल्याणार्थ, धर्म-जाति कल्याणार्थ प्रत्येक दशा में यम नियमों का पालन करना साधक के लिए योग मार्ग की आरम्भावस्था है, जिनके पालन से वह अपने चरित्र की उच्चता एवं उज्ज्वलता की ओर अग्रसर होता है।

अगला अंग आसन है। आसन का योग पद्धति में गूढ़ महत्व है। आसन अभ्यास के द्वारा शरीर में स्फूर्ति, स्थिरता तथा अरोग्यता आ जाती है। योग शास्त्रों में चौरासी लाख जीवों के अनुसार आसनों की संख्या 84 लाख स्वीकार की जाती है किन्तु इनमें से 84 को विशेष रूप से ग्रहण किया जाता है।⁷⁵ किन्तु गुरु गोरक्षनाथ जी द्वारा स्वस्तिकासन, पद्मासन, सिद्धासन को ही विशेष महत्व दिया गया प्रतीत होता है। इनमें से किसी एक आसन में स्थिरता प्राप्त कर लेना ही श्रेयस्कर है।⁷⁶

प्रथम स्वस्तिकासन परम गोप्य, सर्वश्रेष्ठ तथा हितकारी है। इसके अभ्यास से समस्त दुःख दूर हो जाते हैं ब्रह्मचर्य शक्ति बढ़ती है। इस आसन की विधि में जानु और ऊरु ॥जघांओं॥ के मध्य में पैरों के तलवों को अच्छी तरह लगाकर समान अवस्था में शरीर एक सीध में रखकर बैठ जाना होता है।⁷⁷

69- छाड़ौ तन्त मन्त बैदन्त। जन्त्र गुटिका घाट पाषंड।

जड़ी बूटी का नांव जिनि लेहू। राज दुवार पाव जिनि देहू ।।

वाम ऊरु जानुमूल में दाहिना पैर स्थापित कर दाये जानुमूल में बाया पैर स्थापित करें और दोनों हाथों को पीछे ले जाकर दाये हाथ से बायें पैर के अंगूठे तथा बाये हाथ से दायें पैर के अंगूठे को दृढ़ता से पकड़कर चिबुक को हृदय से लगाकर नासा के अग्रभाग को दोनों नेत्रों से देखे। इस प्रकार पद्मासन में स्थित हो जाने से समस्त व्याधि, शारीरिक मानसिक विकार नष्ट हो जाते हैं।⁷⁸

सिद्धासन मोक्ष प्रदायक है। गुदा और मेढ्र के मध्य योनि स्थान को बायें पैर की ऐड़ी से दबाकर दाये पैर की ऐड़ी को मेढ्र पर लगाकर शरीर को सीधा करें तथा इन्द्रियों को वश में कर भू के मध्य दृष्टि को स्थिर करना ही सिद्धासन कहा जाता है।⁷⁹

इस प्रकार आसन विधि में तत्पर योगी समस्त दुःखों की निवृत्ति सुखों का भोग तथा मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। सामान्यतः इनका अर्थ मन की स्थिरता चंचलता आदि को अनुशासित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जिनके निरन्तर अभ्यास द्वारा समस्त इच्छाओं पर नियन्त्रण कर विभिन्न प्रकार की चमत्कार पूर्ण यौगिक शक्तियों का स्वामी बन जाता है।

ध्यान मोहन बसि करन। छाड़ौ सकल अवचाट।
सूणौ है जोगैसरौ जोगारम्भ की वाट।

- 70- - गो० बा० पृष्ठ - 239 नरवैबोध ४/5
यम नियमासन प्रणायाम प्रत्याहार
धारणाध्यान समाधयौ उष्ठावर्गिन।
- सि० सि० प० पृष्ठ - 68, 2/32

सतत् आसनाभ्यास द्वारा प्राणायाम की प्रक्रिया अतिशीघ्र प्रारम्भ हो जाती है। प्राणायाम नाड़ियों में प्राण की स्थिरता के लिए उपयुक्त निर्दिष्ट योगांग है। रेचक, कुम्भक, पूरक और प्राण, अपान का मेलन-संघटकरण आदि चार लक्षण है⁸⁰। प्राणायाम प्रक्रिया विशेष बलवती होती है। इसमें रेचक वायु को बाहर निकालना होता है। पूरक में नासारन्ध्र से वायु को भीतर भरना होता है। तदन्तर शरीर के अन्दर वायु को स्थिर रखना ही कुम्भक है। संघटकरण में प्राण अपान वायु का ऐक्य होता है। यह प्राणायाम समस्त पापों से रहित कराने का हेतु है।

गीता में भी कहा गया है कि योगी जन अपान वायु में प्राणवायु को, प्राण में अपान वायु को स्थित करते हैं। प्राण और अपान की गति अवरुद्ध कर प्राणायाम के परायण होते हैं।⁸¹

प्राणायाम के अभ्यास से मृत्यु भय की निवृत्ति तथा हृदय शान्त एवं स्थिर हो जाता है। इससे योगी दीर्घायु को प्राप्त करता है।

- 71- यमः इति उपशमः सर्वेन्द्रियजय आहार निद्रा शीत वातातपजयश्चैवं शनै - शनै साधयेत्।
-सि० सि० प० पृष्ठ - 68/2/32
- 72- नियम इति मनोवृत्तिनां नियमनीमित्येकान्त वासो निः सगतौदासिन्यं यथार प्राप्ति सन्तुष्टि वैरं त्यं गुरुचरणावरुद्धतविमितिनियम लक्षणम् ।
- सि० सि० प० पृष्ठ - 70 - 2/33
- 73- अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः ।
दयार्जव भिताहारः शौचं चैव यमा दश ।।
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानभीश्वर पूजनम् ।
सिद्धान्त वाक्यश्रवणं हीमती च तपोहुतम् ।
नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ।।
- ६० प्र० पृष्ठ - 60 1/17-18

समस्त इन्द्रियों उनके विषय भोगों से हटाकर आत्मा में लीन करना ही योग का पाचवाँ अंग प्रत्याहार है।⁸² अतः मनुष्य द्वारा अपनी समस्त इन्द्रियों को उनकी प्रवृत्तियों की ओर से हटाकर आत्मा के साथ प्रत्याहार करना होता है। इन्द्रियां चंचल एवं उदेग पूर्ण होती हैं। इन्द्रियों की चंचलता से इच्छाएं बलवती तथा जागृत होती हैं। अतः प्रत्याहार अन्तर्गत इस प्रकार की समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना होता है। इस प्रकार आत्मा के साथ इन्द्रियों के प्रत्याहार सिद्धि द्वारा काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभ आदि का सर्वथा विनाश हो जाता है।

बाह्याभ्यान्तर सर्वव्याप्त मात्र एक आत्मा की भावना ही धारणा है। अतः जो भी बाहर भीतर प्रपंच उत्पन्न होता है उसकी निराकार आत्मा में अभिव्यक्ति तथा निश्चल दीप शिखा के समान आत्मचिन्तन ही करना चाहिए।⁸³ इस अवस्था की प्राप्ति पर्यन्त समस्त बाह्य आभ्यान्तर पदार्थों की स्व-आत्मा में अनुभूति होने लगती है। समस्त सांसारिक प्रपंच जो कुछ भी ब्रह्माण्ड व्यवस्था में विद्यमान है उसका प्रत्यक्ष दर्शन आत्मा में ही सुलभ हो जाता है।

74- विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधि गच्छति ॥

- गीता 2/71

75- चतुरशीति लक्षणामे कैकं समुदाहृतम्।
ततःशिवेन पीठानां षोडशोऽशतं कृतम् ॥

- गो0 श0 पृष्ठ - 3/9

तदन्तर धारणा की इस पूर्व अवस्था में धीरे-धीरे ध्यान का लय प्रारम्भ हो जाता है। जो, जो वस्तु जिस जिस रूप में भी प्रतीत हो उसमें सर्वथा आत्मा स्वरूप का चिन्तन ही ध्यान है।⁸⁴ इस अवस्था में केवल ध्यान मात्र का अनुसंधान शेष रह जाता है। मन, चित्त वृत्ति हीन हो जाता है। तब वह पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर आत्म स्वरूप में ही सन्नदर्शन करता है। अतः साधक के हृदय में विराजमान आत्मा का निश्चल चिन्तन ही ध्यान है।

साधक के लिए योग के सप्तागों को सिद्ध करने पर ध्येय का अनुसंधान ही शेष रह जाता है, यही समाधि अवस्था है। समाधि की चरमोत्कर्षावस्था में समस्त तत्त्वों की आत्मा से तद्रूपता की स्थिति प्राप्त हो जाती है। समस्त तत्त्वों की आत्मा के साथ अनायास एवं सहज ही अभेदता का नाम समाधि है।⁸⁵

गीता में भी कहा गया है कि सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकाकी भाव से स्थित योग युक्त आत्माबल सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को समस्त भूतों में तथा समस्त भूतों को आत्मा में दिखाता है।⁸⁶

76- आसनीर्मात स्वरूपरूपे समासन्नता स्वस्तिकासनं पद्यासनं सिद्धासनमेतेषां मध्ये यथेष्टमेकं विधाय सावधानेन स्थातव्यं।

- सि० सि० प० पृष्ठ - 73/2/34

77- जानूपीरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे।

ऋजुकायः सभासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते।

- गौ० श० पृष्ठ - 7/2/21

इस प्रकार गुरु गोरक्षनाथ जी द्वारा उर्पादष्ट योग साधना पद्धति परम तत्त्व परमात्मा के साथ पूर्ण सामरस्य की स्थिति का सहज स्वाभाविक हेतु है। यह सामाजिक, नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक आत्मानुशासन बनाने में सहायक हैं। इसके निरन्तर अभ्यास द्वारा शान्ति स्थिरता और सदैव आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है। यह ससीम से असीम की ओर, भय तथा मृत्यु से निर्भयता और अमरता की ओर अनेकता से एकता की ओर, द्वेष, कलहों आदि से प्रेम मार्ग की ओर ले जाने वाला सुदृढ़ मार्ग है। इसके सतत अभ्यास द्वारा विभिन्नाताओं, विषमताओं तथा नाना प्रकार के विकासों से युक्त दिखलायी पड़ने वाला यह ब्रह्माण्ड एक स्वतः प्रकाशित भव्य तथा सुन्दर आध्यात्मिक सत्ता के रूप में दिखलायी पड़ने लगता है। अतः योग साधना का मुख्य उद्देश्य है परम सत्य की खोज ।

महन्त दिग्विजय नाथ जी ने योग के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया है -

"धर्म का परम सूक्ष्म सार ही योग है। योग का अर्थ मिलाप है, जिसमें कर्म परायण जीव का मिलाप परस्पर आत्मा से होता है, व्यक्ति का मिलाप विराट् समीष्ट रूप विश्व हृदय से होता है। प्रत्येक का मिलाप

- 78- वामोरूपरि दार्क्ष्ण्यं चरणं संस्थाप्य वामं तथा।
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमवलोक।
देतद् व्याधिविकार नाशनकरं पद्यमासनं प्रोच्यते॥
- गो०श० पृष्ठ - 4/12

सभी से होता है - वह मिलाप होता है जिसमें बाह्यतः संसार की सारी विभिन्नताएँ उस एक परमात्मा में ओत-प्रोत हो जाती है, जो इन सारी विभिन्नताओं में स्वयं अपना अवतार अभिषिक्त कर रहा है। समस्त ज्ञान, अनुभूति अभिलाषा एवं अभिकर्म के संयमन द्वारा मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष में इस पूर्ण योग का अभ्यास ही धर्म का अन्तिम उद्देश्य है। सभी मत-मतान्तरों, कर्म काण्डों और संस्थाओं में आध्यात्मिक गुणों का अस्तित्व तभी माना जायेगा, जब वे इस योग प्राप्ति की ओर मानव को ले जाते हैं। यह योग ही समस्त विभेद के बीच अभेद की सजीव सक्रिय चेतना है और यही मानव जीवन के सभी पक्षों का विश्व-जीवन के साथ समन्वय है। धर्म व्यवस्था देता है कि हमारे व्यक्तिगत एवं पारिवारिक राजनीतिक एवं आर्थिक, सामाजिक एवं साम्प्रदायिक, राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय जीवन के सभी कार्य व्यापार इसी योगादर्श से संचालित एवं आलोकित होते रहे। यही योग-धर्म मानव संसार में सच्ची सुख शान्ति, सच्ची माधुरी और मंजुलता का आनयन कर सकता है।" 87

- 79- योनि स्थानकमडु धिमूल घटितं कृत्वा दृढं विन्यसेन्
मेढ्रे पादमयै कर्मेव नियतं कृत्वा समं विग्रहम्।
स्थाणु सयमितेन्द्रियोडचलदृशा पश्चन् भुवोरन्तर-
मेतन्मोक्ष कपाट भेद जनकं सिद्धासनं प्रीच्यते॥
- गो० श० पृष्ठ - 3/ 11
- 80- प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता। रेचक पूरक कुम्भक
संघटकरणाणि चत्वारि प्राणायामलक्षणानि।
- 76/2/35
- 81- आपाने जुरुति प्राणं प्राणेडपानं तथापरे।
प्ररणायानगती रुद्रध्वा प्राणायामपरायणाः।
- गीता 4/29

अतः गुरु गोरक्षनाथ जी ने योगी साधकों के लिए क्रमानुसार अनुशासन बद्ध योगांगों का अनुसरण करने की दीक्षा दी। योगी यम, नियम द्वारा बाह्यमुखी वृत्तियों की निवृत्ति आसनों के द्वारा स्थिरता प्राप्ति, प्राणायाम द्वारा नाडीशोधन, प्रत्याहार द्वारा चित्त वृत्तियों को विषय भोगादि की ओर से हटाकर धारणा द्वारा स्वात्मा में समस्त भूतों की तल्लीनता, ध्यानान्तर्गत मात्र आत्मा-परमात्मा का ध्यान कर समाधि द्वारा समस्त बाह्यम्यान्तर पदार्थों को आत्मा में तदाकार कर मुक्ति का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

82- प्रत्याहारमिति चैतन्यतुरगासां प्रत्याहरणं विकाशग्रसन उत्पन्न विकारस्याणि निवृत्तिर्भातीति प्रत्याहार लक्षणम्।

- सि० सि० प० पृष्ठ - 79/2-36

83- धारवेति सा बाह्यनीभ्यन्तर एकमेव निजतत्त्व स्वरूप मेवान्तः करणेन साधमेद् यथा यद्युत्पद्यते तत्तन्निराकारे धारयेत् स्वात्मानं निर्वीत दीप भिव सधारयेदीति धारालक्षणम्।

- सि० सि० प० पृष्ठ - 82/2 /37

84- परमाद्वैतस्य भावः स एवात्मैति यथा यद्यत्स्फुरति तत्तत्स्वरूपमेवेति भावयेत् सर्व भूतेषु समदृष्टिश्च इति ध्यान लक्षणम्।

- सि० सि० प० पृष्ठ - 85/2/38

85- सर्वतत्त्वानां सभावस्था निरुद्यमत्व मनायास स्थिति मत्वमिति समाधि लक्षणम्।

- सि० सि० प० पृष्ठ - 88-2/39

86- सर्व भूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।

- गीता - 6/29

87- म० दि० ना० स्मृ० पृष्ठ - 194

तृतीय अध्याय

गोरक्ष दर्शन में शिव-शक्ति

- 1- शिव-शक्ति का सामान्य परिचय
- 2- कुल-अकुल और शिव-शक्ति
- 3- शिव-शक्ति संयोग
- 4- इच्छा मात्र धर्मा शक्ति
- 5- शक्ति का क्रमिक विकास

शिव शक्ति का सामान्य परिचय :

अति प्राचीन काल से ही शिव-शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता रहा है। शिव-शक्ति का विवरण पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री एवं साहित्य में भी मिलता है। भारतीय संस्कृति में समय की दृष्टि से विद्वानों की राय में सिन्धु घाटी की सभ्यता सबसे प्राचीन प्रतीत होती है। सिन्धु घाटी से प्राप्त मूर्तियों में शिव-शक्ति के प्राचीनतम संकेत मिलते हैं।¹

सिन्धु घाटी के निवासियों का धर्म क्या था? इस विषय में विद्वानों के विचारों की समीक्षा कर यही कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न धार्मिक विचारों के लोग वहाँ निवास करते थे, तथापि वहाँ से प्राप्त मुद्राओं और मूर्तियों में शिव-शक्ति के संकेत अवश्य ही मिलते हैं। वहाँ से उपलब्ध एक मुहर पर एक पुरुष आकृति नुमा चित्र प्राप्त हुआ, जो वन्य पशुओं से समावृत है। अनुमानतः यह पशुपति शिव की मूर्ति है। यह पुरुष योगी की भाँति ध्यान मुद्रा में पद्मासन में बैठा हुआ है। त्रिशूल युक्त सींग तथा त्रिनेत्रों से युक्त है। चारों ओर पशुओं से घिरा हुआ होने के कारण यह पशुपति के रूप में द्रष्टव्य है। कई मुद्राओं तथा मूर्तियों में भी इसी प्रकार के देव की मूर्तियाँ अंकित हैं। अनुसन्धाता की यह दृढ़ धारणा है कि ये महायोगी पशुपति शिव हैं।

तदनन्तर योगी सम्प्रदाय के सम्पूर्ण साहित्य में भी शिव को एक अद्वैत, निगुण, स्वतः प्रकाशित, अपरिवर्तनीय, भेद रहित तथा समस्त प्रापंचिक सत्ताओं के पीछे चरम आध्यात्मिक सत्ता के रूप में तथा शक्ति को आत्मा-संशोधक, आत्म गुणात्मक, आत्म विभाजक, आत्म गुणात्मक सक्रिय दिक्काल बद्ध एवं सापेक्षिक समस्त प्रापंचिक सत्ताओं के स्रोत के रूप में वर्णित किया गया मिलता है। शिव नित्य, विज्ञानानन्दघन परमात्मा का वाचक है। यह आनन्ददाता परम कल्याण रूप है। यह पर ब्रह्म शिव अपरंपर, परमपद, शून्य, निरंजन परमात्मा है।² वे अनादि अनन्त, नित्य, निर्विकार, अज, अविनाशी, सर्वशक्तिमान, सर्वगुणाधार, सर्वज्ञ एवं सर्वोपरि हैं।

शक्ति समस्त शरीरों में व्याप्त होकर चित स्वरूप उनमें जीवन देने वाली और शरीर में प्राणों का स्तम्भन किये रहती है।³ अतः शक्ति शरीरान्तर्गत प्राण धारा को प्रवाहित करती है, उसकी संचालिका है। आगे स्पष्ट किया गया है -

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पंचविध प्राणों का जो समाहार करते हुए और परस्पर कर्षण-विकर्षण करते हुए नित्य निरन्तर शरीर को संचालित करती रहती है।⁴

शक्ति परतत्त्व ज्ञान दायिनी होती है, जो इस समस्त चराचर जगत को जीवित रखने में समर्थ एवं शक्ति सम्पन्न होती है। वह शक्ति समस्त अन्धकारों को विनष्ट कर ज्ञानमय प्रकाश प्रदान करती है। कहा

भी गया है⁵ कि वही शक्ति समस्त इन्द्रियों, मन और आत्मा के अन्धकार को सदैव दूर करने में समर्थ एवं शक्तिशालिनी होती है। वही प्रकाशशीला शक्ति प्राणदायिनी होती है।

अतः शक्ति चैतन्य स्वरूप है, प्राण संचरण करने वाली है, स्वयं ज्ञान रूपिणी है, व्यक्त रूप वाली भी है, अव्यक्त रूप वाली भी है तथा समस्त तत्त्वों में परिव्यापक है।⁶

आचार्य अक्षय कुमार पन्धोपाध्याय जी का शिव-शक्ति के विषय में मन्तव्य है⁷ कि शिव को जगत्पिता और शक्ति को जगज्जननी कहा गया है और उस स्तर पर वासनात्मक भाव से लिंग भेद का कोई प्रश्न ही नहीं है। समस्त प्राणिक सत्ताओं के पारमार्थिक निमित्त कारण के रूप में शिव जगत्पिता है और सक्रिय भौतिक कारण रूप में जगत् की अनेक रूप धारिणी उनका पालन कर पुनः आत्मगत करने वाली शक्ति या जगन्माता है। शिव सब में आत्म रूप में प्रकाशित हैं और शक्ति अपने विकास के विभिन्न स्तरों के अन्तर्गत विभिन्न क्रियाओं द्वारा उनके लिए शरीर, जीवन तथा बुद्धि और विवेक का स्फुरण करती है, एवं उनके आत्म प्रकाशन और आत्मानन्द में योगदान करती है। आत्माभिव्यक्ति के प्राणिक स्तर पर शक्ति के प्रकाशन एवं संकोचन की विभिन्न प्रक्रियाएँ हैं। वह एक को अनेक और अनेक को एक करती है। वह एक सत्ता में से अनेक सत्ताओं का सृजन करती है तथा पुनः समस्त सत्ताओं की मौलिक एकता

प्रदर्शित करती है। वह आध्यात्मिक को भौतिक पदार्थ बनाकर भौतिक को पुनः आध्यात्मिक बना देती है। वह आत्मा के लिए अनेक प्रकार के भौतिक, जैविक, मानसिक शरीर तथा आत्माभिव्यक्ति का क्षेत्र प्रदान करती है। उन समस्त शरीरों एवं समस्त ब्रह्माण्ड-क्रीड़ा के क्षेत्र की मूलमूल आध्यात्मिक एकता का प्रदर्शन करना शक्ति का ही काम है। वह सान्त ॥अन्त सहित॥ को अनन्त ॥अन्त रहित॥ और पुनः एक अनन्त, शाश्वत, अपरिवर्तनीय, सत्ता को समस्त परिवर्तनीय सीमित सत्ताओं में प्रदर्शित करती है। शक्ति की दिधा क्रीड़ा शाश्वत रूप से चल रही है।

वस्तुतः शिव अपने आप में विषमता की सम्पूर्ण एकता है। शिव ही भारतीय संस्कृति, धर्म और जीवन में विराट एवं अलौकिक समन्वय के देव हैं। जहाँ शिव का ईश्वरीय स्वरूप समस्त दर्शनों, आध्यात्म, तन्त्र, आराधना तथा उपासना में सर्वोपरि एवं सर्वोपरि रहा है वही उनका शिव मय रूप समस्त दुःखों असन्तोष आदि में आनन्ददायी है। शिव ही सृष्टि सृजन एवं संहार रूप में सर्वोपरि है। शक्ति पालनकर्त्री है। प्राण संचारिणी है।

अतः एक ओर शिव विराट समन्वय के देव, सृष्टि सृजन एवं संहार रूप में जगत्पिता है तो दूसरी ओर शिव की विराट जगत व्यवस्था के अन्तर्गत समस्त सत्ताओं को अभिव्यक्त करने वाली चिन्त्या ज्ञान स्वरूपा, अन्धकार हरणी जगज्जननी शक्ति विख्यात है।

कुल-अकुल और शिव-शक्ति :

"कुल" और "अकुल" सत्ता के दो भिन्न-भिन्न अंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक मात्र परमात्मा परमेश्वर शिव ही इन दोनों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। शिव से अभिन्न शक्ति ही महाप्रलय में अकुलावस्था युक्त कहलाती है तथा सृष्टि समय में यही शिव से अभिन्न रहने वाली शक्ति प्राणियों के कर्म के साथ ही कुल रूप व्यक्त अवस्था धारण करती है।

वस्तुतः अकुल अनन्त, शाश्वत, पूर्णस्वतः, सत्, अद्वैत, एक परब्रह्म शिव की ओर संकेत करता है तथा कुल एक की अनेक अभिव्यक्तियों की ओर संकेत करता है। शक्ति ही शिव के कुल ॥अभिव्यक्त॥ अकुल ॥अव्यक्त॥ स्वरूपों का सामरस्य प्रतिपादित करती है। अकुल अपरिवर्तनीय, भेदरहित, पारलौकिक सत्ता की इस जगत्व्यवस्था की अनन्त आत्माभिव्यक्तियों को प्रदर्शित करता है। अतः कुल-अकुल क्रमशः शक्ति एवं शिव स्वरूप ही है। कुल-अकुल, शक्ति शिव के रूप में ही प्रतिभासित होते प्रतीत होते हैं।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है⁵⁸ कि कुल-अकुल स्वरूप शिव-शक्ति की अभेदावस्था ही सामरस्य प्राप्ति की दशा में निरूपित की जाती है।

2 - अपरम्परं परमपदं शून्यं निरंजन परमात्मैति।
-सि०सि०प० पृष्ठ -8 1/17

शिव-शक्ति संयोग :

शिव और शक्ति योग एक अत्यन्त विशिष्ट सत्य है। शक्ति इस सम्पूर्ण जगत् व्यवस्था में अपने आपको व्यक्त करती एवं आनन्दित करती हुई, शिव से भिन्न कुछ भी नहीं है।

शक्ति-शिव में निहित है तथा शिव-शक्ति में निहित है। चन्द्र और चन्द्रिका के समान दोनों में कोई भेद नहीं है।⁹ शिव-शक्ति में उसी प्रकार तादात्म्य है जिस प्रकार चन्द्रमा और उसके किरणों में अर्थात् चन्द्रमा द्वारा प्रकाशित प्रकाश में। अतः जिस तरह चन्द्रमा और उसकी किरणें एक है जिनका चन्द्रमा से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं है। वे चन्द्रमा का ही रूप है, क्योंकि यदि चन्द्रमा प्रकाशित नहीं है तब किरणों के रूप में प्रकाशित होने वाला उसका प्रकाश स्वभावतः लुप्त रहता है। दोनों चन्द्र और चन्द्रिका अभिन्न है, इसी प्रकार शिव-शक्ति में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं जानना चाहिये।

शिव समस्त स्तरों से उपर शक्ति का आधार एवं आत्मा है। शिव-शक्ति का पारमार्थिक रूप है, जिसमें किन्हीं कार्यों के रूप में कोई आत्माभिव्यक्ति नहीं हुई है। यह शक्ति ही क्रमिक सृष्टि रचना एवं प्रलय काल के समय शिव की आत्माभिव्यक्ति के रूप में निहित है। अस्तु शिव-शक्ति की आत्मा है तथा शक्ति शिव का शरीर। आत्मा

3- या च सर्वत्र कायेषु प्राणिनां चित्स्वरूपिणी।
सा शक्ति प्राणदा प्राणस्ताम्बिनी नियता सदा।

- सा० कु० भ० पृष्ठ - 37

और शरीर में कोई तात्त्विकभेद करना सम्भव नहीं है, क्योंकि शरीर आत्मा की अभिव्यक्ति है। आत्मा से भिन्न शरीर कुछ नहीं है और न ही उसका कोई अस्तित्व है। इसी प्रकार शिव से भिन्न शक्ति का भी अपना कोई अस्तित्व नहीं है और यदि यह मानकर कि शक्ति शिव के बिना कुछ नहीं है अर्थात् शक्ति का अस्तित्व ही शिव से है उसकी अवेहलना कर दी जाय तो शिव की आत्माभिव्यक्ति उनका अनन्त रूपों में आत्म प्रकाशन एवं सक्रियता भी सम्भव नहीं है तब उनका कोई व्यक्तित्व सम्भव नहीं है। शिव स्वयं को लुप्त कर शक्ति की अभिव्यक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण जगत व्यवस्था की अन्तर्लीन आत्मा के रूप में विलास करते हैं। इसी शक्ति के कारण ही शिव स्वयं सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञानी, सर्वानन्द, सगुण परमेश्वर, जगत का सृजन कर्ता पालन कर्ता एवं भोक्ता बन जाते हैं। शक्ति के बिना शिव कुछ भी करने में समर्थ नहीं है।

गुरु गोरक्षनाथ जी के ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है¹⁰ कि सर्वशक्ति सम्पन्न होने से ही शिव सूक्ष्म, स्थूल समस्त भौतिक पदार्थों के परम कारण परमेश्वर है। रुद्र-विष्णु आदि रूपों में अवतरित होने से समर्थ है। शक्ति युक्त होने पर ही शिव सर्व समर्थ हैं। शक्ति रहित रहने पर वे कुछ भी करने में समर्थ नहीं है। अपनी शक्ति के साथ वे सम्पूर्ण अस्तित्वों के सृजन कर्ता एवं प्रकाशक बन जाते हैं।

4- प्राणापानं समानं च व्यानोदनं तथैव च ।
समादृत्य सभाकृष्य या नित्यं धावयत्यलम् ॥

- सा० कु० म० - पृष्ठ- 37

इस प्रकार परात्पर शिव ऊच्चतम प्रापंचिक सत्ताओं एवं काल दिक् तथा क्रिया से परे अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा व्यवहारिक जगत के समस्त स्तरों के अन्तिम कारण परमेश्वर तथा सर्वद्रष्टा हो जाते हैं। उनका पारमार्थिक स्वतः प्रकाश आत्म पूर्ण स्वरूप इस जगत व्यवस्था से किसी भी तरह प्रभावित हुए बिना ही समस्त लौकिक सत्ताओं के रूप में विभासित रहते हैं।

अतः शिव शक्ति के सम्बालिगन से ही इस प्रकार की विशिष्ट क्षमता को प्राप्त होते हैं कि वे अपने अपरिवर्तनीय, भेदरहित, अभिन्न स्वतः प्रकाशित पारमार्थिक अस्तित्वानन्द का उपभोग करते हैं। साथ ही शक्ति प्रदत्त शक्ति के कारण ही शिव सगुण ईश्वर के रूप में जगत का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं। इस रूप में शिव को विश्व का अधिष्ठाता कहा जा सकता है।

अपनी अनन्त शक्ति से युक्त परमेश्वर शिव अनन्त शक्तिमान बन जाते हैं, वे समस्त विश्व का अधिष्ठाता रूप होने से विश्व रूप एवं विश्वमय हो जाते हैं।¹¹ इस प्रकार परमात्म शिव का सम्पूर्ण जगत में अन्तर्यामी होना स्वतः सिद्ध है तथा उनके स्वरूप में अनन्त शक्ति निहित है। इस शक्ति के कारण शिव सम्पूर्ण जगत व्यवस्था एवं समस्त अस्तित्वों के स्वामी बन जाते हैं तथा उनपर अपना अधिपत्य स्थापित कर पाते हैं।

5- इन्द्रियाणां समस्तानां मनस आत्मनश्च या।
शक्ता तिमिर नाशाय सा शक्तिः प्राणादामता।।

- वही पृष्ठ - 37

अपनी अनन्त शक्ति से युक्त एकाकार परब्रह्म परमात्म परमेश्वर शिव तात्त्विक रूप में अपने पूर्ण आनन्दमय अवस्था में स्थित होने पर भी विविध प्रकार के विलासों में प्रकट होते एवं उनका भोग करते हैं। शक्ति का कभी लोप नहीं होता और अन्त में समस्त व्यवहारिक प्रपंचावस्था से भासित होते हुए अपने स्वरूप में एक वही परब्रह्म शिव शेष रहते हैं।¹²

अतः शिव अपनी अनन्त शक्ति से युक्त होने पर कैभव को प्राप्त होते हैं। वे आनन्द मय, अभेद तथा अपरिवर्तनीय स्वरूप में रहते हुए भी अपने को विभिन्न रूपों में प्रकट करते हुए विलास का आनन्दभोग करते हैं। इस तरह शिव भोक्ता और भोग्य, सृष्टा और सृष्टि, आधार और आधेय, आत्मा और आत्माभिव्यक्ति आदि दो रूपों में साथ-साथ प्रतिभासित होते प्रतीत होते हैं। न वे कभी शक्ति को त्यागते हैं और नहीं शक्ति कभी उनका त्याग करती है। अस्तु शिव-शक्ति का नित्य तादात्म्य सम्बन्ध है। उनके आपसी तादात्म्य सम्बन्ध का कभी लोप नहीं होता वे दोनों आत्मा और शरीर के समान ही है।

शिव दो रूपों में अभिव्यक्त होते हैं पारमार्थिक और सांख्यिक। एक सामान्य पुरुष शिव के इन दोनों रूपों के दर्शन नहीं कर पाता जबकि एक तत्वा ज्ञानालोकिता योगी शिव के दोनों ही रूपों व्यक्त और अव्यक्त अर्थात्

6 - चिन्द्रूपा, प्राणरूपा च ज्ञान रूपा च सा स्वयम्।
व्यक्ता व्यक्त स्वरूपा च सर्वतत्त्वेषु व्यापिका ।
- वही पृष्ठ - 38

अर्थात् सक्रिय एवं पारमार्थिक स्वरूप का सहज ही दर्शन कर लेता है। शिव की शक्ति कोई शिव से विलग गुण या लक्षण आदि नहीं है, अपितु विविधताओं से पूर्ण इस संसार में शिव की आत्म विलासिनी शक्ति शिव को अनन्त रूपों में व्यक्त करती है। शिव का यही सक्रिय रूप जो असंख्य रूपों में अभिव्यक्त होता है उनकी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित कहा जाता है। इसके अतिरिक्त शक्ति कुछ नहीं है। शिव की शक्ति तो स्वयं शिव ही है। शक्ति शिव है तो शिव शक्ति है।

पारमार्थिक रूप में शक्ति की कोई बाह्य अभिव्यक्ति नहीं होती, अतः पारमार्थिक स्वरूप में शिव-शक्ति रहित प्रतीत होते हैं जबकि वे किसी भी दशा में अनुपस्थित अर्थात् लुप्त नहीं है। दूसरी तरफ प्रापंचिक आत्माभिव्यक्ति में उनका सक्रिय रूप अधिक प्रभावित रहता है। सक्रियता की इस दशा में शिव स्वयं शक्ति के रूप में परिलक्षित होते हैं। सक्रियता की दशा में परिवर्तन शील रूपों की आत्माभिव्यक्ति से भी शिव के पारमार्थिक रूप में कोई परिवर्तन या भेद नहीं होता। तदनन्तर शक्ति शिव के स्वरूप में अन्यान्य सत्ता के रूप में न रहकर उनसे तद्रूप प्रतीत होती है।

- 7- यो० वा० सि० द० वि० पृष्ठ - 56
- 8- कलाकूल स्वरूपा सामरस्य निज भूमिका निगद्यते।
- सि० सि० प० पृष्ठ 104 4/2
- 9- शिवस्माभ्यन्तरे शक्ति शक्तेराभ्यन्तरः शिवः ।
अनन्तरं नैव जानीयच्चन्द्र चन्द्रिकायोरिव ।।
- वही पृष्ठ - 116, 4/26

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी की यह धारणा है¹³ कि वह शक्ति जब अपने मूल स्वतः प्रकाश तथा निरुत्थान की दशा में विराजमान होती है, तब वह शिव से पूर्ण तदाकार हो जाती है

वस्तुतः निरुत्थान दशा अर्थात् समाधिस्थ अवस्था में शक्ति शिव स्वरूपा प्रतीत होती है तथा व्युत्थान अर्थात् समाधि से जागृत अवस्था में शिव शक्ति स्वरूप प्रतीत होते हैं। अन्ततः दोनों ही अवस्थाओं में किसी भी प्रकार का कोई भेद नहीं है। समस्त स्तरों पर शिव शक्ति में तथा शक्ति शिव में निहित है। दोनों में किंचित मात्र भी भेद नहीं है।

दूसरे शब्दों में अकुल-कुल का आलिंगन करता है और कुल अकुल के लिए छटपटाता है। इनका सम्बन्ध पानी और पानी के बुद्बुदों के समान है। किन्तु 'परशिव' परमात्मा पूर्णतया एक ही है।¹⁴ जल तो मूल रूप में जल ही है, कभी-कभी जल में जल बुद्बुदों के रूप में भी देखा पाया जाता है। वाह्य रूप से जल में उठने वाले बुद्बुदे जल से भिन्न वस्तु प्रकट होते हैं, क्योंकि जल में बुद्बुदे अनन्त रूपों में विहार करते दिखलायी पड़ते हैं। लेकिन अन्ततः वे बुद्बुदे जल में ही विलीन हो जाते हैं, क्योंकि वास्तविक अर्थ में वे जल ही है। जल से भिन्न उनका कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार शिव §अकुल§ शक्ति §कुल§ का आपसी सम्बन्ध है। अतः जल और

10-

अतएव परम कारणं परमेश्वरः परात्परः शिवः
स्व-स्वरूपतया सन्नतोमुखः सर्वाकारतया स्फुरितुं
शक्नीतीत्यतः शक्तिमान् शिवोऽपि शक्ति रक्षितः शक्तः

जल के बुद्बुदों के समान ही शिव और शक्ति आपस में विलीन रहते हैं। एक महायोगी इस प्रकार शिव में शक्ति तथा शक्ति में शिव के साक्षात् दर्शन करता है। उसे समस्त विभिन्नताओं में सामरस्य प्रतीत होता है। वह सब में एक की ही अभिव्यक्ति पाता है।

इस प्रकार शक्ति इस सम्पूर्ण जगत् व्यवस्था में स्वयं को नाना रूपों में अभिव्यक्त करती हुई शिव से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं रखती। तदनन्तर शिव भी ब्रह्माण्ड-व्यवस्था के उपादान एवं निमित्त कारण स्वरूप शक्ति कहलाते हैं। सदैव शिव की सेवा में शक्ति संलग्न रहती है। शिव शक्ति के प्रकाशक तथा शक्ति शिव के विविध आनन्द दायी विलासों में नाना रूप प्रापंचिक सत्ताओं में अभिव्यक्त होकर सहयोगिनी के रूप में कार्यरत रहती है। अतः दोनों शिव और शक्ति आपसी आलिंगन पास में सदैव बन्धे रहते हैं। पारमार्थिक शिव इस सम्पूर्ण जगत् व्यवस्था एवं उसके अन्तर्गत उपस्थित समस्त अस्तित्वों की आत्मा है तथा शक्ति इस जगत् व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले समस्त अस्तित्वों अर्थात् जीवों का शरीर है। अतः दोनों शिव और शक्ति तदाकार हैं।

कतुं न किञ्चनः। स्वशक्त्या साहितः सोऽपि सर्वस्याभासको भवेत्।

- वही पृष्ठ - 108 4/13

11- अतएवानन्त शक्तिमान् परमेश्वरः स विश्वरूपो विश्वमयो भवतीति। - वही पृष्ठ- 109 4/14

12- अतएवै का कारोडनन्त शक्तिमान् निजानन्द तथा- वस्थितोऽपि नानाकारत्वेन विलसन् स्वप्रतिष्ठा स्वमेव भजतीति व्यवहारः। अलुप्त शक्तिमान् निन्त्यं सर्वाकारतया स्फुरन् पुनः स्वेनैव रूपेण एक एवावशिष्यते।

- वही पृष्ठ - 107 4/12

इच्छा मात्र धर्मा शक्ति :

एक निर्बल व्यक्ति से लेकर सबल व्यक्ति तक किसी कार्य को करने के सन्दर्भ में यह सोचता है कि वह कार्य करने की शक्ति उसमें है अथवा नहीं। इस प्रकार शक्ति की कल्पना, कोरी कल्पना न रह कर एक तथ्य है। वस्तुतः वर्तमान यह जगत् शक्ति द्वारा ही निर्वाह्य है। इस शक्ति की उपासना के लिए सर्वत्र भटकने की जरूरत नहीं पड़ती। प्रत्येक पिण्ड, प्रत्येक अणु, परमाणु में वह शक्ति विद्यमान रहती है। जगत् में प्रत्येक प्राणी इसी शक्ति को इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूप में अनुभव करता है। प्रथमतः यह शक्ति इच्छा मात्र धर्मा है जो इच्छा परमात्मा, परब्रह्म शिव के स्वरूप में मूलतः निहित है। परब्रह्म शिव अपने आपमें निहित शाश्वत एवं सर्वशक्तिशालिनी रहस्यमयी इच्छा के संचालन मात्र से ही इस व्यवहारिक जगत् की विभिन्न लक्षणों से युक्त वस्तुओं एवं चेतनाओं में अभिव्यक्त करता है।

सामान्यतः इच्छा से अभिप्राय अभिलाषा से होता है। प्रत्येक मानव के मन में सदैव इच्छाएँ पनपा करती हैं जो किसी वस्तु की अपूर्णता में पूर्णता, असन्तोष में सन्तोष तथा दुःख में सुख के भाव से युक्त रहती है। यह इच्छा किसी भी अस्थायी सन्तुष्टि के भावों की प्राप्ति हेतु तथा दुःख में सुख के भाव से युक्त रहती है। यह इच्छा किसी भी अस्थायी सन्तुष्टि के भावों की प्राप्ति हेतु तथा दुःख, असन्तोष, अपूर्णत्व एवं आवश्यकता की समाप्ति हेतु किन्हीं परिवर्तनों अथवा किन्हीं वस्तुओं के लिए सदैव

अन्तर्मन में अभिलाषा जगाती रहती है। वस्तुतः पूर्णता, सन्तोष एवं सुख के अभाव में ही इच्छा का जन्म होता है, जो एक के बाद एक अलग-अलग भावों को व्यक्त करती रहती है।

यद्यपि सामान्य प्राणियों के अन्तर्मन में इच्छा तथा प्रयत्न की भावना बनी रहती है तथापि योगियों एवं दार्शनिकों के लिए व्यवहारिक अर्थ में भी किसी इच्छा, अभिलाषा, आवश्यकता, अपूर्णता, उद्देश्य, अभिप्राय, असन्तोष, दुःख आदि का कोई प्रयोजन नहीं होता है। उनके लिए पूर्ण सत्, पूर्णचित् पूर्ण आनन्द के अतिश्रेष्ठ भावों में किसी इच्छा-उद्देश्य आदि की भावना उपस्थित नहीं होती है। योगी दार्शनिक सामान्य प्राणी की तरह इच्छा शब्द का प्रयोग नहीं करते हैं। उनके लिए इच्छा मात्र का अर्थ आत्माभिव्यक्ति की अन्तर्निहित प्रेरणा से है, जो परमात्मा के पूर्ण, पारमार्थिक स्वभाव में निहित है। उनके लिए इच्छा अपूर्णता नहीं पूर्णता के भावों से युक्त होती है। वह तृप्ति से युक्त होती है, किसी अभाव से नहीं। अभिलाषाएं तभी उत्पन्न होती हैं जब प्राणी में असन्तोष एवं दुःख के भाव होंगे, जबकि "इच्छामात्र" आनन्ददायी एवं सुखदायी होती है। इच्छा मात्र के अन्तर्गत पूर्ण सत् विविध सांसारिक अस्तित्वों की आत्माभिव्यक्ति की प्रेरण उत्पन्न करता है। योगी इस बात की इच्छा से मुक्त रहता है कि जो कुछ भी सांसारिक अभिव्यक्तियां हैं वह सभी आत्मा के अन्तर्गत निहित हैं। इसी प्रकार पुण्यचित् समस्त चेतनाओं में

आत्माभिव्यक्ति की प्रेरणादायक स्रोत है। पूर्ण आनन्द आत्मान्तर्गत समस्त प्रसन्नताओं की आन्तरिक प्रेरणा के भावों से युक्त है। अतः योगियों एवं दार्शनिक के लिए "इच्छा मात्र" का वास्तविक अर्थ परमात्मा के पारमार्थिक स्वरूप में आत्माभिव्यक्ति की प्रेरणा है।

शक्ति का क्रमिक विकास :

परमात्म पर ब्रह्म शिव की शक्ति का प्रकटीकरण पूर्ण स्वच्छन्द एवं क्रमिक है। शक्ति की आत्माभिव्यक्तिकी पांच अवस्थाओं में प्रथम अपने मूल में यह निजा शक्ति है। अनादि अनन्त, निर्विकार परब्रह्म शिव की निजाशक्ति इच्छा मात्र धर्म वाली तथा जीव मात्र के सुख-दुःख आदि भोगों के निर्मित सृष्टि और प्रलय में संकोच विकास धर्म वाली प्रसिद्ध है।¹⁵ इस मूल अर्थात् प्रथमावस्था में अभिव्यक्त निजाशक्ति के नित्यता, निरंजनता, निस्पंदता, निरामसता और निस्त्यानता आदि पांच गुण है।¹⁶ यह शक्ति नित्य अर्थात् शाश्वत है जो शिव से अभिन्न है, जिसका, भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में भी नाश नहीं होता है। दूसरी अवस्था में यह शक्ति निरंजनता के गुण से युक्त है अर्थात् विशुद्धता, निष्कलंकता आदि से युक्त जो पूर्ण शुद्ध तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, रागदेषादि से सर्वथा दूर और निर्दोष है। तीसरे यह शक्ति कम्पन रहित अर्थात् शक्ति में आन्तरिक पारवतन की

13- सैव शक्तिर्यदा सहजेन स्वस्मिन्नुन्मीलित्यां निस्त्यान दशायां वर्तते तदाशिव स एव भवति ।

- वही पृष्ठ - 103 4/1

कोई भी अन्तःप्रेरणा नहीं है। यह तो शिव के साथ तदाकार है। निराभासता अर्थात् आभास रहित इस शक्ति की शिव से भिन्न कोई अस्तित्व नहीं। अतः शिव से भिन्न उसका आभास प्रतीतिबिम्बित नहीं होता है। पांचवें निरुत्थानता अर्थात् निजा शक्ति उत्थान रहित है। यह शक्ति जो शिव के पारमार्थिक स्वरूप से भिन्न जागृत नहीं हुई है, इस अवस्था में शक्ति शिव का अभिन्न अंग है।

दूसरी अवस्था में उसके निजाशक्ति के उत्साह मात्र से पराशक्ति अभिव्यक्त होती है।¹⁷ निजा शक्ति के अन्तर्गत सक्रियता की एक गूढ़ प्रवृत्ति जागृत होती है। निजा शक्ति जो शक्ति की प्रथम अवस्था में सुप्त प्रतीत होती है आगे व्यवहारिक स्तर पर अपनी अनन्त भावनाओं को धीरे-धीरे प्रकट करने की तीव्र प्रेरणा से युक्त हो उठती है। प्रथम अवस्था में यह शक्ति शिव से तदाकार रूप एवं अव्यक्त थी। अब वह एक भिन्न एवं स्पष्ट रूप में व्यक्त होने लगती है तथा शिव अपने में निहित इस शक्ति पर अपने स्वामित्व का अनुभव करने लगते हैं। शिवान्तर्गत शक्ति शिव के आनन्दानुभव का उपादान प्रतीत होने लगती है। शिव के लिए उपस्थित यह शक्ति इस अवस्था में पराशक्ति कहलाती है। यह पराशक्ति पूर्व वर्णित निजाशक्ति का प्रथम एवं सूक्ष्म प्रकटीकरण है। यहाँ तक की उसमें कोई विशेष हलचल या किया नहीं होती है। निरुत्थान दशा की यह प्रथम उत्थान दशा है।

14 - अकुलं कुलभाधते कुलन्याकुल मिच्छति
जलबुद्बुदवन्त्या यादेका कारः परःशिवः॥
- शिव पृष्ठ - 106, 4/11

यह प्रथम उत्थान रूप पराशक्ति भी अस्तित्व, अप्रमयता, अभिन्नता, अनन्तता और अव्यक्तता आदि पाँच गुणों से युक्त है।^{१८} प्रथम अस्तित्व अर्थात् अस्तित्व के गुण से युक्त होती है। यद्यपि परमात्म शिव के स्वरूप में इस पराशक्ति के अस्तित्व गुण को मिलाया नहीं जा सकता तथापि इसकी शिव से एकता पूर्ण स्पष्ट है। दूसरे यह शक्ति अप्रमयता के गुण से युक्त है अर्थात् अप्राप्य है। चूँकि यह शक्ति मर्यादाओं, नियमों, कालादिक आदि की व्यवस्था की जननी है अतः इसके स्वभाव को किसी मापदण्ड से नहीं मापा जा सकता है।

अभिन्नता के गुण से युक्त यह शक्ति परमात्म शिव से अपृथक् है। यह सदैव शिव से अभिन्न रहती है। वस्तुतः उसके अन्दर या बाहर इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं है, जिससे यह शक्ति स्वतन्त्र या पृथक् मानी जा सके। यह शक्ति अनन्त है। अर्थात् असीम और अक्षय है। यह शक्ति कभी न विनष्ट होने वाली है। अर्थात् अविनाशी है। अनन्त काल से स्वयं को विविध रूपों व्यक्त करने वाली यह शक्ति कभी समाप्त नहीं होती और न ही समाप्त होने की सम्भावना होती है। यह तो सर्वत्र नवीन सृष्टि का सृजन करती रहेगी। पाँचवे अव्यक्तता के गुण से युक्त यह शक्ति अप्राकट्य है अर्थात् जिसका प्रकाशन न हो। यह शक्ति शिव के पारमार्थिक स्वरूप में उसी प्रकार सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती है जिस प्रकार दुग्ध के अन्तर्गत घी सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है किन्तु वह बाह्य रूप से प्रकट नहीं होता।

तृतीय स्तर पर उसमें पराशक्ति में स्पंदन मात्र से अपराशक्ति जागृत होती है।¹⁵ अनन्त पारमार्थिक परब्रह्म शिव के अन्तःकरण में किसी प्रकार का स्पंदन अर्थात् किसी प्रकार की आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न हुई जबकि कोई बाह्य परिवर्तन इस अवस्था में नहीं होता। मात्र आन्तरिक परिवर्तन ही होता है। इस प्रकार परब्रह्म परमेश्वर शिव के अन्तःकरण में हुए स्पंदन को अपराशक्ति कहा जाता है।

यह अपराशक्ति भी स्फुरता, स्फारता, स्फुटता, स्फोटता और स्फूर्तिता आदि पांच गुणों वाली होती है।¹⁶ प्रथम यह शक्ति स्फुरता के गुण वाली होती है अर्थात् इसमें संचलन का गुण विद्यमान है। यहाँ पर यह शक्ति मात्र अस्तित्व के गुण से युक्त ही न रहकर आन्दोलित रूप में विद्यमान रहती है। दूसरे परब्रह्म शिव के पारमार्थिक स्वरूप को अभिव्यक्त करने के कारण यह शक्ति स्फुरता के गुण से युक्त कही जाती है। इस स्तर पर शक्ति में निरन्तर विस्तार, आत्म प्रकटीकरण, आत्म प्रकाशन और अभिव्यक्तीकरण की प्रेरणा से युक्त होने के कारण यह स्फारता के गुण वाली कही जाती है। स्फोटता अर्थात् यह शक्ति परब्रह्म शिव के कर्तव्य धर्म को प्रकट करनेवाली होती है। पांचवे यह शक्ति स्फूर्तिता के गुण वाली होती है अर्थात् यह शक्ति सृष्टि कार्यों में परब्रह्म शिव को उत्साहित कर उस ओर लगाती है।

15- तस्येच्छा मात्र धर्माधिर्मणी निजाशक्तिः पांसदाः।

- वही पृष्ठ - 3 1/5

16- नित्यता, निरंजनता निष्पन्दता निरभासता निस्त्यानता इति पंचगुणा निजा शक्तिः।

- वही पृष्ठ - 4 1/10

चतुर्थावस्था में अपराशक्ति से परब्रह्म शिव में अहं भाव की उत्पत्ति मात्रसे सूक्ष्म शक्ति उत्पन्न होती है।²¹ इस अवस्था में परब्रह्म शिव में सृष्टि की इच्छा रखने वाली अपरा शक्ति से इस प्रकार अहंकार भाव कि मैं सृष्टि की रचना करने में समर्थ हूँ उत्पन्न हो उठता है। यह अहं भाव समस्त चेतनाओं को आच्छादित किए रहता है, क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में अन्य कोई अभिव्यक्ति नहीं होती इस कारण एक मात्र परमेश्वर का ही अहंकार अभिव्यक्त होता है। अतः इस स्थिति में यह अलौकिक दिव्य शक्ति सूक्ष्म शक्ति के रूप में जानी जाती है।

शिव की यह सूक्ष्म शक्ति भी निरंशता, निरन्तरता, निश्चलता, निश्चयता और निर्विकल्पता आदि पाँच गुणों वाली होती है।²² प्रथम निरंशता अर्थात् यह शक्ति अहं भाव में व्यक्त रहती है इसमें अनेकता, की भावना नहीं होती। यहाँ तो यह और तुम आदि के व्यवहार का सर्वथा अभाव तथा अहं ही अभिव्यक्त रहता है। दूसरे यह सूक्ष्म शक्ति किसी प्रकार के क्रम भंग या व्यवधान से युक्त नहीं होती है। यह तो क्रम भंग एवं किसी प्रकार के व्यवधान आदि से शून्य होने के कारण सर्वदा परमेश्वर में लीन तथा नित्य, निरन्तर अभिव्यक्त होती रहने वाली है। तीसरे यह शक्ति निश्चल है अर्थात् इसमें किसी प्रकार की कोई चंचलता, प्रसार या संकोच आदि का भाव नहीं होता है। वह तो आदिनाथ परब्रह्म शिव में पूर्णतया व्यक्त

17- तस्योन्मुख त्यमात्रेण पराशक्ति स्तिथिता।

- वही पृष्ठ - 3 1/6

होकर दृढ़ता से व्याप्त है। इस अवस्था में किसी भी प्रकार के द्वन्द, त्रुटि, सौंदर्यता, संशय, भ्रम, दोष आदि के न होने के कारण यह सूक्ष्म शक्ति निश्चयता के गुण वाली कही जाती है। पाँचवे यह निर्विकल्पता के गुण वाली होती है अर्थात् यह इस प्रकार का आत्म ज्ञान नहीं है, जिससे किसी मानसिक धारणा अथवा सिद्धान्त सृष्टि हो अपितु यह शुद्ध सर्वज्ञता रूप है।

पाँचवी अवस्था में इस सूक्ष्म शक्ति की वेदन शीलता से कुण्डलिनी शक्ति उत्पन्न होती है।²³ इस अवस्था में शिव की यह अलौकिक दिव्य शक्ति का विशिष्ट शक्ति का रूप ज्ञान अनुभव एवं इच्छा आदि की प्रक्रियाएँ उत्पन्न करने के लिए उनके विषयों आदि के उद्भव के पूर्ण ही धारण कर लेती है। इस प्रकार की शक्ति को ही कुण्डलिनी शक्ति कहा जाता है।

यह कुण्डलिनी शक्ति पूर्णता, प्रतिबिम्बता, प्रबलता, प्रोचलता और प्रत्यङ्मुखता आदि पाँच गुणों से युक्त होती है।²⁴ पूर्णता का अर्थ पूर्ण चरित्र शीलता है अर्थात् यह शक्ति सर्वव्यापक और नित्य है। यह समस्त ब्रह्माण्ड व्यवस्था को व्यवस्थित रूप में रखती है। यहाँ तक की इस शक्ति को सृष्टि प्रक्रिया का बीज युक्त माध्यम माना जा सकता है। दूसरे यह एक दर्पण स्वरूप वाली है, अतः शिव पारमार्थिक स्वरूप का अनन्त रूपों में प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण यह प्रतिबिम्बता के गुण वाली कही जाती है।

18- अस्तित्व, अप्रमेयता, अभिन्नता, अनन्तता अव्यक्तता इति पञ्चगुणा पराशक्ति। - वही पृष्ठ - 5 1/5

तीसरे यह शक्ति प्रबलता के गुण वाली कही जाती है अर्थात् यह शक्ति सर्वशक्ति सम्पन्न होती है जो कि विभिन्न स्तरों- विभिन्न अस्तित्वों का सृजन करने एवं उनका पालन करने तथा पुनः अपने अन्तःकरण में समेटने की क्षमता तथा अनन्त शक्ति प्रदायक होती है। प्रोचलता अर्थात् यह शक्ति नित्य वर्तमान रहकर समस्त अपने से उत्पन्न एवं पोषित जीवों पर अपना पूर्ण शासन जमाये रहती है। यह समस्त जीवों को आत्म नियन्त्रित रखती है तथा पाँचवे यह शक्ति प्रत्यङ्ग मुखता के गुण से युक्त होती है।

यद्यपि यह शक्ति संसार का सृजन, पालन एवं विनाश करती है तथापि इसका आनन परमात्म शिव की ओर उन्मुख रहता है, जो उसकी आत्मा एवं प्रभु है। उसका प्रकाशन एवं प्रेरक है उसके साथ अनन्त विलास के लिए ही वह शक्ति सृष्टि रचना की क्रीड़ा करती है। सर्वदा शक्ति का मुख शिव की ओर रहता है तथा वह शक्ति सदैव शिव के प्रगाढ़ आलिंगन हेतु छटपटाती रहती है।

अतः शक्ति क्रमिक रूप में निजा, परा, अपरा, सूक्ष्मा तथा कुण्डलिनी के रूप में अभिव्यक्त होती है।

- : 0 : -

- 19- तस्य स्पंदन मात्रेण अपराशक्ति स्थिता।
- वही पृष्ठ- 3 1/7
- 20- स्फुरता, स्फुटता, स्फारता, स्फोटता, स्फूर्तिर्तेति
पञ्चगुणाडपराशक्तिः।- वही पृष्ठ-5 1/12
- 21- ततोऽद्वैतार्थमात्रेण सूक्ष्म शक्तिसत्पन्ना। वही पृष्ठः 4 1/8

- 22- निरंशता, निरन्तरता, निश्चलता, निश्चयता,
निर्विकल्पतेति पंचगुणा सूक्ष्माशक्तिः।
- वही पृष्ठ - 6 1/13
- 23- ततो वेदनशीला कुण्डलिनी शक्तिरुदगता।
- वही पृष्ठ - 4 1/9
- 24- पूर्णता, प्रतिबिम्बता, प्रबलता, प्रोच्चलता, प्रत्यङ्मुखतेति
कुण्डलिनी शक्तिः।
- वही पृष्ठ - 6 1/14

चतुर्थ अध्याय

- गोरक्ष दर्शन में पिण्ड-ब्रह्माण्ड -

- 1- ब्रह्माण्ड शरीर
- 2- व्याष्टि पिण्ड की संरचना
- 3- पिण्ड - ब्रह्माण्ड में समरसकरण
- 4- "मथा पिण्डे - तथा ब्रह्माण्ड", संक्षिप्त विवेचन

परब्रह्म शिव में जब सृष्टि निर्माण की इच्छा उत्पन्न होती है, तब परमात्म शिव एक ही साथ दो रूपों में अभिव्यक्त होते हैं - शिव और शक्ति। शिव की यह शक्ति क्रमिक रूप से निजा, पर, अपरा, सूक्ष्मा और कुण्डलिनी आदि पाँच अवस्थाओं में प्रादूर्भूत होती है। इन निजा आदि पाँच शक्तियों के प्रत्येक के पाँच-पाँच गुण विद्यमान रहते हैं।¹ अतः शक्तियों के गुणों के आश्रय से सगुण साकार परमेश्वर के पिण्ड-"पर-पिण्ड" की उत्पत्ति हुई।²

"पर-पिण्ड" से क्रमशः अपरम्पर, परमपद, शून्य, निरंजन और परमात्म आदि पाँच तत्त्वों के प्रत्येक में पाँच-पाँच गुणों के समाहार से "अनादि - पिण्ड" का अविर्भाव हुआ।³

तदनन्तर "अनादि पिण्ड" से परमानन्द, परमानन्द से प्रबोध, प्रबोध से चिदुदय, चिदुदय से चित्प्रकाश और चित्प्रकाश से अहंभाव प्रादूर्भूत हुआ।⁴ परमानन्द, प्रबोध, चिदुदय, चित्प्रकाश, सोडहंभाव आदि इन पाँच तत्त्वों के पाँच-पाँच गुणों के आश्रयभूत "आद्य पिण्ड" उत्पन्न हुआ।⁵

- 1 - यही पृष्ठ - 82-86 शिव-शक्ति का क्रमिक विकास के अन्तर्गत।
- 2 - शक्ति तत्त्वे पंच पंच गुण योगात् परपिण्डोत्पत्तिः।
- सि०सि० प० पृष्ठ - 7 1/15
- 3 - अपरम्पर, परमपद, शून्य, निरंजन परमात्मानों, पंच भिरेतैः सगुणैरनाद्य पिण्डः समुत्पन्नः।।
- वही पृष्ठ - 10 1/24
- 4 - अनाद्यात् परमानन्दः परमानन्दात् प्रबोधः प्रबोधाच्चिदुदयः चित्प्रकाशः चित्प्रकाशात् सोडहं भावः। वही पृष्ठः 101,

ब्रह्माण्ड शरीर :

प्रथम "पर-पिण्ड" परपिण्ड से अनादि पिण्ड तथा अनादि पिण्ड से आद्य पिण्ड की उत्पत्ति के पश्चात् आद्य-पिण्ड से महाआकाश, महाआकाश से महावायु, महावायु से महातेजस्, महातेजस् से महासलिल, महासलिल से महा पृथ्वी विकसित हुई।⁶ इन महाआकाश आदि पांचों तत्वों के भी प्रत्येक के पाँच-पाँच अर्थात् पच्चीस गुणों से युक्त "महासाकार पिण्ड" अथवा ब्रह्माण्ड शरीर की उत्पत्ति हुई।⁷

इस प्रकार महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ब्रह्माण्ड की रचना आकाश, वायु, तेजस्, सलिल और पृथ्वी आदि पंच महाभूतों से मानते हैं। इस ब्रह्माण्ड जगत में समस्त सूर्य, तारागण, ग्रहों, नक्षत्रों एवं समस्त चेतन प्राणियों तथा अनन्त भौतिक वस्तुओं के ये पंच महातत्व आश्चर्य जनक रचना एवं संगठन के आधार है।

इन पंच महाभूतों का उत्पत्ति-कारण आद्यपिण्ड है। आद्यपिण्ड से सर्वप्रथम सबसे सूक्ष्म आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से इससे कुछ अधिक स्थूल वायु उत्पन्न हुआ। वायु से इससे भी स्थूल तेजस् उत्पन्न हुआ। तेजस् से इससे भी स्थूल जल तथा सलिल से सबसे स्थूल एवं कठोर रूपवाली पृथ्वी विकसित हुई। अतः प्रथम आद्यपिण्ड से विकसित आकाश वायु में, वायु आकाश सहित तेजस् में, तेजस् वायु एवं आकाश सहित जल में तथा जल, तेज, वायु एवं आकाश सहित पृथ्वी में परिव्याप्त है तथा आद्यपिण्ड जो इन पंचमहाभूतों का

उत्पत्ति कर्ता है, सूक्ष्म रूप में इन सभी में व्यापक है।

ये पंचमहाभूत अपने-अपने पांच-पांच गुणों से युक्त होते हैं। प्रथम आकाश जो अवकाश, अछिद्र, अस्पृशत्व, निजवर्णत्व एवं शब्द आदि पांच गुणों से युक्त है।⁸ आकाश में अवकाश अर्थात् परिव्यापकता है। वस्तुतः आकाश में समस्त भौतिक सत्ताओं के विकास हेतु सुनियोजित स्थान है। किसी भी समय तथा कहीं भी सर्वत्र आकाश की विद्यमानता प्रकट है। दूसरे यह आकाश छिद्र रहित होता है। इसका विस्तार कमबद्ध तथा अखण्डित है। इसको विभाजित नहीं किया जा सकता। यह एक ही रूप में सर्वत्र व्यापक है। इसमें स्पर्शत्व का कोई भाव नहीं है। यह अछूता है। चतुर्थ यह आकाश नीलवर्णत्व अर्थात् नीले रंग से युक्त माना गया है जबकि आकाश का कोई भी वास्तविक वर्ण नहीं है, किसी वर्ण विशेष के रूप में उसे नहीं देखा जाता। आकाश का पांचवां गुण शब्दत्व है अर्थात् यह ध्वनि गुण वाला है, इसमें समस्त प्रकार की ध्वनियों की सम्भावना प्रतीत होती है।

आकाश ब्रह्माण्ड- व्यवस्था में शिव-शक्ति की प्रथमतः आत्माभिव्यक्ति है। तदनन्तर इस आकाश से संचार, संचालन स्पर्श, शोषण, धूमवर्णत्व आदि पांच गुणों से युक्त महावायु विकसित हुआ।⁹ प्रथम महावायु संचार के गुण से युक्त

5- परमानन्दः प्रबोधश्चिदुदयश्चित्प्रकाशः सोऽहं भाव
इत्यन्त आर्घापिण्डो महात्वयुक्तः समुत्थितः।
- वही पृष्ठ - 11 1/30

है अर्थात् चलायमान है। महाआकाश जो कि पूर्ण शान्त एवं स्थिर रहता है, उसमें यदि संचार, प्रकम्पन अथवा तरंगों का अनुभव प्रतीत होता है, तो महावायु के चलने की सूचना प्रकट हो जाती है। दूसरे इसमें संचालन का गुण है। स्वयं तो यह चलता ही है, अपने साथ अन्य पदार्थों को भी चलाता है। ऐसे पदार्थ जो निष्क्रिय प्रतीत होते हैं उन्हें गतिमान करने की क्षमता महावायु रखता है। तीसरा गुण स्पर्श है अर्थात् यह समस्त भौतिक पदार्थों का स्पर्श करता रहता है। यह नहीं कि वह छूने योग्य है किन्तु यह समस्त इन्द्रियों को उत्तेजित करता है जिसका बोध प्रायः होता रहता है। यह शोषण के गुण से युक्त रहता है, जो तत्व उससे विकसित हुए हैं अग्नि, पृथ्वी और जल आदि का यह शोषण करता है। यह अग्नि, जल तथा पृथ्वी को अपने में समा लेता है। जल को सुखा देता है। इसका पाचवाँ गुण धूम्रवर्णत्व है अर्थात् यह धुएँ के रंग रूप का होता है ऐसा प्रायः माना जाता है जबकि आकाश की ही तरह वायु का भी कोई प्रत्यक्ष रंग नहीं होता है।

महावायु से विकसित महातेजस् के दाहकत्व, पाचकत्व, उष्णत्व, प्रकाशकत्व, रक्तवर्णत्व आदि पांच गुण होते हैं।¹⁰ महातेजस् का पहला गुण दाहकत्व है, अतः महातेजस् भौतिक पदार्थों को जलाकर भस्म कर देने वाला गुण रखता है। यह भौतिक अस्तित्वों के विभिन्न अंगों को नष्ट कर देता अथवा परिवर्तित कर देता है। दूसरे यह पाचकत्व

6- आद्यान्महा काशो महाकाशान्महावायुर्महावायोर्महातेजा
महातेजसो महासलिलं महासलिलान्महा पृथ्वी।

गुण से युक्त है। यह किसी भी पदार्थ में नवीन लक्षण या गुण पैदा कर देता है तथा जीवित शरीर में यह भोजन आदि को पचाने का कार्य सम्पन्न करता है। इतना ही नहीं महातेजस् के प्रभाव से ही पेड़-पौधों में रंग परिवर्तन तथा स्वाद परिवर्तन एवं मिट्टी के पात्रों आदि में भी रंग परिवर्तित हो जाता है। उष्णत्व अर्थात् ताप से युक्त यह महातेजस् समस्त भौतिक पदार्थों में उष्णता पैदा करता है। प्रकाश अर्थात् आलोक के गुण से युक्त महातेजस् समस्त भौतिक पदार्थों को प्रकाशित अर्थात् आलोकित करता है। यह रक्तवर्ण वाला माना गया है जबकि इसका भी आकाश तथा वायु की ही तरह कोई प्रत्यक्ष वर्ण नहीं है।

शिव के विराट् ब्रह्माण्ड शरीर में महातेजस् से उत्पन्न महासलिल के भी प्रवाहत्व, आप्यायनत्व, द्रवत्व, रसत्व और श्वेत वर्णत्व ये पांच गुण हैं।^{११} महासलिल का प्रथम गुण प्रवाह है। यह निरन्तर बहता रहता है। दूसरा आप्यायन है अर्थात् जल सदैव उमड़ने की क्षमता रखता है। तीसरे यह द्रव के रूप में रहता है अर्थात् पिघले तरल पदार्थ के रूप में रहता है। महासलिल का चौथा गुण रस है अर्थात् सलिल पीने योग्य स्वादिष्ट एवं मधुर होता है। यद्यपि सलिल का भी आकाश, वायु और तेजस् की भाँति कोई वास्तविक रंग नहीं है तथापि इसका श्वेत वर्णत्व माना गया है।

7- महासाकार पिण्डस्य पंचतत्त्वं पंचशीति गुणाः।

- वही पृष्ठ - 12 1/36

8- अवकाशो उच्छिद्रमस्पृशत्वं नीलवर्णत्वं शब्दत्वमिति पंचगुण आकाशः। -वही पृष्ठ-12 1/32

शिव के विराट् ब्रह्माण्ड शरीर की विकास प्रक्रिया के अन्तिम चरण के रूप में महा पृथ्वी महा सलिल से विकसित होती है जो अपने में स्थूलता, नानाकारता, काठिन्य, गन्धत्व और पीतवर्णत्व रूप पाँच गुणों को संजोये रहता है।¹² महापृथ्वी का प्रथम गुण स्थूलता है अर्थात् यह शिव के विराट् शरीर के अन्य स्तरों में विविध प्रकार के आकार वाले पर्वत, तरूँ, लता एवं सम तथा विषम रूप धारण किए हुए है। इसका तीसरा गुण काठिन्य है अर्थात्, यह, शिव-शक्ति की आत्माभिव्यक्ति के समस्त रूपों में पृथ्वी सबसे कठोर होती है। इसका चौथा गुण गन्ध है तथा यह पीतवर्ण अर्थात् पीले रंग वाली होती है।

सांख्य मत के अनुसार ये आकाश, वायु, तेजस् और सलिल तथा पृथ्वी आदि पंचमहाभूत पंचतन्मात्राओं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से विकसित हुए है।¹³ इन्हीं पंच महाभूतों से भौतिक सृष्टि उत्पन्न होती है अर्थात् विविध प्रकार के स्थूल शरीर एवं पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इनके अनुसार भौतिक सृष्टि त्रिगुणात्मक है। दैवी, तिर्यग और मनुष्य दैवी सृष्टि आठ प्रकार की होती है, तिर्यग्योनियों पशु-पक्षी आदि से सम्बद्ध सृष्टि पाँच प्रकार की होती है तथा मनुष्य सम्बन्धी सृष्टि एक प्रकार की होती है। इस प्रकार यह भौतिक सृष्टि पंच महाभूतों से उत्पन्न होने वाली सृष्टि है।¹⁴ इस त्रिगुणात्मिका सृष्टि में सर्वत्र सत्व, तमस् और रजस् नामक तीनों गुण विद्यमान है जिनमें

- 9- संचारः संचालनं स्पर्शनं शोषणं धूमवर्णत्वमीति
पंचगुणो महावायुः। वही पृष्ठ - 12 1/33
- 10- दाहकत्वं पाचकत्वमुष्णत्वं प्रकाशकत्वं रक्तवर्णत्वमीति
पंचगुणं महातेजः। वही पृष्ठ - 13 / 34

दैवी योनि सत्व- गुण प्रधान, पशु-पक्षी आदि की तिर्यग्योनि तमस् प्रधान तथा मनुष्य योनि रजस् प्रधान, होती है।

इस प्रकार आकाश, वायु, तेजस्, सलिल तथा पृथ्वी की धारणा के विषय में यह कहा जा सकता है कि भारतीय दार्शनिक विचार परम्परान्तर्गत पंच महाभूतों द्वारा ब्रह्माण्ड शरीर या भौतिक सृष्टि के विषय में समानता है।

वस्तुतः यह महा साकार- पिण्ड अर्थात् ब्रह्माण्ड शरीर स्वयं शिव ही है।¹⁵ जिस प्रकार आत्मा और शरीर में भिन्नता होते हुए भी अभिन्नत्व की प्रतीत होती है उसी प्रकार शिव तथा ब्रह्माण्ड शरीर भी अभिन्न है। दूसरे अर्थ में शिव इन पंचमहाभूतों के आश्रयण से विकसित ब्रह्माण्ड शरीर अर्थात् इस विराट् देह की आत्मा है।

इस ब्रह्माण्ड व्यवस्था हेतु ही शिव स्वयं को आठ दिव्य रूपों में प्रकट करते हैं अर्थात् ब्रह्मयान्ड के आठ देवताओं के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं, जिन्हें इस ब्रह्माण्ड शरीर की अष्ट मूर्ति माना गया है। इन अष्ट मूर्तियों में प्रथम स्वयं शिव दूसरे भैरव, तीसरे शक्ति कण्ठ, चौथे सदाशिव, पांचवे ईश्वर, छठे रुद्र, सातवे विष्णु तथा आठवें ब्रह्मा है।¹⁶

11- महाप्रवाह आप्यायनं द्रवो रसः
श्वेत वर्णत्वमिति पञ्चगुणं सलिलम्।

- वही पृष्ठ - 13 1/35

12- स्थूलता नानाकारता कठिन्यं गन्धः
पीतवर्णत्वमिति पञ्चगुणा महापृथ्वी।

- वही पृष्ठ - 13 1/36

महा साकार परमात्म परब्रह्म शिव इन अष्ट मूर्तियों के माध्यम द्वारा इस ब्रह्माण्ड-व्यवस्था को व्यवस्थित रखते हैं। इनके द्वारा वे निरन्तर परिवर्तनशील इस ब्रह्माण्ड व्यवस्था में सृजन, पालन तथा संहार आदि कार्य करना तथा नियमित व्यवस्था एवं नियमित-न्यायिक शासन स्थापित करना तथा चिन्ता एवं दुःखातुर जीवों को बन्धनमुक्ति देना तथा प्राणियों की अभीष्ट इच्छा-पूर्ति करना आदि विविध कार्यों को सम्पादित करते हैं।

अतः यह महासाकार पिण्ड अर्थात् विराट् ब्रह्माण्ड शरीर पंचमहाभूतों से उत्पन्न तथा शिवके अष्ट रूपों में अभिव्यक्त तथा उनके द्वारा व्यवस्थित एवं निर्वाह्य है।

व्याष्ट पिण्ड ॥मानव शरीर॥ संरचना :

महा साकार पिण्ड की अष्ट-मूर्तियों में से ब्रह्मा के द्वारा नर-नारी रूप प्रकृति पिण्ड का आविर्भाव हुआ।¹⁷ महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी इस नर-नारी रूप प्रकृति पिण्ड अर्थात् मानव शरीर को पंच भौतिक शरीर, अन्तःकरण-पंचक, कुल-पंचक, व्यक्त-पंचक, प्रत्यक्षकरण-पंचक, दस वायु, नाडी संस्थान तथा अस्थियां, रोम एवं रोम कूपों, धातुओं आदि से युक्त बतलाते हैं।

13- तन्ययात्राण्यविशेषास्तेभ्यो भूतानि पंच पंचभ्यः।
एते स्मृता विशेषाः शान्ता धोराश्च भूदाश्च ॥

- सा० का० पृष्ठ - 152 कारिका - 38

14- अष्ट विकल्पो देव स्तैर्यग्योनश्च पंचधा भवति।
सानुप्रश्चैकविधः, सभासतो भौतिकः सर्गः ॥

- सा० का० पृष्ठ - 183 का०-53

15- स एव शिवः-----।

सि०सि०प० पृष्ठ - 14 1/37

पंच भौतिक शरीर - नर-नारी रूप प्रकृति पिण्ड ही पंच भूतों में प्रत्येक के पांच-पांच गुणों से युक्त होने के कारण पांचभौतिक शरीर कहा जाता है। इस भौतिक शरीर में पृथ्वी का अंश अधिक होने से इसे पार्थिव शरीर भी कहा जाता है। शरीर के रचना क्रम में अस्थि, मांस, त्वचा, नाड़ी और रोम ही मुख्य हेतु हैं, जो भूमि अर्थात् पृथ्वी के पांच गुण हैं।^{१८} दूसरे शरीर में तार, मूत्र, शुक्र, शोणित और श्वेद जलीय द्रव्य के रूप में विद्यमान रहते हैं जिन्हें जल के गुण कहा गया है।^{१९} शरीर में तेज के क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, कान्ति और आलस्य आदि पांच गुण^{२०} तथा वायु के धावन, भ्रमण, प्रसारण, आकुंचन और निरोध आदि पांच गुण^{२१} और आकाश के राग, द्वेष, भय, लग्ना और मोह आदि पांच गुण^{२२} विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार यह पांच-भौतिक शरीर पृथ्वी, वायु, जल, तेज और आकाश की अभिव्यक्ति है।

अन्तःकरण पंचक - जीवित व्याष्टि शरीरों में, उसी के अन्तर्गत मनस् विकसित होता है। यद्यपि अन्तःकरण या मनस् मूलतः एक ही है तथापि वह अपने भिन्न-भिन्न प्रकार के पांच कार्यों अथवा पंच अभिव्यक्तियों के कारण पांच भिन्न-भिन्न रूपों में दिखलाई पड़ता है। अन्तःकरण के मन बुद्धि, अहंकार, चित्त, चैतन्य ही अन्तःकरण पंचक कहलाते हैं।^{२३} अन्तःकरण की ये पांचों प्रापीचक अभिव्यक्तियां

१६- शिवाद, भैरवो भैरवात् श्रीकण्ठः श्रीकण्ठात् सदाशिवः सदाशिवादीश्वर ईश्वराद्रिष्णु विष्णो ब्रह्मेति महासाकार पिण्डस्य भूत्ययष्टिकम्। वही पृष्ठ - १४ १/३७

१७- तद् ब्रह्मणाः सकाशादवलोकनेन ननरनारी रूप प्रकृतिपिण्ड समुत्पन्नस्तच्च पंचपंचात्मकं शरीरम्। - वही पृष्ठ - १४ १/३८

अपने भिन्न-भिन्न पांच प्रकार के दृश्यों में व्यक्त अथवा विशेषताओं से युक्त होती है। जिनमें अन्तःकरण की प्रथम अभिव्यक्ति मन-संकल्प, विकल्प, मूर्छा, जड़ता और मनन आदि दृश्यों के रूप में प्रकट होता है।²⁴ बुद्धि इस प्रकार के दृश्यों में विवेक, वैराग्य, शान्ति, सन्तोष और क्षमा के रूप में पायी जाती है।²⁵ अहंकार-अभिमान, मदीयम्, मम सुखम्, मम दुःखम्, मम-इदम् आदि पांच दृश्यों में देखा जाता है।²⁶ चित्त इन दृश्यों में मति, धृति, स्मृति, त्याग और स्वीकार के रूप में अभिव्यक्त बतलाया गया है।²⁷ चैतन्य अपने अभिव्यक्त दृश्यों विमर्श, शीलन, धैर्य, चिन्तन, निःस्पृहत्व आदि के रूप में प्रकट होता है।²⁸

इस प्रकार व्याप्ट शरीरान्तर्गत अन्तःकरण अपने अभिव्यक्त पांच रूपों में प्रत्येक के पाँच-पाँच गुणों अथवा दृश्यों में व्यक्त होने से यह सूक्ष्म शरीर कहा जाता है।

सांख्य मत में अन्तःकरण के तीन मूल विभाजन माने गये हैं।²⁹ मन, बुद्धि और अहंकार। जबकि वेदान्तमत में³⁰ अन्तःकरण को चार रूपों में देखा गया है जिनमें अन्तःकरण की निश्चय करने वाली वृत्ति बुद्धि, संकल्प और विकल्प करने वाली वृत्ति मन, अनुसन्धान करी वृत्ति चित्त तथा अभिमान करने वाली वृत्ति अहंकार है। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी इनमें चैतन्य और जोड़ देते हैं, किन्तु उनका दृष्टिकोण मूलतः इस अवस्था में मनोवैज्ञानिक न रहकर यौगिक है।

18 - अस्थिमांसत्वङ् पञ्चपञ्चात्मकं शरीरम् वही पृष्ठ-141/38

कुल पंचक - व्यष्टि पिण्ड की संरचना में भौतिक शरीर एवं अन्तःकरण पंचक के विकासोपरान्त कुल पंचक-सत्त्व, रजस्, तमस् काल और जीव इन पांच रूपों में प्रकट होता है।³¹ ये कुल के समस्त रूप परोक्ष रूप में मानसिक भौतिक और शारीरिक व्यापार पर अपने प्रभाव द्वारा उनमें अभिरूचियाँ जागृत करते हैं ।

सत्त्व का इस प्रकार के मानसिक भौतिक व्यापारों पर दया, धर्म, क्रिया, भक्ति और श्रद्धा के रूप में व्यक्त होता है।³² यह मनस् को उच्च से उच्चतर स्तरों की ओर जाने की प्रेरणा देता है। यह कुकर्मों, वासनाओं तथा आकांक्षाओं को वश में कर सत्कर्मों की ओर अग्रसर होने, जीवों, अन्य प्राणियों पर दया करने, पुण्याचरण तथा भक्ति आदि की प्रेरणा देता है।

रजस्-दान, भोग, शृंगार, वस्तुग्रहण तथा स्वार्थ संग्रहण के रूप में मानवीय स्वभाव पर अपना प्रभाव डालता है।³³ यह लोभ, मोह, स्वार्थ, विषय-भोग, सांसारिक आनन्दों की ओर मानव को चलाता है। रजोगुण सुख और समृद्धि की लालसा जागृत कर उसे इस ओर प्रेरित करता है।

तमस् का प्रभाव विवाद, कलह, शोक, वध और वंचन आदि पांच रूपों में पड़ता है।³⁴ अज्ञान के कारण

- 19- लाला मूत्रं शुक्रं शोषितं स्वेद इतिपचंगुण आपः।
- वही पृष्ठ - 15 1/40
- 20- क्षुधा तृणानिद्रा कान्तिरालस्थीमिति पंचगुणंतेजः।
- वही 15 1/41
- 21- धावनं भ्रमण प्रसारणाभाकुचनं निरोधनमिति पंचगुणोवायुः।
- वही पृष्ठ - 15 1/42

उत्पन्न तमो गुण स्व स्वार्थ सिद्धि हेतु दूसरे प्राणियों के प्रति विवाद, कलह तथा वध करने तक को प्रेरित करता है।

मानसिक भौतिक शरीर पर काल का प्रभाव कलना कल्पना, भ्रान्ति, प्रमाद और अनर्थ के रूप में पड़ता है।³⁵ मानव देह शरीरों के विकास की प्रगति, कर्मों के फल, भ्रमात्मक अवस्था आलस्य आदि की प्रवृत्ति बहुत कुछ काल से ही प्रभावित रहते हैं।

तदनन्तर जीव मानसिक और भौतिक शरीर के व्यापारों पर जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा तुरीयातीत दशाओं में अपना प्रभाव डालता है³⁶ यह समस्त भौतिक परिवर्तनों के बीच उक्त दशाओं में अस्तित्व, चेतना और अनुरूपता को बनाये रखने का कार्य करता है। यह जीव मानसिक भौतिक शरीर में एक उच्चातिउच्च शक्ति के रूप में निहित रहता है।

इस प्रकार सत्व, रजस्, तमस् काल और जीव मानव शरीर में अदृश्य शक्तियों के रूप में स्थित होकर विविध प्रकार से अपना प्रभाव डालकर उसे विकसित एवं संयोजित करते हैं ।

व्यक्ति पंचक - व्यक्ति पंचक की आत्माभिव्यक्तियां इच्छा, क्रिया, माया, प्रकृति और वाक् के रूप में होती है।³⁷ जो शिव के व्यावहारिक कार्यों में तत्पर रहते हैं। ये पांचों अभिव्यक्तियां अपने भिन्न-भिन्न पांच रूपों में अभिव्याक्त

22- रागो द्वेषो भयं लज्जा मोह इति पंचगुण आकाश :-

- वही पृष्ठ - 15 1/ 53

होती है। प्रथम इच्छा उन्माद, वासना, वान्छा, चिन्ता, और चेष्ट के रूप में व्यक्त होती है।²⁸ यह इच्छा मानव को स्वकामनाओं एवं अभिलाषाओं को जन्म देती है जिनकी पूर्ति वासना आदि के रूप में होती है। क्रिया-स्मरण, उद्योग, कार्य, निश्चय और स्वकुलाचार के रूप में प्रकट होती है। क्रियायें अपने नियम व्यापार को करने की प्रवृत्ति प्रदान करती हैं।

भद, भात्सर्य, दम्भ, कृतिमत्त्व और असत्य के गुण से युक्त माया कही गयी है।⁴⁰ इस रूप में मानव निम्न स्तर की अभिव्यक्ति पाता है। उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए इन सभी को नियंत्रित करना पड़ेगा क्योंकि कि यह मानवीय स्वभाव को निरन्तर निम्न स्तर की ओर उन्मुख करते प्रतीत होते हैं।

प्रकृति की भी आशा, तृष्णा, स्पृहा, कांक्षा और मिथ्या इन पांच रूपों में प्रतीति होती है।⁴¹ प्रकृति स्वभावतः मनुष्य में प्रबल आशाओं, आकांक्षाओं को जन्म देती तथा विकसित करती है।

भौतिक शरीर के व्यापार संचालन में वाक् वाणी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह वाक् भी परा, पश्यन्ती, मध्यमा, कैवरी और मात्रिका संज्ञक पांच रूपों में अभिव्यक्त होती है।⁴² वाक् का प्रथम रूप परा है जो मूलाधार चक्र में विद्यमान रहती है जिसे निर्विकल्प समाधि के द्वारा जाना जाता है। परावाणी ही मूलाधार चक्र से नाभि

23- मुनो - बुद्धिरहं कारश्चित्तं चैतन्यमित्यन्तः करण
पचकम्। वही पृष्ठ - 16 1/44

देश में आकर स्थूल रूप धारण करती है, तब यह पश्यन्ती कहलाती है। पश्यन्ती वाणी के उर्ध्वगमन से हृदय में प्रविष्ट हुई वाणी को मध्यमा नाम से जाना जाता है। चतुर्थ स्तर पर यह मस्तिष्क से लौटकर कण्ठ और तालु आदि स्थानों से टकराकर शब्द घोष करती है, तब यह वैखरी कहलाती है। तदनन्तर यही अकारादि वर्णमाला के प्रयोग के रूप में मातृका कही गयी है।

अतः व्यष्टि शरीर में इच्छा, क्रिया, माया, प्रकृति और वाक् आदि व्यक्ति पंचको की अवधारणा सुव्यवस्थित रूप में विद्यमान रहती है।

प्रत्यक्ष करण पंचक - कर्म, काम, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि सुख-दुख भोगादि में तत्पर शरीर की प्राप्ति के पांच मुख्य कारण कहे गये हैं।⁴³ ये व्यष्टि शरीर के रक्षण भक्षण, विकास आदि में व्यावहारिक रूप से योगदान करते हैं। इन कर्म-काम आदि का मनुष्य के शरीर पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

प्रथम कर्म अर्थात् कार्य। एक मनुष्य अपनी इच्छानुसार जो उचित या अनुचित कार्य करता है, वे उसके जीवन पर लाभदायक या हानिकारक प्रभाव डालते हैं। यहाँ तक कि पुनर्जन्म के विषय में भी यह आवधारणा बनी रहती है कि कुकर्मों या सत्यकर्मों का प्रभाव इस जन्म के सुख

- 24- संकल्पों, विकल्पो, मूर्च्छा, जड़ता, मननीमिति पंचगुण मनः। - वही पृष्ठ - 16 1/45
- 25- विवेको, वैराग्यं, शन्तिः, सन्तोषः क्षमेति पंचगुणा बुद्धिः। - वही पृष्ठ - 16 1/46
- 26- अभिमानं, मदीयं, ममसुखं, ममदुःखम् ममेदमिति पंचगुणोडटकारः। वही पृष्ठ - 17 1/47

दुःख को लक्षित करता है। इसी कर्म के शुभ, अशुभ, यश, अपकीर्ति, अदृष्ट और फल साधन रूप पांच लक्षण होते हैं।⁴⁴ शुभ कर्म स्वर्गादि की प्राप्ति में सहायक होते हैं तो अशुभ कार्य नरक की ओर ले जाने वाले होते हैं। पुण्यादि कर्मों से यश बढ़ता है तो बुरे कर्मों से अपकीर्ति तथा जिन कर्मों के फल परोक्ष होते हैं वे अदृष्ट फल साधन कहे जाते हैं।

विषयों भोगों आदि में तत्पर कर्म काम कहलाता है जो रीति, प्रीति, क्रीड़ा, कामना और आतुरता इन पांच रूपों में पनपता है।⁴⁵ स्त्री पुरुष का यौन लगाव रीति है। सुख आदि साधनों के प्रति अनुरक्ति ही प्रीति है। यौन-वासनाओं की सन्तुष्टि करने वाले खेल क्रीड़ा कहलाते हैं। काम-सुख की प्राप्ति में निरन्तर वृद्धि कामना है तथा कामवासनादि की पूर्ति शीघ्रातशीघ्र होने की लालसा आतुरता है।

कर्म और काम के अतिरिक्त चन्द्र, सूर्य और अग्नि भी समस्त ब्रह्माण्ड के विकास पर अपना प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं। मनुष्य तथा अन्य समस्त जीवों तथा चेतन एवं अचेतन के लिए सूर्य, चन्द्र और अग्नि मूल कारण है। उनके बिना पृथ्वी पर जीवन सम्भव नहीं था, जो समस्त परिवर्तनों के मुख्य कारण हैं। चाहे वह परिवर्तन रात और दिन का हो या पाक्षिक अथवा ऋतुओं का। इसके अलग योगीगण सूर्य, चन्द्र और अग्नि को कुछ अलग और गहन रूप में प्रकट करते हैं। वे इन तीनों को प्रत्यक्ष

27- मतिधृतिस्मृतिस्त्यागः स्वीकार इति पंच गुणोच्चतम्।

- वही पृष्ठ - 78 1/48

रूप में अपने शरीर में अनुभव करते हैं। देखते हैं, जो एक साधारण मनुष्य के लिए परोक्ष है। इन तीनों के माध्यम से ही शरीर निरन्तर स्वस्थता और विकास की ओर उन्मुख होता है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी चन्द्रमा को 17 कलाओं, सूर्य को 13 कलाओं और अग्नि को 11 कलाओं से युक्त बतलाते हैं। कलाओं से तात्पर्य उन विभिन्न प्रकार की विशिष्ट शक्तियों से हैं जो सूर्य, चन्द्र और अग्नि से स्फुटित होकर जीवित व्यष्टि शरीरों की रक्षा, वृद्धि तथा विकास का कार्य सम्पन्न करती हैं तथा नवीनता, सौन्दर्य एवं गौरव को बनाये रखती है।

चन्द्र की उल्लोला, कल्लोलिनी, उच्छलनी, उन्मादिनी, तरंगिणी, शाषिणी, लंपटा, प्रवृत्ति, लहरी, लोला, लेलिहाना, प्रसरन्ती, प्रवाता, सौम्या, प्रसन्नता, प्लवन्ति तथा निवृत्ति आदि सत्रह कलायें गिनायी गयी है।⁴⁶ सूर्य अपनी तापिनी, यसिका, उग्रा, आकुचनी, शोषिणी, प्रबोधनी, स्मरा, आकर्षिणी, तुष्टिर्वर्धिनी, उमिरेख, किरणवती और प्रभावती आदि 13 कलाओं से युक्त होता है।⁴⁶

अग्नि की कलाएँ दीपिका, राजिका, ज्वालिनी, विस्फुरिगिनी, प्रचण्डा, पाचिका, रौद्र, दाहिका, रागिनी, शिखावती तथा ज्योति के नाम से जानी जाती है।⁴⁶

अतः सूर्य, चन्द्र, अग्नि न केवल अपने व्यक्तिगत अंग ही रखते हैं, अपितु वे जीवन के आल्हादकारी तथा विकसित

2.8- विमर्शः शीलनं धैर्यं चिन्तनं निःस्पृहत्वमिति पंचगुणं चैतन्यम्-- । वही पृष्ठ - 18 1/49

करने वाले अंगों से युक्त भी है, जो व्यष्टि शरीरों में जीवन संचार के मुख्य हेतु तथा उन्हें प्रकाशित करने में अपनी मुख्य भूमिका निभाते हैं।

दस वायु - शरीर के समस्त आन्तरिक एवं बाह्यांगों का समुचित संचालन वायु तत्व द्वारा किया जाता है। यद्यपि वायु मूलतः एक है तथापि यह व्यष्टि शरीर के विविध अंगों में भिन्न-भिन्न कार्य करने से भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। एक वायु, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर देवदत्त और धनंजय इन दस रूपों में कार्य करता है।

प्राण वायु उच्छ्वास और निःश्वास का संचालन करता हुआ हृदय में स्थित रहता है। यह वायु को अन्दर प्रविष्ट कराने तथा बाहर ले जाने की क्रिया से युक्त रहता है। यह शरीर को श्वास निःश्वास के निरन्तर आदान प्रदान से स्वस्थ एवं शक्तिशाली बनाता है।

दूसरा आपान वायु जो गुदा के निकट स्थित रहता है तथा शरीर के नीचे के भाग में स्थित विभिन्न अंगों को दृढ एवं शक्ति शाली बनाता है। यह शरीर के अंगों के इर्द-गिर्द एकत्रित मलो तथा अनावश्यक पदार्थों के दूर करने में सहायक होता है। नाभि में स्थित समान वायु जठराग्नि को जागृत तथा पाचन शक्ति को बढ़ाने का कार्य करता है। यह नयी शक्ति का संचार तथा स्वास्थ्य प्रद तत्वों का समान वितरण करने वाला होता है।

29- अन्तःकरणं त्रिचिधं -----। सा०का०पृष्ठ-142

कंठ में स्थित उदान वायु भोजन एवं जल को कंठ से नीचे उतारने एवं शरीर द्वारा त्याज्य वस्तुओं को उगलने का कार्य करता है। समस्त नाडियों में स्थित रहने वाला व्यान वायु विविध भागों में सन्तुलन स्थित रखने तथा मलादि दोषों को दूर करने का कार्य करता है।

नाग वायु समस्त शरीर में व्याप्त होकर शरीर को स्वस्थ एवं बलशाली बनाता है तथा शरीर को संचालित करने का कार्य करता है। नेत्रों को खोलना एवं बन्द करना कूर्म वायु का मुख्य कार्य है। कृकल वायु का कार्य डकार उत्पन्न कर उदर में से अपाच्य गैसों को बाहर करना तथा भूख बढ़ाना है। देवदत्त असाधारण स्थितियों में जंभाई के द्वारा शान्ति प्रदान कराने वाला है तथा समस्त शरीर में व्याप्त धनंजय नाद उत्पन्न करता है।

- 30- बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तःकरण वृत्तिः।
मनोनामसंस्कारविकल्पात्मिकान्तःकरण वृत्तिः।
अनुसन्धानात्मिकान्तःकरणवृत्तिः चित्तम्।
अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिः अहंकारः।
- वे० सा० पृष्ठ- 93-94
- 31- सत्त्वं रजस्तमः कालो जीव, इति कुलपंपकम्।
-सि०सि०प० पृष्ठ - 19 1/50
- 32- दया, धर्मः, क्रिया भक्तिः श्रेयसीति पंचगुणं सत्त्वम्।
- वही पृष्ठ - 19 1/51
- 33- दानं, भोग शृंगारो वस्तुग्रहण स्वार्थसंग्रहणमिति पंचगुणं रजः। वही- पृष्ठ - 27 1/52
- 34- विवादः कलहः शोको वयो वंचनीमिति पंचगुणतमः।
- वही पृष्ठ - 1/53
- 35- कलना, कल्पना, भ्रान्तिः प्रमादः अनर्थ इति पंचगुणःकालः। - वही पृष्ठ - 21 1/54
- 36- जाग्रत स्वप्नः सुषुप्तिस्तुरीयातुर्यातीतमिति पंचगुणोजीवः।
- वही पृष्ठ - 21 1/55

नाड़ी संस्थान - व्यष्टि शरीरान्तर्गत नाड़ियों उसके विकास क्रम का मुख्य हेतु है। नाड़ियां प्रमुख साधन है, जिनके द्वारा प्रत्येक शरीरांग पर पड़ने वाला प्रभाव मनस् तक पहुँचता है। यद्यपि 72 हजार नाड़ियों शरीर के छोटे-से-छोटे भागों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर भिन्न कार्य करती रहती हैं, कुछ केन्द्र पर सन्देश पहुँचाने का कार्य करती है तो कुछ अनुभव एवं ज्ञान में वृद्धि, वासनाओं, संवेगों तथा उत्तेजनाओं के क्षेत्र में काम करती हैं, कुछ गति-चेष्टा और श्वास प्रक्रिया में सहयोग देती हैं तो कुछ शक्ति विभाजन का कार्य करती हैं, तथापि इनमें से योगियों द्वारा 72 प्रमुख एवं महत्वपूर्ण तथा इनमें भी सुषुम्णा, इडा, पिंगला, सरस्वती, पूषा, अलम्बुषा गान्धारी हस्तिजिह्वा, कुहू तथा शंखिनी आदि 10 नाड़ियों विशेष महत्वपूर्ण मानी गयी हैं, क्योंकि इनका सीधा सम्पर्क इन्द्रियों से बना रहता है।

- 37- इच्छा, क्रिया, माया, प्रकृतिवर्गीति व्यक्तिपंचकम्।
- वही पृष्ठ - 22 1/56
- 38- उन्मादो, वासना, वांछा, चिन्ता चेष्टेति पंचगुणेच्छा।
- वही - पृष्ठ - 22 1/57
- 39- स्मरणं उद्योगः कार्यं निश्चयं स्वकुलाचार इति पंचगुण क्रिया। - वही पृष्ठ - 22 1/58
- 40- भदो, मात्सर्भः कृत्रिमत्वमसत्यमिति पंचगुणा माया।
- वही पृष्ठ - 22 1/59
- 41- आशा तृष्णा स्पृहा काडः क्षामिथ्येति पंचगुण प्रकृतिः।
- वही पृष्ठ - 23 1/60
- 42- परा, पश्यन्ति, मध्यमा, कैवरी, मातृकेति पंचगुणावाक्।
- वही पृष्ठ - 23 1/61
- 43- कर्म कामश्चन्द्रः सूर्योऽग्निरिति प्रत्यक्ष करणपंचकम्।
- वही पृष्ठ - 24 1/62
- 44- शुभमशुभं यशोऽपिकीर्तनं दृष्टफल साधनमिति पंचगुणकर्म। - वही पृष्ठ - 25 1/62

प्रथम सुषुम्णा नाडी से उत्पन्न होकर ब्रह्मरन्ध तक बहती है। प्रायः इसे ब्रह्मनाडी भी कहा जाता है। इडा और पिंगला नासिका के दोनों रन्ध्रों बायें से इडा तथा दाये से पिंगला से सुषुम्णा नाडी पार्श्वों में चलती है। सरस्वती मुखदार से बहती है, जो समस्त शरीरांगों को मस्तिष्क से जोड़कर उन्हें संवेदना और विचार के योग्य बना देती है। गान्धारी बाये नेत्र से तथा हस्तिजिह्वा दाये नेत्र से बहती है। बाये कान से पूषा तथा दाये कान से अलम्बुषा नाडी बहती है इसी प्रकार लिंग द्वार से शैखिनी तथा गुदा द्वार से कुहू नाडी बहती है।

इस प्रकार दस द्वारों से दस विशेष नाडियों का सञ्चार होता है जो शरीर को व्यवस्थित सशक्त एवं स्वस्थ बनाने का कार्य करती है तथा असंख्य नाडियाँ इनकी सहायक नाडियों के रूप में शरीर के समस्त भागों से सम्पर्क बनाये रखती हैं।

अन्य - व्यष्टि शरीरान्तर्गत रक्त, मांस, वीर्य, भेद, भज्जा, पित्त, कफ, वात, चर्म, शुक्र, आदि 10 धातुएँ, 360 अस्थियाँ एवं 360 उनके जोड़ सन्धियाँ तथा 3 1/2 करोड़ रोम एवं रोमकूप स्थित रहते हैं।

45- रतिः, प्रीतिः, क्रीडा, कामनाडडतुरतेति पंचगुणः कामः।
- वही 25 1/64

46- उल्लोला, कल्लोनि, उच्चलनी, उन्मर्मनी, तरंगिणी शोषिणी, लम्पटा, प्रवृतिः, लहरी, लोला, लेलिहाना, प्रस्पर्न्ती प्रवाटा, सौम्या, प्रसन्नता, प्लवन्ती एवं चन्द्रस्य षोडशकला सप्तदशी कला निवृति, साडमृत कला।

- वही पृष्ठ - 25 1/65

पिण्ड - ब्रह्माण्ड के उक्त आविर्भाषण क्रम को "सिद्ध सिद्धान्त पद्धति" के अनुसार निम्नांकिक "अग्राकिंत" क्रमावली के रूप में वर्णित किया जा सकता है -

- 47 - तापिनी, ग्रासिका, उग्रा, आकुंचनी, शोषिणी,
प्रबोधिनी, स्मरा, आकर्षिणी, तुष्टिवर्धनी, उर्मिरिखा,
किरणवती, प्रभावतीति द्वादशाकला सूर्यस्य त्रयोदशी
स्व प्रकाशता निजकला।
- वही पृष्ठ - 26 1/66

अनामा स्वयं अनादि सिद्ध सर्वेषां मूलकारणं

प्रसरं संकोचहीन साम्यवस्था

निजा शक्ति - गुण - नित्यता

- 2- निरंजनता
- 3- निस्पन्दता
- 4- निराभासता
- 5- निरूत्थानता

पराशक्ति - गुण

- 1- अस्तित्ता
- 2- अप्रमेयता
- 3- अभिन्नता
- 4- अनन्तता
- 5- अव्यक्तता

अपराशक्ति-गुण

- 1- स्फुरता
- 2- स्फुटता
- 3- स्फाररता
- 4- स्फोटता
- 5- स्फूर्तिता

परपिण्ड

सूक्ष्माशक्ति - गुण -

- 1- निरशंता
- 2- निरन्तरता
- 3- निश्चलता
- 4- निश्चयता
- 5- निर्विकल्पता

कुण्डलिनी शक्ति-गुण-

- 1- पूर्णता
- 2- प्रतिबिम्बता
- 3- प्रबलता
- 4- प्रोचलता
- 5- प्रत्यंगमुखता

पर पिण्ड

अपरम्पर - गुण - 1 - अकुलकत्व

॥शक्ति "स्फुरता"॥ 2 - अनुपमत्व

3 - अपारत्व

4 - अमूर्तित्व

5 - अनुदयत्व

परम्पद - गुण - 1 - निष्कलत्व

॥भावना ॥ 2 - अणुतरत्व

3 - अचलत्व

4 - असंख्यत्व

शून्य - गुण - 1 - लीनता

॥सत्ता मात्र ॥ 2 - पूर्णता

3 - उन्मनी अनौदि पिण्ड

4 - लौलता

5 - मूर्च्छता

निरंजन - गुण - 1 - सत्यत्व

॥साक्षात्कार॥ 2 - सहजत्व

3 - समरसत्व

4 - सावधानत्व

5 - सर्वगतत्व

परमात्मा - गुण - 1 - अक्षयत्व

॥ परमात्मा॥ 2 - अभेद्यत्व

3 - अच्छेद्यत्व

4 - अविनाशित्व

5 - अदाह्यत्व

अनादि पिण्ड

- परमानन्द - गुण -
- 1- स्पन्द
 - 2- हर्ष
 - 3- उत्साह
 - 4- निष्पन्द
 - 5- नित्यसुखत्व

- प्रबोध - गुण -
- 1- उदय
 - 2- उल्लास
 - 3- अवभास
 - 4- विकास
 - 5- प्रभा

- चिदुदय - गुण -
- 1- सद्भाव
 - 2- विचार
 - 3- कर्तृत्व
 - 4- ज्ञातृत्व
 - 5- स्वतन्त्रत्व

आद्यपिण्ड

- प्रकाश - गुण -
- 1- निर्विकारत्व
 - 2- निष्कलत्व
 - 3- निर्विकल्पत्व
 - 4- समता
 - 5- विग्रान्ति

- सोहम् - गुण -
- 1- अहन्ता
 - 2- अखण्डैश्वर्य
 - 3- स्वात्मता
 - 4- विश्वानुभव सामर्थ्य
 - 5- सर्वज्ञत्व

आद्यपिण्ड

- | | | |
|-------------------|-----|-----------------------------|
| महाकाश - गुण - | 1 - | अवकाश |
| | 2 - | अछिद्र |
| | 3 - | अस्पृशत्व |
| | 4 - | नीलवर्णत्व |
| | 5 - | शब्दत्व |
| महावायु - गुण - | 1 - | संचार |
| | 2 - | संचालन |
| | 3 - | स्पर्शन |
| | 4 - | शोषण |
| | 5 - | धूम्रवर्णत्व |
| महातेज - गुण - | 1 - | दाहकत्व |
| | 2 - | पाचकत्व |
| | 3 - | उष्णत्व महासाकार पिण्ड |
| | 4 - | प्रकाशत्व ॥ब्रह्माण्ड शरीर॥ |
| | 5 - | रक्तवर्णत्व |
| महासलिल - गुण - | 1 - | प्रवाह |
| | 2 - | आप्यापन |
| | 3 - | द्रव |
| | 4 - | रस |
| | 5 - | श्वेतवर्णत्व |
| महापृथ्वी - गुण - | 1 - | स्थूलता |
| | 2 - | नानाकारता |
| | 3 - | काठिन्यं |
| | 4 - | गन्ध |
| | 5 - | पीतवर्णत्व |

महा साकार पिण्ड
की
अष्टमूर्ति

शिव

भैरव

श्रीकण्ठ

सदाशिव

ईश्वर

रुद्र

विष्णु

ब्रह्मा

प्रकृतिपिण्ड

- 1- तत्वांश-
 - 1- पृथ्वी- अस्थि, त्वक्, मांस, रोम, नाडी
 - 2- जल - लार, मूत्र, स्वेद, शुक्र, शोणित
 - 3- अग्नि - क्षुधा, तृषा, निद्रा, कान्ति, श्नी
 - 4- वायु - धावन, भ्रमण, प्रसारण, आकुञ्चन, निरोध
 - 5- आकाश- राग, द्वेष, भय, लज्जा, मोह
- 2- अन्तःकरण-
 - 1- मन- संकल्प, विकल्प, मूर्च्छा, जड़ता, मनन
 - 2- बुद्धि- विवेक, वैराग्य, शान्ति, संतोष, क्षमा
 - 3- अहंकार- अभिमान, मदीप, ममसुख, ममदुःख
ममेदम्
 - 4- चित्र- मीति, घृति, स्मृति, त्याग, स्वीकार
 - 5- चैतन्य- विमर्श, शीलन, धैर्य, चिंतन, निस्पृहत्व
- 3- कुलापंचक -
 - 1- सत्व- दया, धर्म, क्रिया, भक्ति, श्रद्धा
 - 2- रज- दान, भोग, शृंगार, वस्तुग्रहण, स्वार्थग्रहण
 - 3- तम- विवाद, कलह, शोक, वध, वंचन
 - 4- काल- कलबा, कृत्यना, भ्रान्ति, प्रभाव, अनर्थ
 - 5- जीव- जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीम, तुरीयातीत
- 4- व्यवित पंचक-
 - 1- इच्छा, उन्माद, वासना, वान्छा, चिंता, चेष्टा
 - 2- क्रिया-स्मरण, उद्योग, कार्य, निश्चय, स्वकुलाचार
 - 3- माया- मद, मात्सर्य, दंभ, कृतियत्व, असत्य
 - 4- प्रकृति- आशा, तृष्णा, स्पृह्य, कांक्षा, मिथ्या
 - 5- वीक- परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैरवरी, मातृका
- 5- प्रत्यक्षकरण पंचक-
 - 1- कर्म- शुभ, अशुभ, कीर्ति, अपकीर्ति, अदृष्टफलसाधन
 - 2- काम- राति, प्रीति, कीडा, कामना, आतुरता
 - 3- चन्द्र- उल्लोला, कल्लोलिनी, उच्चलन्ती,
उन्मादिनी, तरंगिणी, शोषिणी,
लम्पटा, प्रवृति, लहरी, लोला,
लीलहाना, प्रसरन्ती, प्रवाह, सोभ्या,
प्रसन्नता, प्लवती, निवृति।

- 4- तापिनी, ग्रासिका, उग्रा, आकुंचनी,
शोषिणी, प्रबोधिनी, स्मरा, आकुर्षणी,
तुष्टिर्वाधिनी, उर्मिरिखा, किरणवती,
प्रभाववती, निजकला, स्वप्रकाशता।
- 5- अग्नि- दीपिका, रजिका, ज्वलिनी, विष्फुलिगनी,
प्रचण्डा, पाचिका, रौद्री, दाहिका, रागणी,
शिखावती, ज्योतिसर्पनिजकला,

नरनारी रूप शरीर :

नरनारी रूप शरीर :

गर्भ पिण्ड

- दश प्रधान नाडी - इडा, पिंगला, सुषम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्व
शखंणी, पूषा, अलम्बूषा, सरस्वती, कुहू।
- दश धातु - रक्त, मांस, चर्म, अस्थि, भेद, भज्जा, शुक्र
वात, पित्त, कफ
- दश वायु - प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान,
नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय।
- दश द्वार - मुख, नासिका ॥दो॥, कर्ण ॥दो॥, चक्षु ॥दो॥,
पायु, उपस्थ, ब्रह्मारन्ध्र ।
- अस्थियाँ - तीन सौ साठ
- अस्थियों की सन्धियाँ
- ॥जोड़॥ - तीन सौ साठ
- रोम एवं रोम कूप - साढ़े तीन करोड़

- 48 - दीपका, राजिका, ज्वालिनी, विस्फुलिगिनी, पंचडा,
पाचिका, रौद्री, दाहिका, रागिणी, शिखावती,
इत्यग्नेर्दशकला एकादशी कला ज्योतिरिति ----
सि०सि० प० पृष्ठ - 26 1/67
- 49 - ब्रह्मयाण्ड वर्ति यत्किञ्चित्पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा।
यो० वा० गो० वि० पृष्ठ - 61
॥ सिद्ध सिद्धान्त संग्रह से उद्धृत ॥

पिण्ड ब्रह्माण्ड में समरसकरण -

मनुष्य शरीर ब्रह्माण्ड शरीर की एक लघु प्रतिभूति है। मनुष्य शरीर में ब्रह्माण्ड शरीर को जानना और अभेदता को प्राप्त होना ही समरसीकरण कहलाता है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी के अनुसार⁴⁶ जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में है वही सब कुछ पिण्ड शरीर में विद्यमान हैं। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का मार्ग साधना परक मार्ग है, इसलिये इसमें केवल व्यावहारिक बातों का ही विस्तार दिया है। उन्होंने मनुष्यशरीर को ही प्रधान पिण्ड मानकर उसकी व्याख्या ही ब्रह्माण्ड शरीर में की है। चराचर सृष्टि के स्थावर जगमादितत्व, विभिन्न लोक लोकान्तर चन्द्र-सूर्यादि मण्डल, इन सब का अवस्था मनुष्य के शरीर में वर्तमान हैं।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यवस्था की विविध मौलिक अभिव्यक्तियों के अनुभव व्याप्ट शरीर के किस भाग में किए जा सकते हैं, उन्हें "सिद्ध सिद्धान्त पद्धति" के अनुसार निम्नलिखित ॥अग्रकिंत॥ तालिकाओं के रूप में वर्णित किया जा सकता है-

सप्त पाताल⁵⁰

पैर के अंगूठे में	-	तलातल
अंगूठे के अग्र भाग में	-	महातल
पाद पृष्ठ में	-	रसातल
गट्टे ॥गुप्फ॥ में	-	सुतल
जोंध में	-	वितल
जानू में	-	अतल
पाद तल में	-	पाताल

मूलाधार में	- भूः ॥ पृथ्वी ॥ लोक	
लिंग प्रदेश में	- भुवः लोक	देवता इन्द्र
नाभि देश में	- स्वः लोक	शासक
मेरुदण्ड के मूल में	- महः लोक	
मेरुदण्ड के कुहर में	- जनः लोक	आधिपति
मेरुदण्ड नाल में	- तपः लोक	ब्रह्मा
मूलाधार कमल में	- सत्य लोक	
कुक्षि ॥ नाभिदेश- उदर ॥ में	- विष्णु लोक	विष्णु देवता
हृदय में	- रुद्रलोक	रुद्र देव
वक्षस्थल में	- ईश्वर लोक	तृप्ति स्वरूप ईश्वर
कण्ठ के मध्य में	- नीलकण्ठ लोक	नीलकण्ठ
तालुद्वारा में	- शिव लोक	अनुपम स्वरूप भगवान् शिव
जिह्वामूल में	- भैरव लोक	भैरव देवता
ललाट देश में	- अनादि लोक	अनादि ॥ शिव ॥
भृकुटी से उपर	- कुल लोक	कुलेश्वर
शृंगार स्थान में		॥ शिव ॥
शंखनाडी के उपर	- कुल लोक	अकुलेश्वर
निलिनी स्थान में	अ	देवता
ब्रह्म रन्ध्र में	- परब्रह्म लोक	अखण्ड पूर्ण परब्रह्म
उर्ध्व कमलसहस्रार में -	परा परलोक	पराभाव रूप परमेश्वर
सहस्रार के उपर त्रिकूट में	त्रिशिखर लोक	सर्वनियामिका पराशक्ति

चतुर्थ वर्ण 52

सदाचार में	-	ब्राह्मण
शौर्य में	-	क्षत्रिय
व्यवसाय में	-	वैश्य
सेवा भाव में	-	शूद्र

सप्त दीप⁵³

मज्जा में	-	जम्बूदीप
हड्डी में	-	शाक दीप
प्रवाहिका नाडियों में	-	सूक्ष्मदीप
त्वचा में	-	क्रौंच दीप
रोमों में	-	गोभयदीप
नखों में	-	श्वेतदीप
मांस में	-	प्लक्षदीप

सप्त समुद्र⁵⁴

मूत्र में	-	क्षार समुद्र
लार में	-	क्षीर समुद्र
कफ में	-	दधि समुद्र
भेद-भज्जा में	-	घृत समुद्र
चर्बी में	-	मधु समुद्र
रक्त में	-	इक्षु समुद्र
वीर्य ॥ शुक्र ॥ में	-	अमृत समुद्र

50- कृष्ण पादतले बसति पातालं पादाङ्गः गुण्डे तलातजमङ्गः गुण्डोग्र
महातल पादपृष्ठ रसातलं गुल्फे सुतलं जङ्घायां
वितलं जान्वोरतजमूर्ध्वरेव सप्त पातालं रुद्रदेवाधिपत्ये
तिष्ठति पिण्ड मध्ये क्रोधरूपी भावः स एव कालाग्निरुद्रः
सि०सि०प० पृष्ठ - 93 3/2

मूल ॥ गुदा ॥ द्वार में	-	भारत खण्ड
उपस्थ ॥ लिंग क्षिद्र ॥ में	-	काश्मीर खण्ड
मुख में -		कर्पर खण्ड कर्पर खण्ड
नासिका के दाहिने रन्ध्र में	-	श्री खण्ड
नासिका के बाये रन्ध्र में	-	शंख खण्ड
बायें नेत्र में	-	एक पाद खण्ड
दाये नेत्र में	-	गान्धार खण्ड
बाये काने में	-	कैवर्त खण्ड
दाये कान में	-	महामेरू खण्ड

51- भूलोकं गुह्यस्थाने भुवर्लोकं लिंगस्थाने स्वर्लोकं नाभिस्थाने।
 एवं लोकत्रय इन्द्रो देवता पिण्ड मध्ये सर्वेन्द्रियनियामकः
 स एवेन्द्रः।

दण्डाङ्कुरे महर्लो को दण्डकुहरे जनोलोको दण्डनाले
 तपो लोका मूलकमले सत्य लोक एवं लोक चतुष्टये
 ब्रह्मादि देवता पिण्ड मध्येऽनेक मानाभिमान स्वरूपी
 तिष्ठति।

विष्णुलोकः कुक्षौ तिष्ठति तत्र विष्णुर्देवता पिण्ड मध्येऽनेक
 व्यापार को भवति।

हृदये रुद्रलोकस्तत्र रुद्रो देवता पिण्ड मध्ये उग्रस्वरूपी
 तिष्ठति। वक्षः स्थल ईश्वर लोक स्तत्रेश्वरों देवता
 पिण्ड मध्ये तृप्ति स्वरूपी तिष्ठति। कण्ठमध्ये नीलकण्ठ
 लोकस्तत्र नीलकण्ठों देवता पिण्ड मध्ये नित्यं तिष्ठति।
 तालुदारे शिवलोक स्तत्र शिवो देवता पिण्ड मध्ये
 डनुपमस्वरूपी तिष्ठति। लम्बिकाभूले भैरव लोकस्तत्र

अष्ट कुल पर्वत⁵⁶

मेरूदण्ड में	-	सुमेरू पर्वत
मस्तक में	-	कैलाश पर्वत
पीठ में	-	हिमालय पर्वत
बाये कन्धे में	-	मलय पर्वत
दाये कन्धे में	-	मन्दराचल पर्वत
दाये कान में	-	विन्ध्यांचल पर्वत
बाये कान में	-	भैनाक पर्वत
ललाट में	-	श्री शैल
सभी उंगलियों में	-	अन्यान्य उप पर्वत

नव नदी एवं उपनदियां⁵⁷

शङ्खा नाड़ी में	-	गंगा नदी
पिंगला नाड़ी में	-	यमुना नदी
सुषुम्ना नाड़ी में	-	पीनसा तथा सरस्वती नदी
अन्ध प्रधान नाड़ियों में	-	चन्द्रभागा, पिपासा, शतरूद्रा, नर्मदा।
शेष बहत्तर हजार नाड़ियों में -	-	छोटी एवं पतली उपनदियां

भैरवो देवता पिण्ड मध्ये स्योत्तम स्वरूपी तिष्ठति। ललाट मध्येऽनादि लोकस्तत्र अनादि देवतापिण्ड मध्य आनन्द पराहन्ता स्वरूपी तिष्ठति। शृंगारे कुललोक स्तत्रकुलेश्वरो देवता पिण्ड मध्ये आनन्द स्वरूपी तिष्ठति। शंख मध्ये नलिनी स्थानेऽकुलेश्वरो देवता पिण्ड मध्ये निर निभानावस्था तिष्ठति। ब्रह्मरन्ध्रे परब्रह्मलोकस्तत्र परब्रह्म देवता पिण्ड मध्ये परिपूर्णदशा मिष्ठति। उर्ध्वकमले लोक स्तत्र परमेश्वरो देवता पिण्ड मध्ये परापरभावन्तिष्ठति। त्रिकूटस्थाने शक्ति लोकस्तत्र पराशक्तिर्देवता पिण्ड मध्येऽस्तित्वा वस्था सर्वासां सर्वकुत्तृत्वाक्यातिष्ठति। -सि०सि०प०पृष्ठ-95-96 3/3, 4, 5

मांस पेशियों उर्मिपुन्जों में	-	सताई सनअत्र, बारहराशि, नवग्रह, पन्द्रह तिथि
हड्डियों में	-	तारा मण्डल
रोम क्षिद्रों में	-	तैतिस करोड़ देवता
हड्डियों के जोड़ों में	-	दानव, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूतप्रेत
पेट के बालों में	-	अनेक दूसरे पर्वत
उदर में	-	गन्धर्व, किन्नर, किपुरूष, अप्सरायें
वायु के वेग में	-	आकाश में बिहार करने वाली उग्रदेवता
बुद्धि के प्रकाश में	-	लीला रूप मातृ शक्तियां असंख्य सिद्ध
बाये नेत्र में	-	चन्द्रमा
दाये नेत्र में	-	सूर्य
जाघं के रोमों में	-	वृक्ष, लता, गुल्म, तृण आदि
विष्ठा में	-	कृमि, कीट, पतंग आदि

- 52- सदाचार तत्वे ब्राह्मणास्तिष्ठन्ति। शौर्य क्षत्रिया व्यवसाये
वैश्याः सेवाभावे शूद्राश्चतुष्पाष्टि कलास्वीप चतुष्पाष्टिः।
- वही पृष्ठ - 97 3/6
- 53- भज्जाया जम्बूदीपोऽस्थिषु शाकदीपः शिरासु सूक्ष्मदीपश्चत्वक्ष
कौच दीप रोमसु गोमयदीपो नखेषु श्वेतदीपो मांस
प्लक्षदीप एवं सप्तदीपाः।
- वही पृष्ठ - 99 3/7
- 54- मूत्रे क्षार समुद्रो लालायां क्षीरसमुद्रः कफे दीप समुद्रो
मोदसिधू समुद्रा वसायां मधुसमुद्रो रक्ते इक्षुसमुद्रः
शुक्रेऽमृत समुद्र एवं सप्त समुद्राः।
- वही पृष्ठ - 99 3/8

संयमित जीवन में शारीरिक सुख ही - स्वर्ग की भावना है।

जीवन में रोगाक्रान्त दुःख

की अवस्था ही

- नरक की भावना है।

इच्छा रहित सहजस्वाभाविक अवस्था - मुक्ति की भावना है।

"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" संक्षिप्त विवेचना :

पिण्ड मानो ब्रह्माण्ड का ही संक्षिप्त संस्करण है। संसार में जो कुछ भी पिण्ड है, वह वस्तुतः उसी प्रक्रिया से गुजरता हुआ बना है, जिस अवस्था में से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बना है। सब में वे ही तत्त्वों के त्यों विद्यमान हैं। किन्तु कुलपंचकों सत्व, रजस, तमस् काल और जीव की न्यूनता और अधिकता के कारण उनमें भेद प्रतीत होता है। तथापि विकास की समस्त अवस्थाएं एक रूप तथा सत्य है, असत्य नहीं। ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी जिस रूप में दृष्टि गोचर होता है वह एक योगी के अपने उच्च आध्यात्मिक स्तर पर पहुंचने के बाद अपने शरीरान्तर्गत ही प्रत्यक्ष दर्शन करता है। जितने द्वार नाड़ियों तथा आधार मनुष्य पिण्ड में हैं, उतने ही समस्त ब्रह्माण्ड में तथा ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अणु एवं परमाणु में है। यदि उनमें कोई भिन्नता है तो वह केवल कुलपंचकों सत्व, रजस्, तमस्, काल और जीव की न्यूनता और अधिकता के कारण वे कहीं पूर्ण विकसित हैं, कहीं अर्धविकसित तो कहीं अविकसित हैं।

55- नखण्डा नव दारेषु बसन्ति -----।

- वही पृष्ठ - 99 3/8

अतः जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में और जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में, इसी को योगी गण जो पिण्डे सो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड मे, इसी को योगी गण जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे" कहते है। इसय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यवस्था को व्यष्टि शरीर में अनुभव करना ही विशिष्ट ज्ञान का प्रतीक है।

महा योगी गुरु गोरक्षनाथ जी कहते हैं- कि जो योगी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड -व्यवस्था को व्यष्टि शरीर के अन्तर्गत अनुभव करता है वही शरीर का सच्चा ज्ञाता है।⁶⁰ इस प्रकार व्यष्टि -शरीर पूर्ण एवं चरम आध्यात्मिक ज्ञान तब ही प्राप्त करना सम्भव है जब कि मनुष्य उच्च से उच्चतर स्तर पर पहुँचें। इस व्यष्टि शरीर का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में प्रकट एवं निहित है इस अलौकिक सत्य की खोज के चरम बिन्दु पर व्यक्ति तभी पहुँच सकता है जबकि वह समाधि के उच्च से उच्चतर स्तरों पर उठकर शरीर के अर्न्तलीन तत्व में अत्यधिक गहरायी से प्रवेश करता है तब वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यवस्था की आत्मभिव्यक्तियों का प्रत्यक्ष अनुभव करने में समर्थ होता है।

56- मेरुपर्वता मेरुदण्ड तिष्ठति कैलासो ब्रह्म कपाटे वसति हिमालयः पृष्ठे मलयो वाम कन्धरे मन्दरो दक्षिणकन्धरे विन्ध्याद्रिर्दक्षिणकर्णे मैनाको वाम कर्णे श्री पर्वतो ललाट एवमष्ट कुल पर्वता अन्य उपपर्वताः सर्वाऽङ्गुलिषुवसन्ति ।

- वही पृष्ठ - 100 3/10

योगीश्वर श्री कृष्ण इसी प्रकार की घोषणा करते हैं-⁶¹ कि सच्चा योगानुभव प्राप्त योगी स्वयं को सब भूतों में तथा समस्त भूतों को स्वयं में देखता है और इस प्रकार सर्वत्र विभिन्नताओं में वह समदर्शी हो जाता है। जिस प्रकार बर्फ में जल की व्यापकता विद्यमान है उसी प्रकार सच्चे योगानुभव प्राप्त तत्त्वज्ञानालोकित योगी को अपने व्याष्टि शरीरान्तर्गत समस्त ब्रह्माण्ड व्यवस्था की व्यापकता के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

अन्यत्र भी कहा गया है⁶² कि ब्रह्माण्ड शरीर और व्याष्टि शरीर में कोई भेद नहीं है। जिस तरह ब्रह्माण्ड शरीर में सभी देश और समुद्र आदि स्थित हैं उसी तरह व्याष्टि पिण्ड में भी समुद्र आदि स्थित हैं।

सामान्य दशा में इस अवस्था को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह तो साधना की उच्चतर स्थिति में पहुंचने के बाद सम्भव है। योगी जनों को इन सूक्ष्माति-सूक्ष्म एवं गहन तत्वों का परिचय पाने तथा समस्त ब्रह्माण्ड व्यवस्था का अपने तथा अन्यो के शरीरान्तर्गत दर्शन करने

57- पीनसा, यमुना, गंगा----दिसप्तति सहस्रनाडीषवसन्ति।

- वही पृष्ठ - 100 3/11

58- सप्तविंशति नक्षत्राणि -----अनेक कृमिकटि पतंगं पुरोषे वसन्ति। - वही पृष्ठ-101 3/12

59- मत्सुख तत्त्वर्ग, यद्वदुःख तत्त्वरंक, ययत्कर्मतद्वन्धनं यन्निर्चिक्लपंतन्मुखितः स्वरूपदशायां निद्रावौ स्वात्मजागरः शान्तिं भवति।

- वही पृष्ठ - 102 3/13

60- पिण्डमध्ये चराचरं यो जानाति स योगी पिण्डं संवीति भवति। - वही पृष्ठ - 92 3/1

के लिए विभिन्न आसनों प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, भेद, नीति धौति आदि क्रियाओं तथा प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के विभिन्न प्रकारों के माध्यम का सहारा लेना होता है। इनके माध्यम से व्यक्ति शनैः शनै निम्नतम स्तर से उच्चतर स्तर की ओर अग्रसर होता है तथा एक स्थिति में वह अपने शरीरान्तर्गत ब्रह्माण्ड व्यवस्था के दीपों, समुद्रों, खण्डों, पर्वतों, नदियों, उपनदियों, विविध लोकों, नक्षत्रों, राशियों, ग्रहों, तिथियों, देवताओं, दानवों, पक्षों, पिशाचों, भूत-प्रेत, गन्धर्व, किनार किंपुरुष तथा आप्सराओं आदि का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। उस समय वह स्वयं को शिव के ब्रह्माण्ड शरीर में तथा ब्रह्माण्ड शरीर को अपने में अन्तर्लीन पाता है।

- 61- सर्व भूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।
- गीता पृष्ठ - 12। 6/29
- 62- ब्रह्माण्डसङ्गके देहे यथादेशं व्यवस्थितः।
मेरुशृङ्ग सुधारश्मिर्बाहिरष्टकलायुक्तः।
- सि० सि० प० पृष्ठ - 95
- ॥ शिव संहिता से उद्धृत ॥

पंचम अध्याय

- गोरक्ष दर्शन में आत्मा -

- 1- आत्म बोध एवं उसका स्वरूप
- 2- आत्मा की अपरता §सर्वश्रेष्ठता§ पर विचार
- 3- आत्मा की योग साधना द्वारा पूर्ण शिवत्व प्राप्ति लक्ष्य
- 4- आत्मा-परमात्मा में अभेदता

आत्मबोध एवं उसका स्वरूप :

आत्मा शरीर का स्वामी है। यह आत्मा ही शरीर के समस्त अंग-प्रत्यगों के समस्त संचालनों का शक्ति केन्द्र है। यद्यपि आत्मा और शरीर दोनों ही परमात्मा की आत्माभिव्यक्तियाँ हैं, जो कि स्थूल दृष्टिकोण से देखने पर परस्पर अभिन्न प्रतीत होती है तथापि सूक्ष्म अथवा व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखने पर दोनों ॥आत्मा-शरीर॥ में पर्याप्त अन्तर दिखलायी देगा। वस्तुतः शरीर एक भौतिक इकाई के रूप में प्रतीत होता है, जोकि दिक् में स्थान घेरता तथा समय के साथ हुए परिवर्तनों के बीच निरन्तर आगे बढ़ता है, जबकि आत्मा इसके विपरीत दिक् कालादि गुणों से रहित सरल, सौम्य तथा स्वयं प्रकाश है। यद्यपि आत्मा शरीर से घनिष्ट सम्बन्धों के साथ बन्धा होता है तथापि वह शरीर के किसी एक विशिष्ट भाग में ही निवास नहीं करता बल्कि उसकी व्यापकता शरीर के छोटे-बड़े सभी भागों में अनुभव की जा सकती है। यह सम्पूर्ण शरीर एवं शरीर के प्रत्येक भाग से जुड़ा रहता है। समयानुसार शारीरिक परिवर्तनों के बावजूद आत्मा पर उन परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तथा सदैव स्वयं प्रकाश एवं एकरूपता युक्त होता है। यह विभिन्न परिवर्तनों, रूपान्तरों एवं विघटनों से गुजर कर विकसित होने वाले शरीर को एकता एवं एक रूपता प्रदान करता है।

१- गगने न गोपंत ते जे न सोषत पवने न पेलंत बाई ।
मही भारे न भाजंत उदके न डूबन्तकहौ तौ पतिआई ।।
- गो० बा० पृष्ठ - १२ सदी - २४

आत्मा शरीर के विनष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का कथन है¹ कि आत्मा सर्व व्यापक है, सर्वत्र है, अविनाशी है, साक्षात् परमात्मा का ही अभिन्न अद्वय रूप है। यद्यपि गगन का अमित विस्तार है, तथापि यह असीम और अनन्त आत्मा को अपने में आविष्ट नहीं करता है, गगन से परे है। यह आत्मा तेज ॥अग्नि॥ के द्वारा शोषित नहीं किया जाता है, आत्म शक्ति अपने आपमें इतनी तेजोमयी है कि उसे अग्नि अपने तेज में आत्मसात् नहीं कर सकती है, इसी तरह वायु में इतनी शक्ति नहीं है कि आत्मा को इधर-उधर उड़ाकर अस्थिर कर दें, यह आत्मतत्त्व जल में लीन होकर अस्तित्व हीन नहीं हो सकता, इसी तरह पृथ्वी की भार-शक्ति इस आत्मा को खण्डित नहीं कर सकती। आशय यह है कि आत्मा-आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी के विनश्वर गुण धर्म वाला नहीं है, यह इन पांच भूतों से परे चिन्मय परम सत्ता है।

श्री कृष्ण ने भी अर्जुन के अपने सगे सम्बन्धियों के प्रति मोह ग्रस्त हो जाने पर उपदेश देते हुए कहा है² कि यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है अथवा न यह आत्मा हो करके फिर होने वाला है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, शरीर का नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता है।

2- न जायते भिद्यते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अतो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्मते हन्यमाने शरीरे।।
वासोऽसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽप्यराणाम्।।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही।।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है और इस आत्मा को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं, आग नहीं जला सकती है, जल गीला नहीं कर सकता है, वायु नहीं सुखा सकता है। यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है अतः यह आत्मा निःसन्देह नित्य, सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है।

उपनिषद में³ भी इसी प्रकार के आत्म सम्बन्धी विचार प्राप्त होते हैं कि यह विपश्चित-मेघावी आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है, यह न तो किसी अन्य कारण से ही उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ अर्थान्तर रूप से बना है। यह अजन्मा, नित्य सदा से वर्तमान सर्वदा रहने वाला और पुरातन है तथा शरीर के मारे जाने पर भी स्वयं नहीं मरता। यदि मारने वाला आत्मा को मारने का विचार करता है और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ समझता है तो वे दोनों ही उसे नहीं जानते, क्योंकि यह न तो मारता है और न मारा जाता है। यह अणु से भी अणुतर और महान् से भी महत्तर आत्मा जीव की हृदय रूप गुहा में स्थित है। निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की उस महिमा को देखता है और शोक रहित हो जाता है।

नैनं दिन्यन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं कंदयन्त्यापो न शोषयामि मारुतः॥

अच्छे-घोडयमभदाह्र्यो डयमक्ले घोडशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

गीता - 2/20, 22, 23, 24

नारायण स्वामी जी ने सुकरात के आत्म सम्बन्धी विचारों को इस प्रकार वर्णित किया है⁴ जीवात्मा दैवी, नित्य, बोधगम्य, समान, अविनाशी और अजर है, जबकि शरीर विनाशी, जड, बहुविध, परिवर्तनशील और छिन्न-भिन्न होने वाला है।

अतः जीवात्मा नित्य, स्वतन्त्र और अमर है। जीवात्मा और शरीर अयुर्तसिद्ध अर्थात् नित्य परस्पर युक्त है। न निरात्मक शरीर ही रह सकता है और निःशरीर आत्मा ही। फिर भी आत्मा और शरीर एक दूसरे से विलग प्रतीत न होते हुए भी वस्तुतः विलग हैं। शरीर से आत्मा की भिन्न प्रतीति एक सामान्य पुरुष के लिए सम्भव नहीं है। आत्म ज्ञान एक सच्चे जिज्ञासु, ध्यानस्थ योगी के लिए ही बोधगम्य है। आत्म बोध भी तथी सम्भव है, जबकि तत्वा ज्ञानालोकिता योगी उससे जानने के लिए तत्पर हो।

वस्तुतः ज्ञान का आधार स्वयं आत्मा ही है। वह ज्ञान प्राप्त करने की सत्ता है, आधार भूमि है, वही ज्ञान का आकर्षण केन्द्र है। उसी से बोध की अनुभूति होती है। आत्म ज्ञान प्राप्ति के लिए, अन्तःकरण को शुद्ध करना होता है, बिना अन्तःकरण की शुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियों को वश में किये यह सम्भव नहीं है। एक अल्पज्ञ उस चरम लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता।

- 3- न जायते भ्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बन्धुवकीर्णत।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणं न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
अभौ तो न विजानीतो नार्यहन्ति न हन्यते।।
अणोरणीयान्महतोमहोयान्मात्मस्य जन्तोर्निहिता गृह्यायाम् ।
तमकृतुः पश्यति वीतशोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः।।
- क० उ० अ० ॥ १८, १९, २० श्लोक

मूलतः आकार रहित, घनत्व रहित एवं स्वरूप रहित होने के कारण आत्मा की समाधि व ध्यान, धारणा के अभ्यास अथवा सांसारिक व्यवहार के उद्देश्य से किसी भी उपयुक्त उपाय से देखा या माना जा सकता है।

आत्म बोध के विषय में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का कथन है⁵ कि सारे प्राणी ही नारी रूप में एक पति परमेश्वर के उपासक हैं, सभी का स्वामी परमेश्वर है। आत्मा ही सर्वव्यापक परमात्मा है, पूर्ण हैं, सचराचर परमात्मा में स्वस्थ है, यही आत्म बोध है, इससे काया पाप-पुण्य में लिप्त नहीं होती, प्राणी आत्म रूप होता है।

श्री कृष्ण ने भी आत्म ज्ञान के विषय में यही कहा है⁶ कि शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानी जन नहीं जानते हैं, केवल ज्ञान रूप नेत्रों वाले ज्ञानी जन ही तत्त्व से जानते हैं। योगी जन भी अपने हृदय में स्थित हुए इस आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्त्व से जानते हैं और जिन्होंने अपने अन्तःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानी जन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं।

4- आ० द० पृष्ठ - 175

5- एक पुरिष बहु भाति नारी। सरब निरन्तर आत्मां सारी।
सरब निरन्तर भरिपूर रहिया। आत्माबोध संपूरण कहिया।
पाप न पुनने लिपे न काया। आत्माबोध कथित श्रीगोरक्षनाथ।
- गो० बा० पृष्ठ - 248/22

उपनिषदों में कहा गया है⁷ कि जो बहुतो को सुनने के लिए भी प्राप्त होने योग्य नहीं है, जिसे बहुत से सुनकर भी नहीं समझते उस आत्म तत्व का निरूपण करने वाला भी आश्चर्य रूप है, उसको प्राप्त करने वाला भी कोई निपुण पुरुष ही होता है तथा कुशल आचार्य द्वारा उपदेश किया हुआ ज्ञाता भी आश्चर्य रूप है। कई प्रकार से कल्पित किया हुआ यह आत्मा साधारण बुद्धि वाले पुरुष द्वारा कहे जाने पर अच्छी तरह नहीं जाना जा सकता। अमेद दर्शी आचार्य द्वारा उपदेश किये गये इस आत्मा में ॥अस्ति-नास्तिरूप॥ कोई गति नहीं है, क्योंकि यह सूक्ष्म परिणाम वालों से भी सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है।

"सम्पूर्ण भक्तों में छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाश मान नहीं होता। यह तो सूक्ष्म दर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जाता है।"⁸

" इस आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता। इसे नेत्र से कोई भी नहीं देख सकता। यह आत्मा तो मन का नियमन करने वाली हृदय स्थिता बुद्धि द्वारा मनन रूप सम्यग्दर्शन से प्रकाशित ॥हुआ ही जाना जा सकता॥ है। जो इसे ॥ब्रह्म रूप से ॥ जानते हैं वे अमर हो जाते हैं। वह आत्मा है इस प्रकार ही उपलब्ध किया जाना चाहिए तथा उसे तत्व भाव से भी जानना चाहिए, इन दोनों प्रकार की उपलब्धियों में से जिसे हैं इस प्रकार की उपलब्धि हो गयी है, तत्व भाव उसके अभिमुख हो जाता है।"⁹

6-

उत्क्रामन्तं स्थितं वापिभुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

अन्यत्र भी कहा गया है¹⁰ कि आत्मा स्थूल रूप से कहीं भी नहीं दीखती है। आत्म-ज्ञान में स्थूल दृष्टि का काम नहीं है और न ही वहाँ विशेष नियम की व्यापकता है। वहाँ कार्य-कारण भाव भी नहीं है। वहाँ प्राप्य-अप्राप्य भाव भी नहीं है और गम्य-गमक भाव भी नहीं रहता है। अपितु वहाँ एक तत्त्व की समानाधिकरण भावना और ज्ञानाधिकरण भावना व एकाधिकरण भावना रहती है। जो ऐसा जानता है वही आत्म भाव से परिचित होता है।

निष्कर्षतः आत्मबोध के लिए स्थूल दृष्टि काम नहीं देती है। वहाँ सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि चाहिए, जो सूक्ष्म दृष्टि शक्ति सम्पन्न साधक को ही मिलती है और शक्ति सम्पन्नता अपने साधन में रत होने वाले जिज्ञासु को ही मिलती है। ऐसे साधक को ही जिसकी शक्ति पुष्ट हो गयी हो, जिसमें शक्ति आने लगी हो, जिसमें शक्ति जागृत हो उठी हो, जिसे ज्ञानानुभव प्राप्त होने लगा हो, तब ही आत्म बोध की स्थिति उत्पन्न होती है। आत्म ज्ञान की प्राप्ति पर साधक आनन्दित हो उठता है, रागदेषादि की भावनार्यें धीरे-धीरे नष्ट हो जाती हैं, वह स्वयं में ही रमने लगता है। हृदय में पवित्र भावना उत्पन्न होने लगती है, क्योंकि आत्मा का स्वरूप शुद्ध एवं पवित्र है, अतः विचार, बुद्धि, हृदय एवं अनुभव में पवित्रता एवं पुण्य के भाव उत्पन्न हो तभी आत्म बोध सम्भव है। अतः

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।

यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥

- गीता 15/10, 11

स्वयं में विद्यमान आत्मा को जानने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि यह आत्मा तो दिव्य, अनन्त, अलौकिक, आनन्ददायी, सर्वगुण सम्पन्न, अगम्य, असीम, शुद्ध, पवित्र स्वयं प्रकाशशील एवं सर्वश्रेष्ठ है।

आत्मा की अपरता ॥सर्व-श्रेष्ठता॥ पर विचार :

आत्मा अपर ॥सर्व श्रेष्ठ॥ है। आत्मा प्राचीनक सीमित स्वरूप वाला होते हुए भी एक विशिष्ट स्थान ग्रहण करता है और वह न केवल भौतिक शरीर अपितु प्राण, मनस, अहंकार और बुद्धि, जिनका इस जगत् व्यवस्था में अपना-अपना विशेष महत्व है, से भी मूलतः श्रेष्ठ एवं उनका स्वामी है। यह आत्मा ही समस्त शारीरिक इन्द्रियों को वश में करता तथा उनके नियम पूर्वक संचालन की व्यवस्था करता है।

प्राण, मनस, अहंकार एवं बुद्धि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यवस्था में अपना अस्तित्व रखते एवं कार्य करते हैं। इस तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्राण, मनस, अहंकार एवं बुद्धि से व्याप्त है जिसकी अभिव्यक्ति तत्वाज्ञानालोकिता योगी ही पाते हैं। आत्मा के विषय में इनके कार्य आत्मा की आत्माभिव्यक्तियां, आत्मबोध के साधन के रूप में होते हैं। अतः आत्मा इन सबसे श्रेष्ठ है।

7- श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि वहवोऽयं न विधुः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धश्रयो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।
न नरेणावेरणं प्राक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् हृत कर्मभणुप्रभाजात् ।।
- क० उ०, अ० १ व २ श्लो० - ७, ८

कहा गया है¹¹ कि इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं विषयों से मन उत्कृष्ट है, मन से बुद्धि पर है और बुद्धि से भी महान आत्मा ॥महत्त्व॥ उत्कृष्ट है।

अपिच¹² वह गमन करने वाला है, आकाश में चलने वाला सूर्य है, वसु है अन्तरिक्ष में विचरने वाला सर्वव्यापक वायु है, वेदी ॥पृथिवी॥ में स्थित होता ॥अग्नि॥ है, कलश में स्थित सोम है। इसी प्रकार वह मनुष्यों में गमन करने वाला, देवताओं में जाने वाला, सत्य या यज्ञ में गमन करने वाला, आकाश में जाने वाला जल, पृथ्वी, यज्ञ और पर्वतों से उत्पन्न होने वाला तथा सत्य स्वरूप और महान् है।

अतः आत्मा सर्वश्रेष्ठ है। आत्मा ही हमें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है। यहाँ तक की प्राण, मनस, अहंकार और बुद्धि आदि के समस्त कार्य आत्मा के लिए ही होते हैं और आत्मा उन सब ॥प्राण-मनस्-अहंकार-बुद्धि॥ का निद्रा रहित दृष्टा, साक्षी, प्रकाशक और नियन्ता है। आत्मा का स्वरूप किसी भी प्रकार दूषित नहीं होता है। यह आत्मा ही सत् तत्व है, जबकि इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण दृश्यमान जगत मिथ्या है। यह स्वयं सिद्ध है। आत्मा के ज्ञान द्वारा ही परब्रह्म परमात्म शिव के दर्शन अर्थात् उनका साक्षात्कार सम्भव है। अतः आत्मा-परमात्मा के सहज, स्वरूपानन्द तक पहुँचने का साधन है

8- एष सर्वेषु भूतेषु गदोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यतेत्वग्रयमा बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः॥
- क० उ०, अ०- 1 व 3 श्लोक - 12

आत्मा की योग साधना द्वारा
पूर्ण शिवत्व प्राप्तिर्लक्ष्य :

परमात्मा का दर्शन आखों से सम्भव नहीं है, क्योंकि वह बाहर नहीं अपितु अपने में ही निहित है। आत्मा ही वह शक्ति है जिसके गूढ़ ज्ञान को प्राप्त कर हम सच्ची शान्ति, सच्चा आनन्द सच्चा सुख प्राप्त कर सकते हैं। अतः समस्त कार्यों के पहले हमें आत्मा के ही ईश्वरत्व का स्मरण कर लेना, शान्ति, आनन्द, सफलता और कल्याण तथा पूर्ण शिवत्व प्राप्ति का सर्वोत्तम, सर्वोत्कृष्ट साधन है।

पूर्ण आत्मज्ञान के बल पर ही प्रत्यक्ष ईश्वर का दर्शन किया जा सकता है। आत्मा में ही ऐसी अनन्त शक्ति है जिसके द्वारा अनन्त एवं अखण्ड आनन्द, अनन्त सुख एवं सच्ची शान्ति, सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यदि सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब ईश्वरानन्दानुभूति स्वयं प्राप्त हो जाती है। सदात्मज्ञान प्राप्त होने पर उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर को अपने में ही देखा जाता है। आत्मज्ञान से अनभिज्ञ वह ईश्वर अलग ही प्रतीत होता है। अतः आत्मज्ञान परमावश्यक है। आत्मज्ञान के बिना हृदय में पूर्णता सम्भव नहीं है, अतः आत्म-ज्ञान के द्वारा ही हम उस परमात्म शिव के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

१- न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाभिवर्तुतो प एतोदुर्गमृतास्तेभवावन्ति ।।
अस्तीत्ययेवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चो भयोः ।
अस्तीत्ये वोपलब्धस्य तत्त्व भावः प्रसीदति ।।

- क० उ०, अ०-२ व ३ श्लोक १, १३

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का कथन है।¹³
 कि योगाभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी, प्राण-ज्योति को जगाते हुए सहस्रार में उसके प्रवेश करने पर अनाहत नाद, शब्द ब्रह्म के स्वरूप अथवा बोध का रसास्वादन करता है, उसे ब्रह्म रन्ध्र में शिवमयी परमात्म-ज्योति-मन्दाकिनी का दर्शन होता है। अनाहत शब्द निगूढतम है - यही परम वस्तुतत्त्व है। अनाहत शब्द के द्वारा ब्रह्मानुभव व्यक्तिगत साधना का अमृत फल है, जो गूंगे के गुड़ के रसास्वादन की तरह वाणी से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। अनाहत शब्द से ब्रह्म स्वरूपानुभवरूपी माणिक्य, अमूल्य वस्तुरत्न की प्राप्ति होती है और यह बात पूर्व रूप से समझ में आ जाती है कि मुख्य वस्तु ब्रह्मानुभूति, परमात्मपद में रमण है, इससे इतर अन्य ज्ञान मिथ्या वाद-विवाद मात्र है। रात-दिन सांसारिक प्रलोभनों से ग्रसित मन को अन्तर्मुखी रखने से उन्मानावस्था द्वारा वह आत्म साक्षात्कार कर सकता है। उसे पुनः संसार की वस्तु तथा स्व स्वीकृत सांसारिक मिथ्या सम्बन्धों में सुख नहीं दिखलायी देता। आशा, तृष्णा को छोड़कर विनश्वर सम्बन्धों में निराशा ग्रहण करता है। ऐसे आत्म ॥वेद॥ ज्ञानी योगी का ब्रह्म भी दासत्व स्वीकार करता है। उसके ज्ञान से लाभान्वित होना चाहता है।

10- आत्मानं स्थूलरूपेण कुत्रापि दृश्यते। न च तत्र स्थूल दृष्टिः। न च तत्र विधेर्व्यापकता। न च तत्र कारणभावना। न च तत्र प्राप्याप्राप्यक गम्यागमक बोधात्मकत्व सर्वभावना। अपितु तत्र एकाभावना ज्ञानाधिकरणात्मकत्वेन उपरिष्ठात् एकतत्त्व समानाधिकरण भावना एकाधिकरण भावना विद्यते। य एवं जानाति स एव आत्म भावं परिचिनीति।

- सा० कु० भ० पृष्ठ - 337

जो अजपा-जाप करता है, जिसकी चित्तवृत्ति तैलधारावत् अनवरत् "ऊँ", सोडहं तथा परमात्मा के इष्ट नाम-मन्त्र के जप में लगी रहती है, जिसका मन ब्रह्मरन्ध्र शून्यपक्व में रमण करता है अर्थात् ऊर्ध्वमुखी रहता है, जिसके इन्द्रिय समूह चंचलता को छोड़कर स्ववश साधक के वश में रहते हैं, जो विनश्वर शरीर को ब्रह्मानुभूतिरूपी अग्नि में परिशुद्ध कर देता है, ज्ञान अग्नि में शरीर-आहुति कर उसे निर्मल बना लेता है, उस योगासिद्ध पुरुष की चरण-बन्दना साक्षात् योगेश्वर भगवान् शिव भी करते हैं। तात्पर्य यह कि ऐसा योगी परम शिवैक्य बोध से सम्पन्न होकर शिव पद में नित्य युक्त हो जाता है। योगाभ्यास की सिद्धि का परम फल है आत्म चिन्तन और आभ्यन्तर साधना। बाह्य साधना से यद्यपि इन्द्रियां संयमित होती है, मन प्रत्याहार के द्वारा स्ववश होता है। प्राणायाम से नाडी-शोधन और चक्रों का भेदन होता है, तथापि जबतक आत्मा का विचार नहीं किया जाता, आत्मतत्त्व के परिशीलन में दृष्टि नहीं रहती, तबतक आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार आदि बाह्य साधनों का कोई महत्व ही नहीं है, वे तो योग की सिद्धि की दिशा में बाह्य उपकरण धंधा है, आत्म तत्त्व का विचार करने से यह पता चल जाता है कि सारा दृश्यजगत् ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है, जिस तरह जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब वास्तविक चन्द्रमा नहीं है, उसी का प्रतिबिम्ब मात्र है, इसीलिए दृष्टि चन्द्रमा पर रखने से चन्द्रमा का वास्तविक रूप प्रकट होता है, यही बात आत्मा के सम्बन्ध में संगत ।।- इन्द्रियेभ्यः परा ह्यथा अर्थेभ्यश्च परं मनः।

मनस्तु परा बुद्धिबुद्धेरात्मा महान्परः।।

- क० उ०, अ० १ व० ३ श्लो० १

है कि आत्मा पर दृष्टि रखने से समस्त जगत् परमात्मा के प्रतिबिम्ब के रूप में दृश्य अथवा अभिव्यक्त रहता है। जगत् ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म से प्रतिबिम्बित मात्र है। हे अवधूत, सदैव आत्मा का ही चिन्तन करना चाहिए। अपनी आत्मा के विषय में स्वयं ही विचार करना चाहिए, जिससे ॥आत्म चिन्तन॥ से वह भौतिक सम्बन्धों की हानि और वियोग की चिन्ता से पूर्ण मुक्त हो कर निर्भय पद में निश्चिन्त होकर, पैर पसार कर ॥पूर्ण अभय पद में स्थित होकर॥ परमात्मा में ही विश्राम करेगा।

श्री कृष्ण का भी यही उपदेश है¹⁴ कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से मुक्त अन्य तरफ न जाने वाले चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम प्रकाश स्वरूप, दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है। इससे पुरुष सर्वज्ञ, अनादि सबके नियन्ता ॥अन्तर्यामी रूप से सब प्राणियों के शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार शासन करने वाला॥ सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण पोषण करने वाले, अचिन्त्य स्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाश रूप, अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा को स्मरण करता है। वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकाल में भी योग बल से मृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य

12- हँसः शुचिषदसु रन्तरिक्षसद्गोता वेदिषदीतिधिर्दुरोणसत् ।
न षदरसदृतसद्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजाः स्रुतवृहत् । ।

- क० उ०, अ० २ व० २, श्लो० २
13- सारभसारं गहनं गंभीरं गगन उछलिया नादं ।
मानिक माया फेरि लुंकाया झूठा बाद-विवाद । ।

स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है और सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर अर्थात् इन्द्रियों की विषयों से हटाकर तथा मन को हृद्देश में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योग धारण में स्थित हुआ, जो पुरुष ऊँ ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप मेरे को चिन्तन करता हुआ, शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

उपनिषद में भी लिखा है¹⁵ कि यह आत्मा वेदाध्ययन द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है, न धारणा शक्ति अथवा अधिक श्रवण से ही प्राप्त हो सकता है। यह साधक जिस ॥आत्मा॥ का वरण करता है उस ॥आत्मा॥ से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके प्रति यह आत्मा अपने स्वरूप को अभिव्यक्त कर देता है।

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन, नित्य और गन्ध रहित है, जो अनादि, अनन्त, महत्त्व से भी पर और ध्रुव ॥निश्चल॥ है उस आत्मतत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है।"¹⁶

अहर्निश मन लै उनमन रहे, गम की छाँड़ि
अगम की कहै।
छाड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ ताका दास॥
अजपा जपै सुनि मन धरै, पाँचों द्वेद्री निग्रह करै।
ब्रह्मन्त अगीनि में होमैं काया, तास महादेव बंदेपाया।।
आसण बैसिबा पवन निरोधिबा, धान मान सबधंधा।
बदंत गोरखनाथ आत्मा विचारंत, ज्युं जल दीसैचन्दा।।
गोरष बोलै सुणि रे अवधू पंचौ पसर निबारी।
अपणी आतमा आप विचारी, तब सोवो पान पसारी।।
- गो० बा० सबदी- 12 16, 18, 82, 83

" जो एक, सब को अपने अधीन रखने वाला और सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्म देव को जो धीर ॥विवेकी॥ पुरुष देखते हैं उन्हीं को नित्य सुख प्राप्त होता है औरों को नहीं।" ¹⁷

अन्यत्र भी कहा गया है ¹⁸ कि जो साधक आत्मा को नहीं जानता है वह परतत्त्व को भी नहीं जान पाता है अतः पहिले स्थिर भाव से आत्मा का परिचय प्राप्त कराले।

अतः आत्मा के भीतर अनन्त धन, अनन्तरूप, अनन्त आनन्द और अनन्त बल है, जिसे अज्ञान और अविश्वास के कारण न जाना जा सकता है और न देखा ही जा सकता है। यदि सच्चा आत्म ज्ञान प्राप्त हो जाय तो परमात्म दर्शन हो जाना सम्भव है क्योंकि जीवात्मा रूपी साधना की सिद्धि यही है कि वह शरीर में ही स्थित परमात्मा का साक्षात् दर्शन कर ले। अज्ञान, भ्रम, अन्ध विश्वास तब तक पीछा नहीं छोड़ते जब तक कि आत्मा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। यदि अपने अन्तःकरण को पूर्ण शिवमय, आनन्दमय बनाना है तब आवश्यक है आत्मतत्त्व

- अभ्यास योग युक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्त्यन॥

कविं पुराणमनुशासितार मणोरणीयांसमेनुस्मरेद्यः।

सर्वस्य धातारभाचिन्त्यरूपभादित्ययवर्णं तमैसः परस्तात्॥

प्रमाण काले मनसाचलेन भक्त्या मुक्तो योगबलेन चैव।

भुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

सर्वद्वाराणि संयथ मनो हृदि निरुध्य च।

मध्यकर्वाध्यायत्मानः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्माननु स्मरन्।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

- गीता अ०-८ श्लो० ८, ९, १०, १२, १३

को जानना। आत्म ज्ञान के द्वारा ही सच्चा सुख तथा परमात्म शिव के साक्षात् दर्शन किये जा सकते हैं। अस्तु आत्मा की योग साधना से जीवन में परमात्मा का साक्षात्कार ही मनुष्य शरीर में जन्म लेने की सार्थकता है। जीवात्मा परमात्मा का ही प्रतिरूप है, अतः आत्म ज्ञाननिष्ठ होकर उस अलख निरंजन, चिन्मय, दिव्य निर्विकार, निर्मल, अभामिक, परब्रह्म परमात्म शिव में स्थित हो जाय, यही साधक का साध्य अर्थात् जीवन का परम लक्ष्य है।

आत्मा-परमात्मा में अभेदता :

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में वह परम पद व्यापक है। यद्यपि ईश्वर अदृश्य है तथापि वह देखा जा सकता है। उसके प्रत्यक्ष दर्शनार्थ बाहर अर्थात् इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है अपितु वह अपने में ही आत्मा के रूप में विद्यमान रहता है। आत्मा ही परमात्मा है। इन दोनों आत्मा-परमात्मा में कोई भेद प्रतीत नहीं होता है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का कथन है^{१९} कि सभी प्राणियों के शरीर में स्थित पञ्चकुहर हृदय में आत्मस्वरूप स्थित है। यह अविद्या रूप महान, मोह शोक आदि पाशों से आवद्ध है, मोक्ष पद की प्राप्ति करने वाले मुमक्षुओं को चाहिए कि इस पाश का उच्छेद कर

- १५- नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यते न मेघया न बहुनाश्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्माविवृणुते तन्स्वाम्॥
- क० उ० पृष्ठ-७८ अ० १ व० २ श्लो० २३
- १६- अशब्दभस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसनिर्गन्धबन्धुभूतम्।
अनाद्यनन्तं महः परम ध्रुवं निचोदय तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥
- क० उ० पृष्ठ - १०० अ० १ व० ३ श्लो० १५

अपने अखण्ड आत्म स्वरूप में स्वस्थ हो जायें। यह आत्म स्वरूप ॥आत्मतत्त्व॥ ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अक्षर, स्वराट्, इन्द्र, प्राण, काल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, शिव के नाम रूप में अभिव्यक्त परम शिव है। योग साधना के फलस्वरूप इस स्वसंवेद्य तत्व का परम अनुभव होता है। सांख्यशास्त्र के तत्त्वज्ञ इसी को परम पुरुष जानते हैं, पूर्व मीमांसा मत से यज्ञादि कर्म के फल स्वरूप इसी महत्तत्त्वका दिग्दर्शन करते हैं। श्रुति की ऋचाएँ और वेदान्त सूत्र इसी को परमानन्द स्वरूप परमात्मा कह कर प्रतिपादित करते हैं। इस तरह विभिन्न दर्शनों में व्यवहृत नाम रूपों में अभिव्यक्त सत्स्वरूप है। यह आनन्द प्रदान करता है और जीवात्मा-परमात्मा के ऐक्य-स्वरूप अथवा सामरस्य का यह आत्मतत्त्व परम सत्य है, दोनों की अखण्ड ज्ञान स्वरूपावस्थिति सीवीति मुद्रा के रूप में परिकीर्तित- प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार²⁰ सभी देहों में विश्व रूप परमात्मा-परमेश्वर अखण्ड स्वरूप घट-घट में चिद्रूप व्यापक है।

उन्होंने अन्यत्र भी कहा है²¹ कि आत्मा और परमात्मा में भेद नहीं हैं, वे एक साथ निवास करते हैं, वे दो नहीं हैं। एक सच्चिदानन्द धन-तत्त्व है, जीवात्मा अंश है, परमात्मा अंशी है, अंशी परमात्मा अपना ही स्वरूप है और प्रत्येक जीव धारी के शरीर में भीतर बाहर

17- एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधायः करोति।

तमात्मस्थं मे अनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

- क0 उ0 पृष्ठ - 139 अ0 2 व0 2 श्लो0 12

सर्वत्र परिव्याप्त है, ऐसी स्थिति में किसी भी जीव की हत्या कर उसके शरीर और रक्त मांस को अपना आहार नहीं बनाना चाहिए। जीव हिंसा महान पाप है, पाण का घात करना, किसी को मारना अपकर्म है। जो परमात्मा अन्य जीव धारियों के शरीर में है, वही हमारे सम्बन्धियों, पुत्र-पुत्र आदि में है। जिस तरह हम अपने पुत्र आदि का प्राणघात नहीं करते, उसी तरह हमें अन्य जीव धारियों को भी नहीं मारना चाहिए।

उपनिषद में भी कहा गया है²² कि जो देवता मयी आदिता प्राण रूप से प्रकट होती है तथा जो बुद्धि रूप गुहा में प्रविष्ट होकर रहने वाली और भूतों के साथ ही उत्पन्न हुई है। निश्चय यही वह तत्व है जहाँ से सूर्य उदित होता है और जहाँ वह अस्त होता है उस प्राणात्मा में अन्नादि और वागादिक सम्पूर्ण देवता आर्पित है। उसका कोई उलघन नहीं कर सकता। यही वह परब्रह्म शिव है।

- 18- आत्मानं यो न वा वेत्ति न वेत्ति परतत्त्वकम्।
तस्मात् पूर्व स्थिरत्वेन आत्मनः परिचयं ब्रजेत्॥
- सा० कु० म० पृष्ठ - 268
- 19- शरीरपद्मकुहरे यत्सर्वेष्ववस्थितम्।
तदवश्वं महापाशाच्छेदितव्यं मुमुक्षुभिः॥
ब्रह्मा विष्णुश्च कद्रश्च सोडक्षरः परमस्वराट्।
स एवेन्द्रः स च प्राणः कालाग्निः स च चन्द्रमा॥
स एव सूर्यः स शिवः स एव परम शिवः।
स एव योगगम्यश्च साख्यशास्त्र परायणैः॥
स एव कर्म इत्युक्तः कर्मभीमांसकैरपि।
सर्वत्र सत्पराणन्द इत्युक्तो वैदिकैरपि॥
व्यहारैरयं भेदस्तास्मादेकस्य नान्यथा।
भूद भौद तुरा दे ने जीवात्मरमात्येनोः।
उभयोरेक सीवर्तिमुद्गीत परिकीर्तता॥
सि०सि०प०पृष्ठ-151, 6/25, 26, 27, 28, 29, 30

अतः आत्मा-परमात्मा में नाम मात्र का भी भेद नहीं है। आत्मा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा से नित्य अभिन्न और तद्रूप है। वह सत्स्वरूप है। परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन का एक मात्र साधन आत्मा ही है। क्योंकि जीवात्मा इस ओर प्रयत्नशील होकर, आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध, कुण्डलिनी जागरण, चक्र भेदन, नादानुसन्धान आदि के द्वारा परमात्मा का साक्षात् दर्शन करता है। तब आत्मा-परमात्मा का भेद लुप्त हो जाता है। योगी साधक दोनों ॥आत्मा परमात्मा॥ नादात्म्य और आनन्दानुभव प्राप्त करते हैं। वह आत्मा को परमात्मा में समाविष्ट देखता है। यही उसका परम-चरम लक्ष्य है।

योगी गण एक दूसरे के अभिवादन करते समय आदेश-आदेश का उच्चारण करते हैं। वे इस आदेश शब्द के द्वारा निरन्तर एक दूसरे को आत्मा-परमात्मा के तादात्म्य का स्मरण कराते रहते हैं। कहा गया है²³ कि आत्मा, परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि तीनों की एकता की सम्भूति-उत्पत्ति ॥अभिन्न सत्ता॥ ही आदेश के रूप में प्रसिद्ध है। आदेश परमात्म स्वरूप का प्रतिपादन करने वाली सद्वाणी है। इसके उच्चारण मात्र से जरा-मरण, सुख-दुःख, रागद्वेष आदि समस्त प्रपञ्चात्मक द्वन्द्वों का क्षय-नाश हो जाता है जो प्राणी योगी के प्रति "आदेश, आदेश" शब्द का व्यवहार करता है, वह परमात्मा और आत्मा के अभिन्न स्वरूप को तत्त्वतः जान लेता है।

यद्यपि सामान्य विचारों में आत्मा, जीवात्मा, परमात्मा में प्रायः भेद प्रतीत होता है, तथापि तीनों की एकता ही सत्य है।

निष्कर्षतः आत्मा सत् है।^{*} उसकी सदा सत्ता बनी रहती है। वह नित्य और निराकारी है। वह नित्य शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त है। वह अतीन्द्रिय, निर्गुण तथा नित्य चैतन्य है। वह अपरिवर्तनशील एवं निरपेक्ष तथा नाम रूप से रहित है। यह आत्मा ही साक्षात् ब्रह्म है। यह ब्रह्म का अंश नहीं है क्योंकि ब्रह्म के खण्ड नहीं हो सकते। यह आत्मा सभी अवस्थाओं में, चाहे वह जागृतावस्था हो, स्वप्नावस्था हो या सुषुप्ति अवस्था हो कभी भी बाधित नहीं होता है। यह स्वयं सिद्ध है। जिसको सिद्धि के लिए किसी तर्क या प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

आत्मा सम्पूर्ण दर्शन शास्त्र का गूढ़ एवं आलोक मय तत्त्व है जिसके अस्तित्व को कोई भी दर्शन अस्वीकार नहीं करता है। संसार का प्रत्येक दार्शनिक वह आस्तिक हो या नास्तिक पाश्चात्य हो या पौरस्त्य आत्मा के अस्तित्व को अवश्य स्वीकार करता है। भले ही भिन्न-2 दार्शनिकों के विचारों में आत्मा के स्वरूप के विषय में भिन्नता क्यों न हो। आत्मा के स्वरूप के विषय में कुछ दार्शनिक पुत्र को आत्मा कहते हैं, कुछ स्थूल शरीर को तो कुछ इन्द्रियों, प्राण, मन, बुद्धि तथा शून्यादि को ही आत्मा की संज्ञा देते हैं।

20- एवं सर्व देहेषु विश्वरूप परमेश्वरः परमात्मा-
डुखण्डस्वमविन घटे-घटे चित्स्वरूपो तिष्ठति॥

- वही पृष्ठ - 102 3/13

चावकि मतानुयायी²³ पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु तत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। इसके अनुसार शरीर ही प्रियतम पदार्थ है। "स्थूलोडहम्" "कृशोडहम्" इत्यादि अनुभवों से तथा "स वा पुरुषोऽन्नरसमय" इत्यादि श्रुति वाक्यों से स्थूल शरीर को ही आत्मा मानते हैं। लोकायत चावकि इन्द्रियों को प्राणात्मवादी प्राणों को, मन-आत्म-वादी मन को आत्मा स्वीकार करते हैं।

बौद्ध²⁴ आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते उनके विचारों में जिस प्रकार पान, सुपारी, चूना, कत्थादि मिलकर मुख में नया रंग पैदा कर देते हैं वैसे ही जल एवं पृथ्वी आदि मिलकर शरीर को चेतनवत् करते हैं। आत्मा की वास्तविक सत्ता नहीं है। विज्ञानवादी बौद्धों ने "अहंकर्ता" "अहंभोक्ता" आदि प्रमाणों के आधार पर बुद्धि को ही आत्मा माना है।

अनीश्वरवादी जैन मतावलम्बी²⁵ आत्मा की सत्ता को जीव के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में जीव ही चेतन या आत्मा है। जो लोक में जीव नाम से व्यवहृत होता है।

21- जीव सीव संगे बासा। बधि न षाड्बा रूप भासा।
हंस घात न करिबा गोतं। धतंत गोरष निहारिपोतं।

- गो० बा० पृष्ठ - 104 सबदी - 227

22- या प्राणेन संभवत्यदीति देवतामयी।

गुह्यं प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत ॥

यतश्चोदीति सुयोडिस्तं यत्र च गच्छति ।

तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥

ए त दैतत् तत् ॥

- क० उ० 3,3, व० 1 श्लो० 59

23- भा० द० प्र० पृष्ठ - 52

24- वही पृष्ठ - 53

आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में न्याय और वैशेषिक में कोई अन्तर नहीं है। उनके अनुसार²⁶ ज्ञान का जो अधिकरण है वही आत्मा है। वही सभी का दृष्टा, भोक्ता, सर्वज्ञ, नित्य तथा सर्वव्यापक है।

भीमांसको के मत में²⁷ आत्मा कर्ता तथा भोक्ता दोनों ही है। वे आत्मा में क्रिया के अस्तित्व को मानते हैं। आत्मा प्रति शरीर में भिन्न है। आत्मा में परिणाम अर्थात् रूप परिवर्तन होता है। फिर भी वह नित्य पदार्थ है। उसमें चित्त-अचित्त अंश होते हैं, चित् से ज्ञान का अनुभव करता है और अचित् से परिणाम को प्राप्त होता है।

सांख्य²⁸ पुरुष की सत्ता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है। इनके मत में पुरुष अन्य सभी तत्वों से भिन्न है। शरीरादि से इस का कोई सम्बन्ध नहीं, वह स्वतन्त्र, शुद्ध, चैतन्य, स्वरूप एवं ज्ञाता है। प्रकृति जगत को उत्पन्न करती है और पुण्य $\{$ आत्मा $\}$ साक्षी की तरह उसकी लीला देखता है। वह उदासीन सुख-दुःख से रहित, अधिकारी कूटस्थ, नित्य एवं व्यापक होता है। वह अत्रिगुण, चैतन्य, साक्षी, विवेकी, विषय तथा असामान्य है।

वेदान्तियों के अनुसार²⁹ तत्त्व वस्तुओं का प्रकाशक, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तः, सत्य स्वभाव आन्तरिक चैतन्य ही आत्मा है, जो वस्तु $\{$ यथार्थ $\}$ है।

- 25- - वही पृष्ठ - 53
 26- - वही पृष्ठ - 53
 27- - वही पृष्ठ - 53
 28- - वही पृष्ठ - 54

अतः आत्मा एक सर्वव्यापक नित्य पदार्थ है।
ब्रह्माण्ड, व्यवस्था में प्रत्येक वस्तु आत्मा में व्याप्त है।
वह अजर, अमर, शुद्ध, बुद्ध, निर्गुण चैतन्य निराकारी
तथा निर्लिप्त है। यह आत्मा परब्रह्म शिव है। अखण्ड
है। वह नित्य प्रकाश स्वरूप है। सच्चे भक्ति, सच्चा प्रेम
तथा स्वच्छन्द प्रकाश अपनी आत्मा से ही प्राप्त होता है।
आत्मा प्रकाश होने पर अन्य सभी प्रकाश निःस्तेज हो
जाते हैं तथा उस समय सारा अन्तःकरण शीतल तथा
हृदय आनन्द एवं शान्ति से पूर्ण हो जाता है।

29- अतस्तत्रद्भासक नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तसत्यस्वभावं
प्रत्येक चैतन्यमेवात्मस्तुज्ञाति।

- वे सा० पृष्ठ - ११९

षष्ठ अध्याय

- गोरक्ष दर्शन में ब्राह्माडम्बर सण्डन -

- 1- अव्यक्त अनाम परब्रह्म
- 2- शास्त्राभ्यास की अपेक्षा योगाभ्यास की महत्ता
- 3- विभिन्न मतवादियों की तत्व प्राप्ति में असमर्थता
- 4- कर्मादि उपासनाओं की असमर्थता
- 5- दैतादैत से परे दैतादैत विलक्षणवाद
- 6- देवताओं की भगवत्ता का खण्डन तथा षट् पदार्थनिरूपण
- 7- निर्गुण-सगुण आदि का निरास तथा नाथ की सर्वोच्चता

अव्यक्त अनाम परब्रह्म :

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का परम पद अव्यक्त अनाम परब्रह्म के विषय में कथन है^१ कि जब कोई कर्ता नहीं है, न कारण है और न कुल तथान अकुल है तब ब्रह्म अव्यक्त नाम से परे होता है अर्थात् परब्रह्म परमेश्वर नाम से रहित है। वह अविनाशी है।

श्री कृष्ण ने भी कहा है^२ कि परम अक्षर अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं हो, ऐसा सच्चिदानन्द घन परमात्मा तो ब्रह्म है।

अतः सर्वशक्ति सम्पन्न परमात्मा किसी भी नाम से परे सर्वश्रेष्ठ सर्वगुण सम्पन्न है। उसको किसी नाम से पुकारा नहीं जा सकता। वह परम पद शून्य और अपरम्पर है। वह एक है। अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ है। वह परब्रह्म परम सत्ता समस्त भौतिक पदार्थों का एक मात्र कारण स्वरूप है।

यह अनामा परब्रह्म इस सम्पूर्ण जगत व्यवस्था में स्थित प्रत्येक अणु-परमाणु में परिव्यापक सत्ता है, जो सर्व व्यापक, चैतन्य, निर्गुण, निराकारी, आनन्दमय है, जो किस भी परिसीमा में बन्धा नहीं जा सकता। यह अव्यक्त अनामा परब्रह्म निरक्यवी, सर्वनीयन्ता, सर्वव्यापी, नित्य, जगत का उत्पत्ति कर्ता पालक एवं संहारक है।

१- यदा नास्ति स्वयं कर्ता कारणं न कुलाकुलम्।
अव्यक्तञ्च परं ब्रह्म अनामा विद्येत तदा ॥

- सि० सि० प० पृष्ठ -२ १/४

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ आगे कहते हैं³ कि परम पद स्वानुभवैकगम्य है स्व संवेद्य है और स्व प्रकाश स्वरूप अभिव्यक्त है - किसी अन्य प्रकाश के माध्यम से यह बोधगम्य नहीं है। स्व संवेद्य अर्थात् परमात्मा ही परमात्मा को जानता है अथवा जब कुण्डलिनी के पूर्ण प्रबोधन से जीवात्मा अखण्ड परमात्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, तब वह परम पद में स्वस्थ हो जाता है यही परम पद की स्व संवेद्यता है।

अपि च -

" परम तत्त्व निराकार, अविच्छिन्न अर्थात् जन्म, मरण आदि से रहित अर्थात् शाश्वत, मन और वाणी का अगम्य, निश्चल, अविनश्वर, सब उपाधियों से रहित एवं सब काम-नामों से शून्य है। "⁴

"जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है, जिसमें सब स्थित है और जिसमें सब लीन होते हैं, वह "पर तत्त्व" परम तत्त्व कहा जाता है। जो सत् ॥अस्ति॥ असत्, ॥नास्ति॥, सदसत् ॥अस्ति नास्ति॥, और असत् असत् ॥नास्ति नास्ति॥ इस चतुष्कोटि से विनिर्मुक्त, विनाश और उत्पत्ति से रहित एवं सर्व कल्पनाओं से अतीत तत्त्व है, वह "परतत्त्व" कहा जाता है।⁵ अन्यत्रभी कहा गया है-⁶

- 2- अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसौज्ञतः।
- गीता पृष्ठ - 142 8/3
- 3- परमपदमिति स्वसंवेद्यमत्यन्तभासाभासकमयम्।
- सि० सि० प० पृष्ठ - 118 5/2
- 4- अनाकारमविच्छिन्नभग्राह्यम चलं ध्रुवम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सर्वकाम विवर्जितम् ॥
- अ०यो० पृष्ठ - 8 1/25

" वह परब्रह्म स्वयं मन, श्रोत्र, हाथ और पैर से रहित है। वह प्रकाश द्वारा जाना जाता है। ॥ वह एक मात्र ज्योति स्वरूप हैं? वहाँ लोक लोक नहीं, वेद वेद नहीं हैं, देवता देवता नहीं है, यज्ञ-यज्ञ नहीं है, माता माता नहीं है, पिता-पिता नहीं है, पुत्र बधू पुत्र बधू नहीं है, चाण्डाल-चाण्डाल नहीं हैं, पौष्कस ॥निकृष्ट जाति॥ पौष्कस नहीं है, श्रमण ॥ बौद्ध या जैन सन्यासी॥ श्रमण नहीं है, पशु-पशु नहीं है और तापस तापस नहीं है, अपितु सर्वत्र एक मात्र परब्रह्म ही है। "

" उस सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर के परम पद तक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, इन्द्र और देवगण, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशाएँ, काल, वेद, यज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा, विधिवत्प की भी पहुँच नहीं है, एक मात्र सत्य स्वरूप निजा शक्ति ज्योति ही उस ॥परम॥ पद में अभिव्यक्त है। "7

अतः वह परमपद, परमात्मा, परम अक्षर ब्रह्म सबके लिए उपासनीय है। वह न जन्म लेता है, न मरता है। वह न तो स्वयं सूखता है और न उसे जलाया ही जा सकता है। न किसी प्रकार ही उसे विचलित किया जा सकता है। वह समस्त गुणों ॥सत्त्व, रज, तम॥ से परे सबका साक्षी, निर्मल, निर्विकार, अखण्ड स्वरूप, अद्वितीय

5- यस्मादुतपद्यते सर्वं यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यस्मिन् विलीयते सर्वं परतत्त्वं तदुच्यते॥
भावाभावाविर्बुध्नितं विनाशोत्पन्नितर्वर्जितम्
सर्वसंकल्पनातीतं परतत्त्वं तदुच्यते ॥

- वही पृष्ठ - 7 1/23, 24

सूक्ष्म, निराकार, निरंजन, निरभिमान, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से रहित, आकांक्षा रहित निर्विकल्प और सर्वव्यापक है। वह अशुद्ध एवं अपवित्र वस्तुओं को पवित्र करने वाला है। वह क्रिया रहित है। वह जन्म-मरण रूप विकार युक्त संसार के बन्धनों से परे शान्त चित्र है, जिसकी महिमा का यशोगान अवर्णनीय है। वह अव्यक्त अनामा परब्रह्म परमेश्वर सभी के लिए उपासनीय है तथा सभी को उसके पाने के विहित कर्म करना श्रेयस्कर है।

शास्त्राभ्यास की अपेक्षा योगाभ्यास की महत्ता :

योग विद्या भारतीय आध्यात्म तत्व की अत्यन्त प्राचीन निधि है। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने साधना का प्राण योग महाज्ञान को ही स्वीकार किया है, उनका कथन है⁸ कि योग ही परम पूज्य है, इससे श्रेष्ठ पुण्य दूसरा नहीं है योग ही परम सुख-परमानन्दधन, यही अत्यन्त सूक्ष्म दर्शन है। जीवन विज्ञान है और योग मार्ग ही सर्वरिष्ठ मार्ग है।

6 - स्वयम्भुवनस्कमश्रोत्रम पाणिपादं ज्योतिर्विदितं तत्र लोकानलोकाः, वेदान वेदाः देवा न देवाः, यज्ञा न यज्ञाः, माता न माताः, पिता न पिता, सन्नुषा न स्नुषा, चाण्डालो न चाण्डालः, पौष्कसो न पौष्कसः, श्रमणो न श्रमणः पाशवोनन पशवः, तापसो न तापसः इत्येकमेव परमिति।

- गो० सि० स० पृष्ठ - 23

१ ब्रह्मोपनिषद् से उद्धृत

औत प्राचीन काल से ही साधना के दो मार्ग प्रचलित रहे हैं। ज्ञान मार्ग और योग मार्ग। ज्ञान मार्गवलम्बी तत्व विचार को ही मोक्ष का सर्वोत्तम साधन मानते हैं। वे शास्त्राभ्यास को ही समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म विषयों तथा मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट उपाय मानकर चलते हैं। वे शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान को ही सर्वोत्तम मार्ग समझते हैं, जबकि योगीगण इस प्रकार के शास्त्राभ्यास तथा मात्र तत्व विचार द्वारा मोक्ष प्राप्ति की पूर्ति को नहीं मानते, उनके विचार में मोक्ष प्राप्ति अथवा परम पद प्राप्ति का उत्तम मार्ग योग मार्ग है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने योग मार्ग की निन्दा करने वालों को पाखण्डी बतलाते हुए कहा है⁹ कि योग मार्ग तन्त्र मार्ग में दीक्षित साधकों और मुमुक्षुओं की जो लोग निन्दा करते हैं। वे और उनके साथ रहने वाले सहवासी सबके सब सन्मार्ग की प्राप्ति में असमर्थ होने से तथा परमात्म बोध और आत्म स्वरूप की प्राप्ति में अनभिज्ञ होने से पाखण्डी है।

- 7- न ब्रह्मा विष्णु रुद्रौ न सुरपति सुरा नैव पृथ्वी न चापो।
नैवाग्निर्नाति वायुर्न च गगनतलं नो दिशो नैव कालः।
नो वेदा-नैव यज्ञा न च रावशशिनौ नो विधिर्नैव कल्पाः।
स्वं ज्योतिः सत्यमेकं जयति तव पदं सच्चिदानन्दमूर्ते॥

- गो० सि० स० पृष्ठ - 25

॥ श्री नित्यनाथ कृत सिद्ध सिद्धान्त पद्धति से उद्धृत ॥

- 8- योगात्परतरं पुण्यं योगात्पर तरं सुखम्।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगमार्ग्यत्परं न हि ॥
- यो० वा० ना० यो० सा० वि० पृष्ठ - 15

॥ योगबीज से उद्धृत ॥

- 9- योगामार्गेषु तन्त्रेषु दीक्षितास्तांश्च दूषकाः।
तेहि पाखण्डिनः प्रोक्तास्तथा तैः सह वासिनः॥
- सि०सि० प० पृष्ठ - 120 5/5

शास्त्रों के अभ्यास की अपेक्षा यदि योग मार्ग का ही अनुसरण किया जाये तो श्रेयस्कर है, कहा भी गया है।¹⁰ योगशास्त्र ही सच्छास्त्र है, यह साक्षात् आदिनाथ शिवजी के मुख कमल से निर्गत प्रकट हुआ है, साक्षात् शिव जी ने इस योगशास्त्र का कथन किया है। इस योग शास्त्र का नित्य पाठ करना चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त कर लेने पर अन्य शास्त्रों में वर्णित ज्ञान का विस्तार निष्प्रयोजन है।

क्योंकि¹¹ जो लोग विविध शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर अहंकार वान होते हैं, प्रचुर गर्वयुक्त होते हैं, वे सैकड़ों ग्रन्थों के अध्ययन से भी उपदेश देना नहीं जानते हैं।

अन्यत्र भी योग मार्ग की प्रशंसा के विषय में कहा गया है।¹² कि यदि अनेक योजनों में फैले पहाड़ के समान पाप हो तो वह भी ध्यान योग द्वारा विदीर्ण हो जाता है। उसको नष्ट करने अथवा विदीर्ण करने का कोई दूसरा उपाय है ही नहीं।

गुरु गोरक्षनाथ जी ने योग को वेद कल्पतरु का परम फल बतलाते हुए कहा है।¹³ वेद कल्पतरु है। जिस तरह कल्पतरु की शाखाएँ पक्षियों के आश्रय स्थान है ठीक उसी तरह दिव्यों द्वारा वेद की शाखाओं, प्रतिशाखाओं ।। - योगशास्त्रं पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।

यत्स्वयं आदिनाथस्य निर्गतं वदनाम्बुजात् ।।

-ग- सि० सि० प ० पृष्ठ - 120 5/5

का परिशीलन किया जाता है। वेद रूपी कल्पतरु का फल योग है। यह ॥योग॥ संसार के तापों ॥आधिदैहिक, आधिभौतिक, आधिदेविक॥ का शमन ॥नाश॥ कर देता है।

भगवान् श्री कृष्ण ने भी योगी की प्रशंसा करते हुए कहा है¹⁴ कि योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, और शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ माना गया है तथा सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है।

कुछ लोग शास्त्रों के विषयों को न जानते हुए भी मात्र शास्त्रों के पठन-पाठन से गर्वोन्मत रहते हैं, जबकि उन्हें उनकी मर्मज्ञता के विषय में कुछ भी मालूम नहीं होता तथा वे अपनी आयु का आधा भाग प्रायः इसी प्रकार शास्त्रों के परिशीलन में बिता देते हैं। तदनन्तर इन्द्रियों की शिथिलता के कारण योगाभ्यास करने में असमर्थता आ जाती है अर्थात् योगाभ्यास करने की शक्ति नहीं रह जाती। अतः मनुष्यों को प्रारम्भ में ही अक्षर मात्र का ज्ञान प्राप्त कर योग का अभ्यास करना ही उचित है। कहा गया है¹⁵ कि यह योगशास्त्र महादिव्य है, अपने आप में निगूढ़ रहस्य है, परमेश्वर स्वरूप है, समस्त तत्वों का एक मात्र सुनिश्चित सिद्धान्त है और अनेक तत्सम्बन्धी संकेतों का निश्चयात्मक निर्णय है, सिद्धों द्वारा प्रत्यक्ष किया गया महायोग ज्ञान है स्व संवेद्य पद - स्व रूपावस्थान में प्रतिष्ठित करने वाला है, स्व रूपानन्द प्रदान

11- अहंकारावृत्ताः केचिद् ज्ञात्वा शास्त्रसमुच्चयम्।

उपदेशं न जानन्ति ते च ग्रन्थशतैरपि ।।

- अ० यो० पृष्ठ - 34 2/39

12- यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं योजनान्वहून्।

भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदा चन।।

-गो०सि०स०पृष्ठ-11 ॥ध्यानविन्दू उपनिषद् से उद्धृत॥

करता है, यह नित्य सनातन विज्ञान है, समस्त सन्देहों तत्व के विषय में शंकाओं का उच्छेद करने वाला है।

अपि च -¹⁶ अठारहो पुराण, महाभारत, चारो वेद, अनेक धर्मशास्त्र और पुत्र स्त्री आदि रूप सांसारिक प्रपंच, सबके सब योग साधना के मार्ग के महान विघ्न है।

अतः इन समस्त शास्त्रों तथा सांसारिक प्रपंचों से परे एक मात्र योगाभ्यास में तत्पर होना ही कल्याणकारी तथा श्रेयष्कर है।

विभिन्न मतवादियों की तत्व प्राप्ति में असमर्थता:

आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार परमतत्व का ज्ञान एवं अव्यक्त अनामा अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति, जीव का परम धर्म जीवन का परम पुरुषार्थ तथा मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र एवं श्रेष्ठ उपाय योग ही है। शास्त्र आदि बाह्य साधनों से प्राप्त होने वाला ज्ञान दीप प्रकाशवत् अल्प तथा सशय आदि दोषों से युक्त तथा आत्मा को प्रकाशित करने में असमर्थ होता है। स्वात्मस्वरूप आत्मा को प्रकाशित करने वाला ज्ञान योगाभ्यास द्वारा उपलब्ध विवेक जन्य ज्ञान, सूर्य के प्रकाशवत् सभी विषयों के तत्वों को सर्वांगीण एवं यथार्थ रूप में एक साथ सर्व प्रकार से उद्भासित

13- द्विज सेवित शास्त्रस्य श्रुतिक्ल्पतरोः फलम्।

शमनं भवतापस्य योगं भजत सत्तमः॥

- गो० शा० पृष्ठ- 2/6

14- तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवानुर्नः॥

- गीता पृष्ठ - 129 7/46

करने वाला, भ्रान्ति आदि दोषो से रहित, सर्वथा सत्य, देश काल सम्बन्धी सीमाओं से अबाधित पूर्ण तथा अविद्यादि क्लेशों, कर्मादि संस्कारों का नाश करने से मोक्षप्रद एवं अनन्त होता है। कहा भी गया है¹⁷ कि-

" जिनका वह अन्तःकरण का अज्ञान आत्म ज्ञान द्वारा नाश हो गया है, उनका वह ज्ञान, सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दधन परमात्मा को प्रकाशता है अर्थात् परमात्मा के स्वरूप को साक्षात्कराता है। "

योग साधना से रहित अकेला मात्र ज्ञान मोक्ष प्राप्ति कराने, ब्रह्म के साथ ऐक्य कराने तथा अविद्यादि का नाश कराने में समर्थ नहीं है। इसके लिए योग का अभ्यास आवश्यक है। वस्तुतः परब्रह्म परमतत्त्व का ज्ञापक एवं प्रापक तथा समस्त प्रकार के तापों का शामक योग ही है। योग द्वारा ही सभी विषयों एवं वस्तुओं का पूर्ण एवं प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अतः एक मात्र योग शास्त्र के अध्ययन में ही श्रम करना श्रेयस्कर है। क्योंकि जिस प्रकार असंख्य दीपक भी सूर्य का दर्शन नहीं करा सकते, सूर्य के समक्ष उनका प्रकाश नगण्य है, उसी तरह शास्त्र उस परम तत्त्व का वर्णन करने में असमर्थ है। वह परम पद तो योगियों को ही प्रत्यक्ष हो सकता है। इस योग का आश्रय न लेने वाले अन्य मतवादि गण तो अपने-अपने अभिप्राय के अनुसार उस परम पद का

- 15- एतच्छास्त्रं महादिव्यं रहस्यं पारमेश्वरम्।
सिद्धान्त सर्वसारस्य नानासङ्केत निर्णयम्।
सिद्धानां प्रकटं सिद्धं सद्यः प्रत्येयकारकम्।
आत्मानन्दकरं नित्यं सर्वसन्देह नाशनम्॥

विवेचन करके व्यर्थ ही विवाद के भार से बुद्धि को थकाकर कष्ट ही उठाते हैं, उन्हें शान्ति, परमपंद अथवा मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी अनेक मतवादियों के विषय में घोषणा करते हैं¹⁶ कि वेदान्ती कर्मोपासना आदि का त्याग कर शब्द जाल-प्रमाण आदि का आश्रय ग्रहण कर दैतवाद का खण्डन करते हैं, उनकी मति कठोर तर्कों से ग्रसित रहती है और वह निदिध्यासन से बहिर्मुख हो जाती है। यद्यपि वे मायावाद का खण्डन कर जगत् को मिथ्या और ब्रह्म को सत्य कहते हैं तथापि माया में भ्रमित होकर अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्म तत्त्व से वींचित रहते हैं। पूर्व मीमांसक केवल यज्ञादि कर्म में तत्पर रहते हैं। वैशेषिक आदि दर्शनों के मर्मज्ञ दैताग्रह से सदबुद्धि को कुण्ठित कर देते हैं, इसी तरह अन्य मत-मतान्तरों के अनुयायी अपने-अपने मत का दृढ़ समर्थन करने में विवाद प्रस्तुत करते हैं और सत्स्वरूप के बोध से वींचित रहते हैं, इस लिए श्रेष्ठ योग-मार्ग पर चलने वाले निष्ठावान् साधक को दैतादैतविवाजित सत्सिद्धान्त सिद्धमत का ही आश्रय-ग्रहण करना चाहिये। सांख्य दर्शन में निष्ठा रखने वाले सांख्यमतावलम्बी, वैष्णव, वैदिक, आचार-विचार में प्रवृत्ति रखने वाले, सन्यासाश्रमी, तपस्वी, सूर्य के उपासक, वीर शैव सांसारिक विषय-प्रपंच में प्रवृत्त, बौद्ध और जैन आदि

16- पुराणं भारतं वेदाा धर्मशास्त्राण्यने कशः।

पुत्रदारादि संसारो योगमार्गस्य विघ्नकृत्।

-गो०सि०स० पृष्ठ-15 ॥उत्तर गीता से उद्धृत॥

17- ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।

तेजामादित्यक्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥

- गीता पृष्ठ - 105 5/16

आदि स्वसंवेद्य परमात्म स्वरूप से वींचत ॥दूर॥ हो कर प्रपंच जाल में ही उलझे रहते हैं, इसलिए योग साधक को सिद्ध सिद्धान्त का अनुगमन करना चाहिये। अनेक शिष्यों को मन्त्र-दीक्षा प्रदान करने वाले गुरु जन - आचार्य यज्ञ यागादि हवनकर्म से मुक्ति का सम्पादन करने वाले, दिगम्बर, तापस, अनेक तीर्थों में भ्रमण करने वाले जप करने वाले, मौन व्रत सदाधारण करने वाले-सबे-के-सब व्यर्थ दुःख के भार से आक्रान्त रहते हैं, उन्हें सत्स्वरूप की प्राप्ति नहीं हो पाती, इस लिए योगीनष्ठ साधक को समरसकरण भाव ॥सिद्ध सिद्धान्त मत॥ का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

उन्होंने अन्यत्र भी कहा है^{१९} कि संकल्प मूलक ध्यान आदि महाज्ञान है, इसके द्वारा आध्यात्म का चिन्तन करने वाला विद्वान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा वेदों के ही अंग उपनिषदों ॥आदि में वर्णित तत्त्व॥ का ज्ञान स्वतः प्राप्त कर लेता है।"

- १८- वेदान्ती बहुतर्क कर्कशमति ग्रस्तः परं मायया।
भाट्टाः कर्मकलाकुला हतधियो द्वैतेनवैशेषिकाः।
अन्ये भेदरता विवाद विकलाः सत्तत्त्वतोर्वीचिता-
स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभाव समयं धीरः सदासश्रयेत्॥
सांख्या वैष्णव दैदिकीविधिपराः सन्ययासिनस्तापसा।
सौरा वीरपराः प्रपंचनिरता बौद्धाजिन श्रावकाः।
एते कष्टरता वृधा पथगताः सत्तत्त्वतोर्वीचिता-
स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभाव समयं धीरः सदा संश्रयेत्॥
आचार्या बहुदीक्षिता हुतिरता नग्नव्रतास्तापसा
नाना तीर्थ निषेवका जपपरा मौनेस्थिता नित्यशः।
एते ते खलु दुःख भार निरताः सत्तत्त्वतोर्वीचिता
स्तस्मात्सिद्धमतं स्वभावसमयं धीरः सदा संश्रयेत्।
- सि०सि० प० पृष्ठ- १६१ ६/७३, ७४, ७५

- १९- संकल्पमूल ध्यानादिचिन्ताशस्त्रे समा कुलाः।
क्लेशेनापि न विदन्ति प्राप्तव्यस्थान भोषितम्।
वेदान्त तर्कीकित भिरागभैश्च

कर्मों के उपसर्गों की असमर्थता:

मनुष्य-शास्त्र, समाज अथवा आचार्य के आदेश पर दान, व्रत, पूजा, तपस्या आदि जो भी कर्म करें उससे वह उन कर्मों के फल स्वरूप कुछ ऐहिक और पारत्रिक सुख सम्भोग का अधिकारी भले ही हो जाये किन्तु इन कर्मों से वह मानव जीवन के चरम लक्ष्य मुक्ति की दिशा में अग्रसर नहीं हो सकता। वस्तुतः योग और योगार्थ कर्मों के सम्बन्ध में इस प्रकार विचार करना चाहिए कि कौन वस्तु कितनी आवश्यक है और कौन अनावश्यक, किस प्रकार के कर्मों से चित्त की शुद्धि होगी, वासना का संकोच होगा, प्रवृत्तियाँ वश में आयेगी। अपने मनुष्योचित कल्याण की प्राप्ति में सहायता होगी और दूसरे किसी का किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होगा एवं किस प्रकार के कर्मों से लोभ एवं आशक्ति बढ़ेगी, चित्त में मलिनता आयेगी, प्रवृत्तियाँ प्रबल होगी, आध्यात्मिक कल्याण की हानि होगी तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से दूसरे का अनिष्ट होगा। इस से परे परब्रह्म परमेश्वर के विषय में जानने का कर्म करना ही श्रेयस्कर है। कहा भी गया है² कि योगी को सभी शास्त्रों के विचार अध्ययन और जप होमादि कर्मों के अनुष्ठान से निवृत्त होकर तथा धर्म-अधर्म से क्या करना धर्माचरण है-क्या करना अधर्म है-उससे उपर उठकर अर्थात् परे होकर एक मात्र योग का ही विधिपूर्वक अभ्यास करना चाहिये।

नानाविधैः शास्त्र कदम्बैर्केच।

ध्यानादिभिः सत्करणैर्न गम्यं

चिन्तामणिर्ह्येकं गुरुं विहाय।।

तस्मान्नूनं सकलविषया निष्कलाध्यात्मयोगाद्

अपि च^{२२} -

"हवन यज्ञादि सारी वैदिक क्रियाएँ कर्ता को फल प्रदान कर देती है उसके द्वारा उनका फल भोगने पर उन क्रियाओं का क्षरण-नाश हो जाता है॥ वे क्रियाएँ सदा फल दायिनी नहीं होती है॥ प्रजापति ब्रह्म ही अधिनाशी है, उसकी प्राप्ति यज्ञादि वैदिक क्रियाओं से सरल नहीं है। वहीं एक मात्र ज्ञेय है, उसी एक मात्र परब्रह्म परमेश्वर का साक्षात्कार अथवा प्राप्ति ही सारी यज्ञादि क्रियाओं का परम फल है, अतः उसी को जानने की साधना करनी चाहिये।"

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी विभिन्न प्रकार के कार्यों के प्रति कहत है^{२३} कि काषाय ॥ गेरवे ॥ वस्त्र धारण करना, खप्पर धारण करना, केशों को नोचना, पाखण्ड-व्रत लेना, भस्म, कन्था और जटा धारण करना उन्भतवत् रहना, नग्न रहना, सभाओं में निगम और आगमों पर व्याख्यान देना, काव्य-गोष्ठी में भाग लेना - यह उदर पूर्ति के लिए है। पदनामः श्रेयस् का साधन नहीं है। द्वेष ॥ विदेषण ॥ उच्चाटन, भारण आदि प्रवचनाओं से युक्त मन्त्रों से प्रपंच की उत्पत्ति होती है, पूर्ण अभ्यास, भाँति-भाँति

वायोनशिस्तदनु मनसस्तिदिनाशाच्च मोक्षः ।

स्याच्चेदवं सहजममलं निर्विकारं निरीहं

ज्ञात्वा यत्नं कुरुत कुशलाः पूर्णमेवामनस्के ।।

- अ० यो० पृष्ठ - ३४ २/४०, ४१, ४३

२०- ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ।

योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणोऽध्यात्मचिन्तकः ।।

- गो० सि० स० पृष्ठ - १६ ॥ वायु पुराण से उद्धृत ॥

२१- उत्सृज्य सर्वशास्त्राणि जनहोभादि कर्म च ।

धर्माधर्मविनिर्मुक्तो योगी योगं समभ्यसेत् ।।

- गो० सि० स० पृष्ठ - १० ॥ खेचरी सौहता से उद्धृत ॥

केआसन बन्धो का बिना अन्तरंग-विवेक के करना केवल अज्ञान ही है, देह स्थित नाड़ियों में तथा छः आधार वाले में ध्यान केवल चित का विभ्रम है, इस लिए मन से कल्पित इन सब का त्याग कर अमन एक योग का सेवन करो।

अपि च²⁴ -

" कष्टकारी विविध साधनों से किसी प्रकार कठिनाई से वायु पर विजय प्राप्त कर और उसका प्रयत्न पूर्वक अपने शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियों से संचार कर अश्रुदेय ॥अविश्वसनी ये॥ परकाय प्रवेश की असीदग्ध रूप से सिद्ध कर विज्ञान में व्यसन से सुख मानने वाले को भी अथार्त विज्ञानार्जन में अत्यन्त परिश्रमशील साध को भी तत्व की सिद्धि नहीं होती है। कई ॥अधोर पन्थी॥ अपना मूत्र पीते हैं, कई अपना मल ग्रहण करते हैं, कई अपने शरीर पर राख पोतते हैं, दुराचरण का पराकाष्ठा को प्राप्त हुए कई युवती जनों के गुह्वांग की बून्दों को उपर खींचते हैं, कई विविध प्रकार की धातुओं ॥रसों॥ का सेवन करते हैं और कई शरीर की समस्त नाड़ियों में वायु का संचार करने में निपुण हैं, परन्तु इन सबको कार्य सिद्धि प्राप्त नहीं होती। कार्य

- 22- क्षरन्ति सर्वा वैदक्यो जुहोमियजति क्रियाः।
 अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापति ।।
 - गो० सि० स० पृष्ठ-14 ॥मनुस्मृति से उद्धृत॥
- 23- काष्ठाग्रहणं कपाल धरणं केशावलीं लुचनं।
 पाखण्डव्रत भस्मचीवर जटा धारित्वमुन्मत्तता।।
 नग्नत्वं निगमागभादिकविता गो गोष्ठी सभाभ्यन्तरे,
 सर्व चोदर पूरणाय पठनं न श्रेयसः कारणम्।।
 देषाच्चटानमारणादि कुह कर्मनैः प्रपंचोद गभः
 सर्वाभ्यास विचित्रबन्धकरणाद्यज्ञानयोगः पररः।

सिद्धि का अमनस्क जिससे अपना मन विलीन हो गया
 ऐसे ॥ राजयोग के सिवा साधन नहीं है। नाना तर्कों के
 ऊहा-पोहा से कर्कश बुद्धि वाले कई लोग निविड अहंकार
 से उद्वत रहते हैं एवं कई जातिगत अभिमानाच्चित होकर
 ध्यान आदि कर्मों में व्यग्र रहते हैं। पृथ्वी पर प्रायः सभी
 प्राणी मूढमन विकृत मस्तिष्क ॥ हैं तथा अनेक प्रकार की
 विकृतियों से युक्त है। एक मात्र निर्विकार सहजानन्द
 का उपभोग करने वाले लोग नहीं दिखाई देते हैं। कई
 एक दण्डधारी हैं तो कई त्रिदण्ड आदि धारण करने वाले
 हैं, कई जप धारी हैं तो कई सर्वांग में खूब मग्न रहने
 हुए हैं, कई मुण्डित मस्तक हैं तो कई नग्न रहने वाले
 हैं और कई रक्त वस्त्र धारण करने वाले हैं। कई उन्मत्त
 से हैं तो कई अयोज्य भक्षण, अपेय पान आदि पाषण्ड
 वृत्ति धारण करते हैं- इत्यादि अनेक लिंगों का ग्रहण केवल
 नाना रूपों का प्रदर्शन मात्र हैं।"

श्रीभट्ट आद्यशंकराचार्य जी ने भी ऐसा ही लिखा
 है।²⁵ कि सिर पर जटाये धारण करना, बालों को नोचना,
 गैस्वे वस्त्रों द्वारा विविध प्रकार के वेश धारण करना, देखते
 हुए भी न देखना, ये विविध प्रकार के वेश धारण केवल
 उदर पूर्ति के ही साधन है।

व्यानं देह पदेषु नाडिषु षडाधारे च चेतोभ्रम-
 स्तस्मात् तत्सकलं मनोविरचितं त्यक्त्वा उभनस्कं भज ॥

-- अ० यो० पृष्ठ - 6 1/19, 20

24- जित्वा वायुं विविधकरणः क्लेशमूलैः कथंचित्,
 कृत्वा यत्नं निजतनुगता शेषनाडीपुचारान्
 अश्रुदेयां परपुरगीतं साधयित्वापि नूनम्,
 विज्ञानेऽपि व्यसनसुरिवनो नास्ति तत्त्वस्मीसिद्धिः ॥

द्वैताद्वैत से परे द्वैतद्वैत विलक्षणवाद :

मीमांसक द्वैत स्वीकार करते हैं तो वेदान्ती अद्वैत मानते हैं, जबकि योगी गणों की दृष्टि में वही सत्य है जो द्वैत-अद्वैत विवर्जित ॥विलक्षण॥ हैं। कहा गया है²⁶ कि कुछ लोग अद्वैत की इच्छा करते हैं तो दूसरे लोग द्वैत की अभिलाषा रखते हैं, इसीलिए उन्हें उस समत्व की प्राप्ति नहीं हो पाती, जो द्वैत और अद्वैत से विलक्षण है। यदि वह परम देव सर्वव्यापी, अचल, पूर्ण और अविनाशी है तो उसके लिए द्वैत-अद्वैत होने की कल्पना करना महान अज्ञान है - मोह है। कितनी बड़ी भूल है यह।

वस्तुतः कुछ लोग ब्रह्म को साकार मानते हैं तो कुछ निराकार। लेकिन वह ब्रह्म तो साकार-निराकार ॥द्वैताद्वैत विलक्षण॥ से परे एक चक्रवर्ती सम्राट के समान सबसे ऊपर अर्थात् सर्वेश्वर है। योगी साधक की आत्मा जब समस्त बन्धनों से रहित हो कर एक मात्र निर्विशेष ब्रह्म स्वरूप में स्थित होती है तब उसके लिए साकार-निराकार

केचन्मूत्रं पिबन्ति स्वमलमथ तनौ केचिदुज्झन्ति लालां
केचित्काष्ठां प्रविष्टा युर्वति भगगतं किन्दु भूर्ध्व नयन्ति।
केचित्सोदन्ति धातून् औरवलतनुशिरावायु संचार दक्षा-
लैतेषां देह सिद्धि विंगतनिज मनोराजयोगादृत स्यात्॥।
केचित्तर्क वितर्क कवचाधिरोडङ्कार दपौ दधत्ताः
केचिज्जातिगताभिमान भरिता ध्यानादिकर्माकुलाः।

रूप, देतादेत भाव, ध्याताध्येय, ज्ञाता ज्ञेय आदि समस्त भावों का लोप हो जाता है तथा एक मात्र देतादेत विलक्षण परब्रह्म परमेश्वर ही विराजमान रहता है। इसी देतादेत विवर्जित परमपद परब्रह्म परमेश्वर तक पहुंचना सिद्ध योगियों का परम लक्ष्य है।

देवताओं की भगवत्ता का खण्डन तथा षट्पदार्थ निरूपण :

महायोगियों के मत²⁷ में भगवान या देवता वही कहा जा सकता है जो समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदि छः पदार्थों से मुक्त हो। इनमें से एक भी गुण से वंचित को भगवान कहा जाता है तो वह युक्ति संगत नहीं है। इनके अनुसार भगवान रूप माने जाने वाले रुद्र, विष्णु, शंकर, श्री कृष्ण, श्री राम आदि को देवता या भगवान नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि भगवान रूप का पहला गुण समग्र ऐश्वर्य ही उनमें प्राप्त नहीं है, वे सभी काम के वशीभूत और स्त्री का संग करने वाले हैं, जिन्हें लोग योगी कहें और वे स्त्री का संग करें तो यह उपहारसास्पद ही है। दूसरा गुण धर्म। जहाँ-जहाँ छल किया जाय वह धर्म का अस्तित्व होना भला कैसे सम्भव है, जिनमें विष्णु का छल, नारद का वानर का मुख बना देना, श्री राम का छिपकर बाली का वध करना आदि प्रसिद्ध ही है। तदनन्तर यशस्त्री का हरण हो जाय और यश भी शेष

प्रायः प्राणिगणा विभूदमनसो नानाविकारान्विता
दृष्यन्ते नहि निर्विकार सहजानन्दैक भोगाकुलाः ।।

एकदण्डत्रिदण्डादि जटाम्बुकादिकं तथा ।।

केशमुंचन नग्नतवे रक्तचीवरधारणम् ।।

उन्मत्तताम भोज्यान्नपानं पाश्वण्डवृत्तिता ।।

इत्यादिलिंगग्रहणं नानादर्शन दर्शनम् ।।

-अ० यो० पृष्ठ-32/32, 33, 34, 35, 36

रह जाय यह भी सम्भव नहीं है। पुनश्च श्री भी कहाँ से प्राप्त होगी जबकि यश ही नहीं। ज्ञान उन्हें यदि था तब अज्ञान के कार्य रूप वे सांसारिक कार्यों में क्यों प्रवृत्त हुए। वैराग्य तो इन भगवत् पद वाची देवताओं में दिखलायी ही नहीं पड़ता है। तब इन्हें देवता या भगवान् मानना कैसे सम्भव है। अतः इनको पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष या महापुरुष कहना ही उचित है।

निर्गुण-सगुण आदि का निरास तथा नाथ की सर्वोच्चता:

वह पर ब्रह्म ॥परमेश्वर शिव न तो सर्वथा साकार है, न निराकार ही है। उसके विषय में यह कहा ही नहीं जा सकता कि वह ऐसा है, अपितु भेद-अभेद से रहित, निर्गुण-सगुण से परे वह मात्र शिव स्वरूप ही है। वह योग मार्ग में दैत अदैत से परे परमेश्वर ॥पर ब्रह्म स्वरूप॥ नाथ ही देवता है। निराकार ही ज्योति प्राप्त करने योग्य है। नाथ ही ध्यान करने योग्य है। अतः नाथ ही उपासनीय है। नाथ ही समस्त निर्गुण-सगुण देवताओं में सर्वोच्च है। कहा भी गया है-28

"सन्यासी ज्ञानी होते हैं और पण्डित लोग बोलने में निपुण होते हैं किन्तु अवधूत क्रिया सिद्ध, ॥आत्म तत्त्व॥ स्वरूप और माया से निर्लिप्त होते हैं, जो विषय सम्बन्धी शरीर को नष्ट कर देते हैं तथा योगदेह की सृष्टि करते हैं और काल के भय से इसकी रक्षा करते हैं। वे कौन हैं? वे हरिश्चर स्वरूप परब्रह्म ॥नाथ॥ ही हैं।

25- जटिलो मुण्डी लुंचितकेशः काषायांबरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि च न पश्यतिभूदः उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः॥।
-अ० यो० पृष्ठ-34 ॥चर्पट पंजरिकास्तोत्रम् से उद्धृत॥

महायोगी एक गुरु गोरक्षनाथ जी भी अवधूत ॥नाथ॥ की सर्व स्वरूपता के विषय में ऐसा ही लिखते हैं²⁹ कि अवधूत अपने स्व संवेद्य, देतादैत विलक्षण, निर्गुण-सगुण से परे, अखण्ड आत्म स्वरूप में आत्मस्थित रहता है, इसलिए वह आश्रम ॥ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास॥ की अवस्थाओं से परे होने से अत्याश्रमीकहा जाता है। वह ॥स्वरूप॥ ज्ञानी-तत्त्वादि, सिद्ध और योग साधना व्रत में-जगन्मात्र को परमात्म स्वरूप समझने में दृढ़ होता है। वह सृष्टि, पालन ॥स्थिति॥ और संहार में ॥शक्ति युक्त होने से॥ साक्षात् ईश्वर होता है, वह स्वामी ॥आत्मनिग्रही॥ होता है, वह सर्वदा कृतार्थ और साधु होता है। वह जितेन्द्रिय, आत्मान्न, सद्बोध युक्त, तत्त्वचिन्तक और सर्वतन्त्र साकार-सगुण भगवान् ॥सर्वसमर्थ॥ होता है। वह समस्त नास्तिक-आस्तिक-आस्तिक दर्शन में आत्म बुद्धि रखने के कारण सबमें अखण्ड आत्म स्वरूप से समाहित रहने वाला, चार्वाक ॥सांसारिक विषय-भोग प्रकृत देहात्मवादी॥, आत्म स्वरूप को प्राप्त अर्हत

- 26- अदैतं केचिदिच्छन्ति देतामिच्छन्ति चापरे।
समं तत्त्वं न विन्दन्ति देतादैत विलक्षणम्॥
यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः॥
अहो माया महामोहो देतादैत विकल्पना॥
-गो०सि०स० पृष्ठ-24 ॥अवधूत गीता से उद्धृत॥
- 27- षट् पदार्था यत्र भवन्ति स भगवान्। के ते षट् पदार्थाः?
अहोसमग्रैश्वर्यं । धर्म 2 यशः3 श्री 4 ज्ञान 5
वैराग्य 6 इत्येषा ।
- गो०सि०स० पृष्ठ- 154
- 28- गो० सि० स० पृष्ठ - 129
- 29- अत्याश्रमी च योगी च ज्ञानी सिद्धश्च सुव्रतः।
ईश्वरश्च तथा स्वामी धन्यःश्री साधुरेव च ॥
जितेन्द्रियश्च भगवान् स सुधीर्कीर्तिदो बुधः।
चार्वाकश्चाहृतश्चेति तथा बौद्धः प्रकाशिवत् ॥

॥ जैन ॥, स्वात्म प्रकाश में प्रबुद्ध होकर भी ॥ बुद्धिवृत्त रूप क्षणिक आत्माविज्ञानवादी सुगत ॥ बौद्ध, न्याय वैशेषिक दर्शनावलम्बी परिणाम वादी, सांख्यवादी ॥ तत्त्वनिष्ठ ॥ ज्ञानी, कर्मकाण्ड को ही परमफल प्राप्ति कराने वाले साधन में निष्ठ पूर्व मीमांसक, संसार का कारण देवता, स्वभाव काल, कर्म समझने वाले अनेकानेक शास्त्रों और विद्वानों के विचार का समर्थक, वह योगी अवधूत आत्म दर्शन में स्वस्थ होने से सर्वस्वरूप होता है। आत्मा, परमात्मा, जीवात्मा, स्वस्वरूप, शिव रुद्रनाम मुक्त सत्तासु सर्वज्ञा ही अवधूत ॥ योगी ॥ योगी होता है।

तार्किकश्चेति सांख्यश्च तथा मीमांसको विदुः।
 देवतेत्यादि विदुर्दमः कीर्तितः शास्त्र कोटिभिः॥
 आत्मेति परमात्मेति जीवात्मेति पुनः स्वयं ।
 अस्तित्वं परमं साक्षाच्छिवरूपादि सांज्ञितम् ॥

- सि० सि० प० पृष्ठ - 149 6/21, 22, 23, 34

सप्तमं अध्याय

- गोरक्ष दर्शन में गोप्य - रहस्य -

- 1- महा माया कुण्डलिनी महाशक्ति
- 2- नवचक्र
- 3- सोलह आधार
- 4- तीन लक्ष्य
- 5- पांच व्योम

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योम पंचकम् ।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नाम धारकः ।।

महायोगी गोरक्षनाथ जी ने तत्वाज्ञानालोकित योगियों एवं सिद्ध योगियों के लिए अपने विशिष्ट अनुभव के आधार पर शरीर रचना के बाह्य स्वरूप की अपेक्षा आन्तरिक स्वरूप पर अत्यधिक गम्भीर रूप से विचार करने की राय दी है। उन्होंने ब्रह्माण्ड शरीर और व्यष्टिशरीरों की रचना से गूढ़ सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। जिसे सामान्य व्यक्ति के लिए समझना कठिन होगा। यह सिद्धान्त निरीक्षण अथवा प्रयोग के आधार पर नहीं समझा जा सकता क्योंकि इन गोप्य एवं रहस्यात्मक विचारों को समझने के लिए योगिक अन्तर्ध्यान की आवश्यकता है।

गुरु गोरक्षनाथ का मत है कि यह पवित्र शरीर जो कि शिव-शक्ति की एक आत्माभिव्यक्ति है, इसके आतिरिक्त भी आध्यात्मिक स्वरूप का सद्ज्ञान प्राप्त करने के लिए गूढ़ विचार आवश्यक हो जाता है।

गुरु गोरक्षनाथ का कथन है कि जो योगी अपने शरीर के अन्तर्दर्शन में नौ चक्रों, सोलह आधारों, तीन लक्ष्यों तथा पांच व्योमों से पूर्णतया परिचित नहीं है, वह केवल नाम मात्र का ही योगी है। अर्थात् जो इन सब नौ चक्रों, सोलह आधारों, तीन लक्ष्यों, पांच व्योमों से पूर्णतया परिचित है वही सच्चा योगी है। शरीर में उपस्थित गूढ़ विषयों

- 1- नव चक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपंचकम्।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नाम धारकः ॥
-सि०सि०प० पृष्ठ- 68 2/3।
- 2- या च सर्वत्र कायेषु प्राणिनां चित्स्वरूपिणी ।
सा शक्तिः प्राणदा प्राणस्तम्भिनी नियता सदा ॥
- सा० कु० म० पृष्ठ - 37

का जानना एक योगी के लिए परमावश्यक है। अतः जहाँ एक योगी अपने वाह्य व्याप्ट शरीर का दर्शन करता है, वहीं वह आन्तरिक शरीर में भी गूढ़ विचारों को खोजे तभी वह पूर्ण योगी हो सकता है।

महामाया कुण्डलिनी महाशक्ति :

शक्ति-शिव का ही एक अभिन्न रूप है। समस्त श्रुति-स्मृति और लोक व्यवहार में सर्वत्र शक्ति की सत्ता को स्वीकार किया गया है। एक निर्बल व्यक्ति से लेकर सबल व्यक्ति तक किसी कार्य को करने के सन्दर्भ में यह सोचता है कि वह कार्य करने की शक्ति उसमें है अथवा नहीं। उस प्रकार शक्ति की कल्पना एक कल्पना न रहकर वह एक तथ्य है। वर्तमान यह जगत् वस्तुतः शक्ति द्वारा ही निर्वाह्य है। अस्तु वस्तुओं के रूप में शक्ति सर्वाधिक आश्चर्यजनक रहस्य है। इसी शक्ति की उपासना के लिए सर्वत्र भटकने की जरूरत नहीं पड़ती। प्रत्येक पिण्ड-प्रत्येक अणु-परमाणु में वह शक्ति विद्यमान है। जगत् में प्रत्येक प्राणी इसी शक्ति को इच्छा, किया एवं ज्ञान रूप में अनुभव करता है।

सर्वत्र ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त यह शक्ति ही वैयक्तिक शरीर में महामाया कुण्डलिनी महाशक्ति के रूप में विद्यमान रहती है।

समस्त शरीरों में जो महा माया शक्ति चित स्वरूप में व्याप्त है, वही सब शरीरों में जीवन देने वाली है, और शरीर में प्राणों का स्तम्भन किए रहती हैं² उसी शक्ति

की सत्ता से युक्त समस्त जीवधारी जीवन धारण करते हैं। इसी शक्ति के गमन संचार से जीव धारियों में प्राण जीवन का संचार रहता है। वही शक्ति चिद्रूपा है, प्राण स्वरूपा है, स्वयं ज्ञान रूपिणी है, व्यक्त रूप वाली भी है, अव्यक्त रूप वाली भी है और सभी तत्वों में परिव्याप्त है।³

जीव धारियों की दुनिया में प्राण-शक्ति सम्बन्धी मानसिक तथा भौतिक शक्तियों को क्रियाशीला देखा जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब मिलकर कपट रूप से हमारी दृष्टि से उस परम आध्यात्मिक शक्ति को गुप्त रखती है, जिससे उनका अस्तित्व है और जिसकी वे विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ हैं। यह दिव्य महा शक्ति इन निम्न स्तर की शक्तियों के सहारे विश्व-प्रपंच को क्रियमाण कर देने के उपरान्त उस विश्व के मूलाधार में गहन निद्रा का आनन्द ले रही है, जिससे सतत क्रियाशील महा कुण्डलिनी-शक्ति सुप्तावस्था में स्थित प्रतीत होती है।

मेद के ऊपर और नाभि के नीचे पक्षी के अण्डे की तरह कन्दयोनि है, जो कि बहत्तर हजार नाड़ियों का उत्पत्ति स्थान है। यहीं कन्द से उपर कुण्डलिनी शक्ति आठ प्रकार की होकर कुण्डलित आकार में ब्रह्मरन्ध्र के दारा को अपने मुख से रोक कर स्थित है।⁴ यहीं पर यह कुण्डलिनी शक्ति सर्पवत् कुण्डल मारे सदैव सुप्तावस्था में पड़ी रहती है जिसकी अभिव्यक्ति एक सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन ही नहीं दुष्कर प्रायः है। एक अज्ञानी उसके श्रेष्ठ स्वरूप

3- चिद्रूपा प्राणरूपा च ज्ञालरूपा च सा स्वयम्।

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपा च सर्वतत्त्वेषु व्यापिका ।।

- सा० कु० म० पृष्ठ - 38

एवं उसके महत्व को नहीं जान सकता। उसके स्वरूप तथा उसकी आत्माभिव्यक्ति एक योगी ही सहज भाव से पा सकता है।

वस्तुतः हमारा अज्ञान अथवा आध्यात्मिक अध्यापन ही है कि दिव्य महाशक्ति हमें सुप्त, अक्रियाशील और विश्व प्रपंच की घटनाओं के प्रति उदासीन प्रतीत होती है। जबकि महायोगियों की प्रबुद्ध, ज्ञानी दृष्टि में महाशक्ति नित्य जागृत, सतत् सतर्क, सतत क्रियाशील और सतत शान्त रहती है और विश्व की सभी शक्तियों और प्रक्रियाओं द्वारा और इन्हीं में अपने को अभिव्यक्त करती है और आनन्दित होती है। उसके सर्वव्यापक और प्रकाशक आध्यात्मिक अस्तित्व की अनुभूति सतत रूप से सहयोगियों को होती रहती है। महायोगी को महाशक्ति की उपस्थिति की भावना अपने स्वामी, आत्म ज्योतिर्मय शिव के गौरवमय अस्तित्व की धारणा को सम्भव बनाती है।

गुरु गोरक्षनाथ जी ने भी कहा है कि ईनाड़ियों के उत्पत्ति स्थान ४ कन्द के उर्ध्व भाग में आठ कुण्डलों से बलीयत कुण्डलिनी अज्ञानियों के बन्धन कारिणी और योगियों के लिए मोक्ष प्रदान करने वाली है।⁵ योगियों के मत में यह शक्ति शिव से मिलन कर आनन्दानुभूति एवं मोक्ष दायिनी होती है। जो महायोगियों एवं तत्वाज्ञानलोकित योगियों के अतिरिक्त समस्त जीव प्राणियों के लिए अज्ञात है।

4- कन्दोर्ध्व कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
ब्रह्म दारं मुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ॥
- गो० श० पृष्ठ - 10/47

यद्यपि यह कुण्डलिनी महाशक्ति स्वरूपतः एक ही है तथापि वह अधः, मध्यः और ऊर्ध्व शक्ति के रूप में तीन प्रकार की कही जाती है।⁶

सिद्ध योगियों, महायोगियों ने इसी चिद्रूपा, प्राण स्वरूपा, ज्ञान स्वरूपा शक्ति को ईश्वरानुभव एवं परम पद प्राप्ति का कारण माना है। गोरक्ष नाथ जी का मत है कि मध्य शक्ति को जगाने से और अधः शक्ति के ऊपर की ओर आकर्षण से तथा ऊर्ध्व शक्ति ॥कुण्डलिनी॥ के निपात-संयोजन से परम पद की प्राप्ति होती है।⁷

महायोगी तथा सिद्ध योगी अपने योगाभ्यास मुद्राओं, प्राणायाम आदि के माध्यम से सुषुप्ता कुण्डलिनी को जगाने में तत्पर रहते हैं। वे शिव परम पद प्राप्ति का अपना लक्ष्य बनाते हैं। सुषुप्ता कुण्डलिनी की आत्माभिव्यक्ति कर उसे शिव से एकत्व स्थापित करने का प्रयास करते हैं। शक्ति जागरण योगियों का प्रथमतः मुख्य विचार है।

जबतक आध्यात्मिक चेतना जागृत नहीं होती तबतक व्यष्टि पिण्ड भौतिक एवं प्राण शक्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं से नियन्त्रित रहता है। आध्यात्मिक चेतना की जागृति, क्रियाशीलता एवं अनुशासन की प्रभावपूर्ण विधियों

5- कन्दोर्ध्व कुण्डली शक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।

बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा स्मृता ।।

- गो० श० पृष्ठ 11/56

6- एकैव सा मध्योर्ध्वाधः प्रभदेन त्रिधा भिन्ना

शक्तिरभिधीयते। - सि०सि०प० पृष्ठ-112/17

7- मध्य शक्ति प्रबोधेन अधःशक्तिनिकुचनात्।

ऊर्ध्वशक्ति निपातेन प्राप्यते परमं पदम् ।

-सि०सि०प० पृष्ठ- 111/16

के माध्यम से ऐसी शक्ति का प्रादुर्भाव करना चाहिए कि वह निम्न स्तरों का भेदन कर सके। इस प्रकार की महा माया कुण्डलिनी शक्ति की जागृति होने पर वह ज्ञानरूपा शक्ति सहस्रार पर्यन्त शिव मिलन के लिए छटपटाने लगती है। वह शक्ति प्रबलतम होकर क्रियावती हो जाती है। वह शक्ति क्रियावती हो कर शिव से मिलन हेतु सुषुम्णा मार्ग पर अग्रसर होती है। तब योगी को उस मार्ग पर अनेक चक्रों का अनुभव प्राप्त होता है। यही रहस्यात्मक चक्र ज्ञान एक योगी के लिए परमावश्यक है तथा इन्हीं चक्रों का भेदन कर योगी परम पद प्राप्ति को प्राप्त होता है।

नवचक्र :

1- गुरु गोरक्षनाथ जी के अनुसार प्रथम चक्र मूलाधार चक्र है। इसी को ब्रह्म चक्र भी कहा गया है।⁸ कुण्डलिनी शक्ति की प्रथम आत्माभिव्यक्ति का स्थान मूलाधार है। यही मूलाधार चक्र कुल चक्र भी कहलाता है। हमारे मेरुदण्ड में दाहिनी ओर पिंगला और बांयी ओर इडा नाड़ी स्थित है। इन दोनों के बीच में सुषुम्णा नाड़ी स्थित है। इसी तेजः स्वरूपिणी नाड़ी के निम्नतम मोड़ पर मूलाधार चक्र है। जहाँ पर कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में पड़ी रहती है। यही से प्रथम वह जागृत होती है। वह सुषुम्णा मार्ग पर शिव से साक्षात्कार हेतु अग्रसर होती है। इसी सुषुम्णा नाड़ी के निम्नतम मोड़ मूलाधार में जहाँ पर तीन कुण्डल मारे शक्ति सुप्तावस्था में पड़ी होती है, योगी प्रथम चक्र के दर्शन करता है।

8- आधारे ब्रह्मचक्रं ----।

-सि०सि० प० पृष्ठ - 33

यही मूलाधार अर्थात् ब्रह्म चक्र ही वह स्थान है जिस स्थान से कुण्डलिनी शक्ति की ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सहस्रार तक की यात्रा प्रारम्भ होती है।

यह मूलाधार चक्र चार दलों वाला कमल है।⁹ उन दलों पर वं, शं, षं, सं इस तरह चार अक्षर ओंकित होते हैं। योगी अपनी साधना से सुप्तावस्था में पड़ी शक्ति को जागृत कर उच्चतम मार्ग की ओर संचालित करता है, तब वह अपने आपको एक अन्यतम आभा से युक्त पाता है।

2- गोरक्षनाथ द्वारा वर्णित दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान चक्र है।¹⁰ सुषुम्णा नाडी के अन्दर लिंग मूल में इस चक्र का स्थान है। यह स्वाधिष्ठान चक्र छः दलों वाला कमल है।¹¹ इसके छः दलों पर क्रमशः बं, भं, मं, यं, रं, लं अक्षर ओंकित होते हैं। महायोगी की एकाग्र एवं मानसिक जैविक शक्ति मूलाधार चक्र को भेद कर स्वाधिष्ठान चक्र तक पहुँचती है। इस चक्र के अन्दर जो कि योगियों कि अर्न्तदृष्टि का सूचक है, एक विशिष्ट कान्तियुक्त शिवलिंग पश्चिमाभिमुख रूप में विद्यमान रहता है। योगी ध्यान धारणा एवं विशिष्ट साधना के द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को जागृत पाता है, तब वह शक्ति तीव्रगति से स्वाधिष्ठान चक्र की ओर बढ़ती है। जो योगी ध्यान, धारणा एवं साधना में निपुण हैं, जिसने समस्त सांसारिक सुखों, समस्त इच्छाओं एवं कामनाओं

9- चतुर्दलं स्यादाधारं -----।

-गो० श० पृष्ठ - 5

10- द्वितीयं स्वाधिष्ठान चक्र -----।

- सि०सि० प० पृष्ठ - 35 2/2

को त्याग दिया है। मन तथा समस्त इन्द्रियों पर अपने तपोबल से विजय प्राप्त कर ली है, तथा मूलाधार चक्र को प्राप्त कर लिया है वह योगी शिव से शक्ति के मिलन हेतु मार्ग प्रशस्त कर लेता है तथा मानसिक जैविक शक्ति को स्वाधिष्ठान चक्र के स्तर तक समुन्नत कर लेता है। उस समय वह योगी कान्तियुक्त व्यक्तित्ववान बन जाता है तथा समस्त जगत उसकी ओर आकर्षित हो रहा प्रतीत होने लगता है।¹²

3- तीसरा चक्र नाभि चक्र है।¹³ योगी इस चक्र का अनुभव सुषुम्णा नाड़ी के अन्तर्गत आने वाले एक विशिष्ट केन्द्र नाभि क्षेत्र में इस चक्र का अनुभव करते हैं। इसी को मणिपूर चक्र भी कहा जाता है। यह चक्र दस दलों से युक्त रहता है।¹⁴ इसके प्रत्येक दल पर क्रमशः डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं अक्षर अंकित होते हैं। महायोगी की मानसिक, जैविक शक्ति मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान आदि समुन्नत चक्रों को भेद कर मणिपूर ॥नाभि॥ चक्र पर पहुँचती है, जो कि योगियों के अनुभव एवं विशेष चमत्कार पूर्ण सिद्धियों व बल प्रयोगों का एक उच्च केन्द्र है। इस चक्र के पाँच वृत्त सर्पवत् कुण्डलाकार रूप में दर्शित होते हैं।¹⁵ इस चक्र पर पहुँच कर योगी कुण्डलिनी शक्ति व शिव के परमानन्द मिलन का भोग करता है। यह पूर्ण वर्णित दोनों ही चक्रों ॥मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान॥ से शिव-शक्ति के उच्चतर मिलन का केन्द्र है। इस चक्र के भेदन

11- -----स्वाधिष्ठानं च षट्दलम् ।

-गो० श० पृष्ठ - 5

12- -----जगदाकर्षणं भवति ।

-सि०सि०प० पृष्ठ-35 2/2

तक योगी शिव-शक्ति के पूर्ण आनन्दोपभोग एवं सहस्रार पर्यन्त तक की यात्रा का अर्द्धभाग पार कर लेता है। इसलिए इस चक्र में स्थित होने पर कुण्डलिनी शक्ति को मध्यम शक्ति भी कहा गया है।

4- चौथा चक्र आठ दलों से युक्त नीचे की ओर मुख वाला हृदय चक्र है।¹⁶ कहीं-कहीं पर इस चक्र को बारह दलों से युक्त कहा गया है।¹⁷ इसी चक्र को अनाहत चक्र भी कहा जाता है। इस चक्र का अनुभव हृदय क्षेत्र के समीप किया जाता है। योगी जिस समय अपनी मानसिक जैविक शक्ति को इस चक्र में अन्तर्निहित करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है तब वह अपनी समस्त इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है। उस समय वह योगी एक सौम्य, अहंकार रहित, शान्त एवं समस्त इच्छाओं से रहित स्थिति को प्राप्त हो जाता है। इस चक्र पर पहुँचने एवं उस पर गहन चिन्तन, विशिष्ट ध्यान करने पर योगी शिव-शक्ति मिलन का आनन्दोपभोग तो करता ही है, वह अपने आपको भी शिवशक्ति के निकट पाता है। वह शिव-शक्ति से स्वयं का तादात्म्य अनुभव करने लगता है। इस समय योगी की कुण्डलिनी शक्ति उस उच्च स्तर पर पहुँच जाती है, जबकि वह शिव से स्वयं को अभिन्न समझने लगता है। इस चक्र का गूढ़ अध्ययन करने पर योगी सच्ची आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त कर लेता है।

5- गोरक्षनाथ ने चार अंगुल विस्तार वाले कण्ठ चक्र ॥विशुद्ध॥ को पाँचवे चक्र के रूप में निरूपित किया है। वहाँ पर बांयी ओर इडा और दाहिनी ओर पिंगला ॥सूर्यनाडी॥ नाडी स्थित है। इन दोनों ही नाडियों के मध्य में सुषुम्णा

अर्थात् ब्रह्म नाडी अनाहत कला कही जाती है। इसी अनाहत कला की उपासना, ध्यान करने से योगी को विशेष प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है।¹⁸ इस चक्र को सोलह दलों से युक्त माना गया है।¹⁹ जिसके प्रत्येक दल पर क्रमानुसार अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, स्वर औक्त होते हैं। योगी की मानसिक जैविक शक्ति पूर्व वर्णित हृदयादि चक्रों का भेदन करती हुई, पूर्ण शुद्ध रूप से कण्ठ विशुद्ध चक्र तक पहुँचती है, तथा वहाँ अनाहत कला से एकत्व स्थापित कर शिव शक्ति के मूढ़ आनन्द का रसोपभोग करती है। योगी इस चक्र पर पहुँच कर अनाहत सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह योगी जगत् की समस्त शक्तियों से उच्चता को प्राप्त हो जाता है। इसके बाद जगत की कोई भी शक्ति उस पर प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सकती क्योंकि योगी का शिव-शक्ति से तादात्म्य हो चुका होता है।

6- छठा चक्र तालु चक्र कहा गया है। वहाँ सदैव अमृत धारा प्रवाहित होती रहती है।²⁰ गोरक्षनाथ का कथन है-"तालु चक्र तालु मूल में स्थित है। उस चक्र में सहस्रार से सतत अमृत की धारा प्रवाहित होती रहती है। योगी अपनी मानसिक जैविक शक्ति को इस चक्र में समुचित प्रणाली के माध्यम से एकाग्र कर उस अमृत का पान कर क्षुधा-पिपासा से मुक्त होकर शरीर दिव्य कर लेता है, भौतिक

13- तृतीयं नाभिचक्रं -----।

- वही पृष्ठ - 36 2/3

14- नाभौ दशदलं पद्यं -----।

- गो० श० पृष्ठ - 5

15- -----पंचावर्त सर्पवतत् कुण्डलाकारं----।

-सि०सि०प० पृष्ठ- 36 2/3

अमृत तत्व प्राप्त कर लेता है, इस चक्र में शून्य पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिससे चित्तलय की स्थिति की प्राप्त हो सके। पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए और चेतना को परमात्ममय कर देने के लिए चित्तलय एक महान सोपान है। तालु मूल में एक घटिका लिंग है, जिसके मूल में एक लघु छिद्र हैं, एक पूर्ण रिक्त स्थान शैखिनी विवर है, यह दसवां द्वार है, यही शून्य पर धारण करने से समाधि के फल स्वरूप चित्त विलीन हो जाता है, जिसमें ध्यान करने से व्यावहारिक चेतना समाप्त हो जाती है और पारमार्थिक ज्योति आलोकित हो उठती है।" 22

7- सातवां चक्र दोनों भौहो के मध्य में स्थित भूचक्र है जिसे मध्यम चक्र भी कहा जाता है। यहाँ पर पहुँचकर सुषुम्णा एक दीप शिखा के आकार की हो जाती है। यही ज्ञान नेत्र अर्थात् तीसरा नेत्र है। इस तीसरे ज्ञान नेत्र के ध्यान केन्द्रित करने से योगी वाक् सिद्धि प्राप्त कर लेता है। 22 वस्तुतः यह ज्ञान नेत्र वह आन्तरिक ज्योति है, जिससे योगी की समस्त चेतना ज्ञानालोकित हो जाती है। योगी की गहन ध्यान धारणा और एकाग्रता से वह ज्योति से एकत्व स्थापित कर लेता है। उस अवस्था में वह योगी उस उच्चतर स्तर तक पहुँच जाता है कि वह अपनी आलोकित दृष्टि से समस्त सांसारिक घटनाओं, कार्य कलापों को देखने लगता है। वह वाक् सिद्धि को भी प्राप्त कर लेता है अर्थात् जो वह कहता है वह सदैव सत्य होता है। उस अवस्था

16- चतुर्थ हृदयाधारभष्टदलं कमलमधोमुखं -----।

-सि०सि०प० पृष्ठ - 38 2/4

17- सूर्य संख्या दलं हृदि ।

- गो० श० पृष्ठ - 5

॥सूर्य संख्या-बारह॥

में वह जो भी बोलता है, वह सत्य भाषण ही है। इसी चक्र को आज्ञा चक्र भी कहा जाता है। यह चक्र भौहों के मध्य में स्थित दो दलों वाला कमल है²³ जिसके दलों पर यथाक्रम हं, क्षं, बीजाक्षर अंकित होते हैं।

8- आठवां चक्र ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् निर्वाण चक्र है। यह सुई के अग्रभाग के समान धुएँ के शिखाकार रूप होता है। इसी का ध्यान करने पर यह योगी के लिए मुक्ति प्राप्ति कराने वाला जालन्धर पीठ है।²⁴ यह चक्र शाश्वत ब्रह्म की सिद्धि का विशिष्ट केन्द्र है। यहाँ पर योगी की मानसिक जैविक शक्ति शिव में पूर्णतया विलीन हो जाती है। इस उच्चतर स्तर पर प्रकाश-अन्धकार, गति-विराम, ससीम-असीम, व्यावहारिक-पारमार्थिक का भेद भूर्णितः समाप्त हो जाता है। मनुष्य उस समय तक जाल में बन्धा रहता है, जब तक कि वह स्वयं और जगत् में जालन्धर को नहीं जान लेता। जब वह इस सब से परिचित हो जाता है और जालन्धर अर्थात् परमात्मा से पूर्ण तादात्म्य अनुभव करने लगता है, तब वह सांसारिक समस्त बन्धनों, दुःखों से मुक्ति पा जाता है तथा अपने आपको स्वतंत्र पाता है। उस समय वह जीवन मुक्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

18-पंचम कण्ठ चक्रं चतुरङ्गः गुलं तत्र वाम इडा चन्द्रनाडी दक्षिणे पिंगला सूर्य नाडी तन्मध्ये सुषुम्णा ध्यायेत् सैवानाहत कलाउनाहत सिद्धिर्भवति।

-सि०सि०प० पृष्ठ- 40 2/5

19- कण्ठे स्यात् पोडशदलं -----।

- गो० श० पृष्ठ - 5

20- षष्ठं तालुचक्रं तत्रामृतधारा प्रवाह धष्टिकांगमूल-रन्ध्र राजदन्तं शक्तिनीविवर दशमदारं तत्र शून्यं ध्यायेत् चित्रलयो भवति। -सि०सि०प०पृष्ठ-42 2/6

9- आठवें निर्वाण चक्र के ऊपर जो कि मोक्ष प्राप्ति का केन्द्र स्थल है में गोरक्षनाथ नवे आकाश चक्र की अनुभूति कराते हैं। यह उर्ध्वमुख सोलह दलों वाला कमल है। इसके बीच त्रिकोणाकार वाली उर्ध्व शक्ति है। उसी परम शून्य शक्ति का ध्यान करना चाहिए। यहाँ ही पूर्ण गिरिपीठ है। इसी से समस्त इच्छाओं की सिद्धि प्राप्त होती है।²⁵ योगी यथा क्रम समस्त चक्रों को भेद कर आकाश चक्र तक अपने को स्थित कर लेता है। वह अपना ध्यान इस सर्वश्रेष्ठ केन्द्र पर केन्द्रित करता है। इसी आकाश चक्र के ध्यान धारण से योगी की सांसारिक भय की निवृत्ति हो जाती है। समस्त सांसारिक पदार्थ योगी के वशीभूत हो जाते हैं, तथा योगी पूर्णतः जीवन मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

निष्कर्ष : महायोगियों द्वारा इडा और पिंगला नाड़ी के बीच में स्थित सुषुम्णा नाड़ी के विभिन्न विश्राम स्थलों पर नौ चक्रों को निरूपित किया गया है। इन्हीं गूढ़ एवं रहस्यात्मक विचारों में विचरण करता हुआ एक योगी आत्म ज्ञान का सच्चा जिज्ञासु अपनी साधना एवं प्रयास से आध्यात्मिक

- 21- सि०सि० प० पृष्ठ - 42
- 22- सतमं भूचक्रं मध्यममं गुष्ठमात्रं ज्ञाननेत्रं दीपशिखाकारं ध्यायेद् वाचां सिद्धिर्भवाति।
-सि०सि०प० पृष्ठ - 43 2/7
- 23- -----भू मध्ये द्विदल -----।
- गो० श० पृष्ठ - 5
- 24- अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं निर्वाण-चक्रं सूचिकाग्रभेद्यं धूम शिखाकारं ध्यायेत् तत्र जालन्धर पीठं मोक्ष प्रदं भवाति।
-सि०सि०प० पृष्ठ - 45 2/8
- 25- नवमभाकाश चक्रं षोडशदल कमलभूर्ध्वमुखं तन्मध्ये कर्णिकायां त्रिकुटाकारं तदूर्ध्वशक्तिं तापरम शून्यां ध्यायेत् तत्रैव पूर्णांगिर पीठं सर्वेच्छा सिद्धि भवाति।
- सि०सि० प० पृष्ठ - 47 2/9

अनुभव के उच्चतम् स्तर पर पहुँच जाता है। जहाँ वह शिव और शक्ति के एकत्व का आनन्दोपभोग करता है।

सुषुम्णा नाड़ी सबसे सूक्ष्म एवं संवेदनशील होती है। जो कि रीड़ संस्थान से प्रारम्भ होकर मूलाधार को सहस्रार से जोड़ती है। यह नाड़ी शरीर के अन्तर्गत ही विकसित होती है, जो कि भौतिक व्यष्टि शरीर का एक अंग है। इस को जैविक एवं मानसिक शक्ति के निरन्तर प्रवाह का सबसे उचित मार्ग समझा जाता है। स्थल दृष्टिकोण से देखने पर यह एक सीधी नाड़ी प्रतीत होती है किन्तु गहन दृष्टि से विचार करने पर इस नाड़ी में कुछ विभाग और कई केन्द्रों पर चक्र लक्षित होते हैं। इन्हीं चक्रों की जानकारी एक सिद्ध योगी के लिए परमावश्यक है। इनकी जानकारी से वींचित योगी पूर्ण योगी नहीं होगा। मनुष्य के आन्तरिक जीवन में भी ये चक्र तीव्रता से प्रभाव डालते हैं। कभी-कभी ये चक्र मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों में भी क्रान्ति उत्पन्न कर देते हैं।

यह चक्र कभी-कभी आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में बाधक बन जाते हैं, तो कभी ये साधक भी बन जाते हैं। एक सिद्ध योगी को उन चक्रों और उनके विशिष्ट लक्षणों से परिचित होना पड़ता है। क्योंकि इन चक्रों द्वारा उत्पन्न समस्त बाधाओं को पार करके ही मनुष्य तत्त्वज्ञान के उच्चतम स्तरों पर पहुँचने में सफल हो सकता है। यही चक्र तत्त्वज्ञान के उच्चतम् स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब शक्ति की मानसिक एवं जैविक शक्ति इन नव चक्रों के क्षेत्र में विचरण करती है तब वह वस्तुओं को भौतिक या ऐन्द्रियिक अथवा

अपनी वासना या कामना के दृष्टिकोण से देखते हैं। जिस समय कुण्डलिनी शक्ति निम्न चक्रों से उच्चाति उच्च चक्रों की ओर बढ़ती है, मनुष्य का दृष्टिकोण उतना ही शुद्ध एवं आलोकित होता जाता है और अगर वह निम्न चक्रों में ही उलझ कर रह जाती है, तब उसका दृष्टिकोण अत्यधिक गिर जायेगा तथा वासनादि कुकर्मों में ही फँसकर रह जायेगा। यदि योगी दिव्य एवं आध्यात्मिक स्वरूप का महत्व समझने लगता है, तब वह शिव शक्ति के पारमार्थिक स्वरूप से एकाकार होने के लिए उच्चतम चक्र तक पहुँचने में प्रायः सफल हो जाता है। योगी जिस समय समस्त चक्रों का भेदन कर चुका होता है, तब वह सुषुम्णा मार्ग उसके लिए सरल हो जाता है, और योगी सफलता पूर्वक साधारण स्तर से उठकर "समाधिस्तर" अर्थात् तत्त्व ज्ञान एवं समस्त बन्धनों से तथा सीमाओं से ऊपर उठकर मोक्ष प्राप्ति के स्तर तक पहुँचने में सफल हो जाता है।

वस्तुतः एक योगी जब साधारण स्तर से ऊपर उठना चाहता है, तब वह सुषुम्णा मार्ग में विशेष स्तरों एवं केन्द्रों पर कई सूक्ष्म चक्र प्राप्त करता है, जहाँ उस योगी को विशिष्ट योग सिद्धि हेतु विशेष प्रकार की सिद्धि साधना एवं ध्यान करना पड़ता है तथा उच्च से उच्च स्तर तक पहुँचने के लिए उन्हें ॥चक्रों॥ को भेदना पड़ता है।

26- पिण्डे नवचक्राणि। सि०सि०प० पृष्ठ- 33 2/1

27- षट् चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योम पंचकम्।

स्वदेहे ये न जानान्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः।।

-गो०श० पृष्ठ - 4

28- गो० ना० उ० यु० पृष्ठ - 121

योगी गुरु गोरक्षनाथ ने सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में ऐसे ही पूर्व वर्णित नौ चक्रों का उल्लेख किया है।²⁶ जबकि गोरक्ष शतक पुस्तक में उनके ही द्वारा छः चक्रों का उल्लेख किया गया है²⁷ इससे स्पष्ट हो जाता है कि योग शास्त्रों में चक्रों की संख्या के विषय में कोई दृढधर्मिता नहीं है और नहीं उनकी संख्या के विषय में मत समता है।

वस्तुतः चक्रों की संख्या कभी छः, कभी सात, कहीं आठ और कहीं नौ गिनायी गयी है। प्रायः चक्रों की संख्या पर कोई विशेष बल नहीं दिया गया है क्योंकि ऐसे गोप्य एवं सूक्ष्म विषयों पर योगियों में मत विविधता हो सकती है। अतः गोरक्षनाथ जी ने भी एक संख्या पर विशेष बल नहीं दिया है।

डा० रांगेय रायव ने गोपी नाथ कविराज द्वारा हस्तलिखित पुस्तक से चक्रों का क्रम इस प्रकार वर्णित किया है।²⁸

पूर्व वर्णित चक्र तालिका में चक्रों की बहुलता अवश्य है किन्तु तथ्य वहीं है।

चक्रों की बहुतायत से एक योगी के लिए भी किसी कठिनाई का आभास नहीं हो सकता क्योंकि वह तो अपने अन्तर्दर्शन में उनके दर्शन कर ही लेगा यदि वह सच्ची साधना ध्यान, धारणा में लगा है। वह निम्न मार्ग से उच्च मार्ग की ओर प्रवृत्त होने पर क्रमशः समस्त चक्रों को पार कर सर्वोच्च स्तर पर पहुँच कर शिव से तादात्म्य स्थापित कर लेगा।

वस्तुतः गोरक्षनाथ द्वारा ही अलग-2 स्थानों पर चक्रों की गणना अन्यान्य वर्णित करना एक विस्मयस्पद तो है। क्योंकि गोरक्ष शतक में सहस्रार अतिरिक्त, आधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत विशुद्ध, आज्ञा चक्रों का वर्णन मिलता है²⁹ जबकि सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में इन षट् चक्रों के अतिरिक्त, तालु, निर्वाण और आकाश चक्रों को मिलाकर नौचक्रों का उल्लेख मिलता है। सिद्धान्त पद्धति में आज्ञा चक्र के स्थान पर तालु चक्र को तथा आज्ञा चक्र को सातवें चक्र के रूप में गिनाया गया है। गोरक्ष शतक में अनाहत चक्र को बारह दलों से युक्त तथा सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में आठ दलों से युक्त वर्णित करते हैं।

२९- चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षट्दलम्।

नाभी दशदलं पद्मं सूर्य संख्या दलं ह्रिद ॥

कण्ठे स्यात् षोडशदलं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा।

सहस्रदलभाष्यात् बहुमरन्ध्रे महापथे ॥

-गो० श० पृष्ठ - 5

इस तरह के छोटे- छोटे मतभेदों के बाद भी चक्रों का एक योगी के जीवन में विशेष महत्व है।

डा० रागेय राघव ने भी चक्र गणना पर अन्यत्र प्रकाश डाला है। आपने पूर्व वर्णित चक्र ज्ञान से तुलना के लिए कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने के पहले और बाद की अवस्था को चक्र तालिका में प्रस्तुत किया है जो निम्नांकित अग्रकिंत तालिका के रूप में वर्णित है।³⁰

गोरक्षनाथ की हिन्दी रचनाओं में भी चक्र ज्ञान का वर्णन प्राप्त होता है। आपकी एक स्वतन्त्र रचना में आठ चक्रों का उल्लेख मिलता है। जिनको घटस्थ बतलाया गया है।³¹ इस रचना का चन्द्र वर्णन पूर्व वर्णित नव चक्रों एवं दोनों ही तालिकाओं से भिन्न भी है। इस चक्र रचना के आधार पर अष्ट चक्र क्रम इस प्रकार बनता है -

संख्या	चक्र नाम	स्थान	कमल	दलश्वास सं०	विशेष
1	आधार चक्र	गुदा	4	600	-
2	दृष्टि चक्र	लिंग	6	600	-
3	मणिपूर चक्र	नाभि	10	600	-
4	अनाहत चक्र	हृदय	12	600	-
5	विशुद्ध चक्र	कण्ठ	16	1000	अजपा गायत्री
पारब्रह्म का ज्ञान					
6	अग्नि चक्र	नेत्र	16	1000	वही
7	ज्ञान चक्र	ब्रह्माण्ड	1000	1000	वही
8	सूक्ष्म चक्र	विणान	2100	-	-

वस्तुतः मानव शरीर में शिव क्षेत्र सहस्रार और शक्ति क्षेत्र मूलाधार बतलाया गया है। इन दोनों को परस्पर कुण्डलिनी शक्ति जोड़ती है तथा महा माया कुण्डलिनी की यात्रा जिस मार्ग से प्रारम्भ होती है, वह सुषुम्णा-पथ अथवा

31- ऊँ गोरभदेव अष्ट चक्र बोलिये घट भीतर। ये कौण कौण बोलिये। अवधू प्रथमें आधार चक्र बोलिये गुदा अस्थाने, चत्र दल कंवल, घटसे सांस। तिस चक्र उपरि द्रिष्ट चक्र, लिंग अस्थाने घट दल कंवल घटसे सांस। तिस चक्र अरिमणिपूर चक्र, नाभिअसीनें, दस

ब्रह्म मार्ग है। इस यात्रा के मध्य विभिन्न चक्र कुण्डलिनी के विश्राम स्थल के रूप में उपस्थित होते हैं। योग ग्रन्थों में इन चक्रों की संख्या के विषय में किसी प्रकार की कोई ठोस धारणा नहीं है। कुण्डलिनी एक के बाद एक, क्रमशः इन चक्रों में पहुँचती है तथा चक्रों के उद्घाटित होने के साथ-साथ साधक योगी को इन चक्रों के अधिपति देवताओं के भी क्रमशः दर्शन होते हैं। तदनन्तर कुण्डलिनी शक्ति के सहस्रार में पहुँचने पर साधक योगी को स्वयं की परमात्म शिव के साथ एकत्व की अनुभूति होने लगती है तथा दोनों का भेद विलीन हो जाता है।

सोलह आधार :

नव चक्रों के विषय में बतलाने के पश्चात् गुरु गोरक्षनाथ जी सोलह आधारों की स्थिति के विषय में संकेत देते हैं।

1- प्रथम³² आधार "षादांगुष्ठाधार" है। उसके अग्र भाग में तेजोमय स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान से दृष्टि स्थिर होती है। यह प्रत्येक पैर अंगूठे में जैविक कार्यों का केन्द्र है। इस पर ध्यान करने से नेत्र और पैर के अंगूठे तक प्रवाहित तेज पर दृष्टि एकाग्र होती है। यह भी धारणा व्यक्त की जाती है कि पैर के अंगूठे के तन्तुओं और नेत्र-स्नायुओं में एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

दल कवच, षट्सै सांस। तिस चक्र उपरि अनहद चक्र, हिरदा संधाने दादस कवच षट्सै सांस। तिस चक्र उपरि विसुद्ध चक्र, कंठ संधाने मोहस कवच, एक सहसर सांस। अजपा ज्ञायत्री पारब्रह्म का ध्यान। तिस चक्र उपरि अग्नी चक्र, नेत्र संधाने षोडस

2- दूसरा³³ "मूलाधार" माना गया है। इसके सीवन को बायें पैर की एड़ी से दबाकर बैठना चाहिए। इससे शरीर में तेज की वृद्धि होती है। शरीर में स्थित अग्नि प्रदीप्त होती है। यह मूलाधार कुण्डलिनी शक्ति, प्रारम्भिक आधार एवं सुषुम्णा नाड़ी का उद्गम स्थल है। इसी स्थल पर प्रथम मानसिक और जैविक शक्ति को एकाग्र कर सुषुम्णा मार्ग से उपर चढ़ाने-ऊर्ध्वमुखी करने का अभ्यास किया जाता है, जिससे अग्नि प्रदीप्त होती है तथा शक्ति नीचे की ओर प्रवाहित न होकर ऊर्ध्वमुखी हो उठती है। तदनन्तर उसमें परमेश्वर शिव से मिलने की अभिलाषा तीव्र हो उठती है।

3- तीसरा³⁴ गुदास्थान में "गुदाधार" है। इस स्थान पर गुदा का संकोच-विकास-आकुंचन और संकोचन करना चाहिए। इस क्रिया से अपान वायु स्थिर होती है। इस आधार के द्वारा अपान वायु शरीर के मल और व्यर्थ सामग्री, गन्दगी को शरीर से बाहर निकालकर उदर को निर्मल एवं स्वच्छ करती है तथा प्राण वायु से ऐक्य स्थापित कर जैविक और मानसिक शक्ति को विकसित करती है। अतः योगी को अपान क्रियाओं के भली प्रकार संचालन हेतु इस गुदा आधार के विकास और संकोचन का अभ्यास करना चाहिए। इसके अभ्यास से उदर सम्बन्धी समस्त रोग प्रायः कर दूर हो जाते हैं।

कंवल एक सहस्र सांस अजपा गायत्री पारब्रह्म ध्यान। तिस चक्र उपरि गिनान चक्र ब्रह्माण्ड संधाने एक सहस्र दल कंवल, एक सहस्र सांस। अजपा गायत्री पार ब्रह्म ध्यान। तिस चक्र उपरि सूक्ष्म चक्र, विग्यान संधाने एक बीस सहस्र दल कंवल। ए अष्ट कंवल का जाणौ भेव। आपे करता आर्ये देव। -गो० वा० पृष्ठ- 258

4- चतुर्थ³⁵ मेदु लिंग आधार है। यहाँ लिंग का संकोचन कर वीर्य को ऊर्ध्वगामी करते हुए योगी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीन ग्रन्थियों का भेदन कर भ्रमर गुफा में वीर्य का स्तम्भन कर विश्राम करता है। यही वज्रोली क्रिया है। वस्तुतः जैविक कार्यों का यह एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। कामोत्तेजना के समय व सम्भोग के समय भौतिक शरीर का सर्वाधिक मूल्यवान तत्त्वबिन्दु या वीर्य इसी मार्ग द्वारा निष्क्रमित होता है। यह प्राण शक्ति मुक्त होने के कारण प्राण-बल व पौरुष का स्रोत है।

5- गुरु गोरक्षनाथ जी कथित पाचवां³⁶ "उड्डियान आधार" है। इस आधार के बन्ध-नियन्त्रण से मूल मूत्र का संकोचन अल्पता होता है। यह लिंग-मूल तथा नाभि-मूल के मध्य स्थित है। उड्डियान आधार का नियन्त्रण करने से योगी अपनी अन्तरेन्द्रियों और मूत्रेन्द्रिय पर नियन्त्रण कर सकता है। इनके कष्टों का उपचार कर सकता है।

6- छठा³⁷ "नाभ्याधार" कहलाता है। इसमें एकाग्रचित से ऊर्कार के उच्चारण से नादलाभ होता है। इस आधार की नाभि-मूल में स्थिति मानी गयी है। पूर्व वर्णित नाभिचक्र या माणीपूर चक्र का भी यही स्थान है। यह बीजांकुर के समान सूक्ष्म एवं जैविक कार्यों का एक अत्यन्त प्रमुख एवं महत्वपूर्ण केन्द्र है।

32- प्रथमं पदाङ्गुष्ठाधारं तत्रागुतस्तेजोभयं ध्यायते दृष्टिः स्थिरा भवति। - सि०स०प० पृष्ठ- 50 2/10

33- द्वितीयं मूलाधारसूत्रं वामपार्श्विना निःपीडयितव्यम्। तत्राग्निदीपनं भवति। - वही - पृष्ठ - 51 2/11

34- तृतीयं गुदाधारं विकाससंकोचनेन निराकुपयेत्। अपान वायुः स्थिरौ भवति ।

वही पृष्ठ - 5 2/12

अपने चरम सार रूप में³⁸ नाद, अक्षर या ब्रह्म अर्थात् अपरिवर्तनीय पारमार्थिक परम चैतन्य है। इसे ही शब्द-ब्रह्म कहा जाता है, जो कि मूलाधार में अत्यन्त ही सूक्ष्म नाद रूप में अभिव्यक्त होता है, किन्तु यहां शक्ति से अभिन्न तथा बिन्दु या बीज से तादात्म्य को प्राप्त हो जाता है। यह मूलाधार में नाद-शक्ति से तदाकार रहता है। स्वाधिष्ठान में यह बिन्दु या बीज से तद्रूप होता है और मणिपूर चक्र या नाभि-आधार में सूक्ष्म-क्रीमक नाद के रूप में प्रकट होता है। योगाभ्यासी ही इसे अपनी सूक्ष्म योग दृष्टि से देख सकते हैं। इसका निरन्तर अभ्यास कान के छिद्रों को अंगुलियों से बन्द कर क्रमशः ऊँकार के उच्चारण से किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप मनस् नाद में विलीन हो जाता है।

7- सातवीं³⁹ "हृदय आधार" है। इसमें प्राण वायु के निरोध ॥संयमन॥ से कमल का विकास होता है। प्राणवायु का स्थान हृदय है तथा अनाहत चक्र का भी यही स्थान है। हृदय आधार में प्राणशक्ति को संयमित करने से अनाहत चक्र जो अधोमुख अष्टदल कमल ॥सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार द्वादश कमल॥ ऊर्ध्वमुख होकर खिल जाता है। यह प्राणवायु तथा अपान वायु के मिलन का केन्द्र है। यदि समस्त ध्वनियों से ध्यान को हटाकर इस हृदय आधार पर ध्यान केन्द्रित किया जाय, तो अनाहत नाद बहुत स्पष्ट सुनाई दे सकता है। कुम्भक प्राणायाम

35- चतुर्थ मेढ्राधारं लिंगसंकोचनेन ब्रह्मग्रन्थित्रभं भित्तवा भ्रमरगुहाया विश्रम्य तत उदर्वमुखे विन्दुस्तम्भनं भवति। एषा वज्रोली प्रसिद्धा।

कीविधि से इस आधार को प्राण में केन्द्रित करने से योगी की लोकोत्तरानन्द प्राप्ति की यात्रा विशेष गतिमय हो जाती है।

8- आठवीं⁴⁰ "कण्ठाधार" है। कण्ठ मूल को चिबुक ॥ठोड़ी॥ से निरुद्ध कर इड़ा और पिंगला-चन्द्रनाडी और सूर्यनाडी से वायु को स्थिर किया जाता है जिसके निरन्तर अभ्यास से वायु स्थिर होती है। जालन्धर बन्ध के अभ्यास द्वारा चिबुक से कण्ठ मूल का निरोध होने पर सहस्रार से द्रवित चन्द्रामृत नाभिस्थानीय अग्नि ॥सूर्य के मुख॥ में गिर कर नष्ट नहीं होता और योग साधक उस अमृत का स्वयं पान कर शरीर को जीर्ण-शीर्ण होने से बचा लेता है। योगीन्द्र स्वात्माराम का कथन है⁴¹ कि कण्ठ को ॥गले के विवर को॥ संकुचित ॥ सिकोड़॥ कर साधक को हृदय देश में ॥वक्ष के समीप चार अंगूली की दूरी पर॥ ठोड़ी को दृढ़ता पूर्वक स्थित करना चाहिए। यह जरा ॥बुढ़ाया" और मृत्यु ॥के भय॥ को नष्ट कर देने वाला जालन्धर नामक बन्ध है। यह नाड़ियों के समूह और नीचे की ओर गिरने वाले कपाल कुहर के जल अमृत को बाँधता है। इस लिए यह जालन्धर बन्ध गले के रोगों को-विकारों को नष्ट करता है। जालन्धर बन्ध के अभ्यास से और गले को सिकोड़ने से न तो ॥कपाल कुहर॥ का अमृत अग्नि में गिरता और न वायु ॥प्राण॥ ही दूषित होती है। ॥कण्ठ का संकोचन करने से इड़ा और पंगला नाड़ियों का स्तम्भना हो जाता है, प्राण-सुषुम्णा से प्रवाहित होते

36- पंचममोड्याणाधारयोर्बन्धनान्मलमूल संकोचनं भवति।

हुए ऊर्ध्वमुख होता है। इसे सोलहों आधारों का बन्धन कर्ता मध्य चक्र-कण्ठचक्र, विशुद्ध चक्र जानना चाहिए। इडा पिंगला को कण्ठ-संकोचन द्वारा दृढ़ता से अवरुद्ध करना चाहिए।

9- नौवीं⁴² "घण्टिका" आधार है। घण्टिका-आधार के मूल भाग में जिह्वा के अग्रभाग को लगाना चाहिये। वहाँ अमृत स्राव होता है। घण्टिका आधार का स्थान जिह्वा के मूल में स्थित है। इसके अन्दर एक सूक्ष्म मार्ग है, जिसके द्वारा सहस्रार में चन्द्र-मण्डल में अमृत कला मन्थर गति से प्रवाहित होती है। साधारणतः यह दृष्टि गोचर नहीं होती है। योगीगण इसका सदैव रसास्वादन करते रहते हैं।

10- दसवीं⁴³ "तालुद्वारा" है जो जिह्वा के और भी अधिक गहरे क्षेत्र घण्टिका {घोंटी} से ऊपर है। तालु के भीतर छिद्र-मार्ग से जीभ को चालन-दोहन क्रिया से लम्बी कर उस छिद्र में उलट कर प्रविष्ट करना चाहिए। तालु द्वार को तालु चक्र, दसवींद्वार, शैश्वी विवर अथवा चक्र एवं सहस्रार से जुड़ा हुआ है। यहाँ पर योगियों के लिए स्वेचरी मुद्रा इस समाधि दशा की प्राप्ति में अत्यन्त सहायक बतलायी गयी है। इस मुद्रा के अभ्यास हेतु जिह्वा को विधिपूर्वक कोमल बनाकर बाहर खींचकर लम्बा करते हैं, तत्पश्चात् जिह्वा के अग्रभाग को जिह्वा के कोमल

37- षष्ठे नाभ्याधार ओंकारभेदचित्रेनोच्चारिते नाद लया भवति। वही पृष्ठ - 55 2/15

38- अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते।
मूलाधारगता शक्तिः स्वाधारा बिन्दुरूपिणी।
तस्यां उत्पद्यते नादः सूक्ष्मबीजा दिवाङ्कुरः।
तां पश्यन्तीं विदुर्विश्वं यथा पश्यन्ति योगिनः।
-वही पृष्ठ-56 ॥ योगेशिखोपनिषद् से उद्धृत ॥

मूल लघुछिद्र में डालकर धीरे से अन्तर्तम छिद्र में प्रवेश कराया जाता है। योगी साधक इस क्रिया के निरन्तर अभ्यास द्वारा समस्त बाह्य चंचलता एवं चेतना रहित काष्ठ के समान हो जाता है। प्रायः कर इसे जड़ समाधि कहा जाता है। इस संज्ञा शून्य स्थिति में भी चेतना सहस्रार से प्रवाहित अमृतपान से मुग्ध रहती है।

11- ग्वारहवीं⁴⁴ "जिह्वाधार" है। जिह्वा मूल में जिह्वाग्र को लगाना चाहिये। यदि साधक इस क्रिया का निरन्तर विधिपूर्वक अभ्यास करें तो समस्त रोगों की निवृत्ति हो जाती है।

12- बारहवीं⁴⁵ "भ्रूमध्याधार" है। यह दोनों भृकुटियों के मिलन के स्थान पर है। यहाँ साधक योगी को स्वरूख-निर्मल एवं शीतल चन्द्र मण्डल की किरणों का ध्यान करना चाहिए, जिसके सतत् विधि पूर्वक ध्यानाकर्षण से साधक का सम्पूर्ण शरीर स्वच्छ, शान्त, स्थिर व सौम्यता को प्राप्त हो जाता है तथा इस आधार में दृष्टि स्थिरता से वह परम दिव्य ज्योति के दर्शन करता है।

13- तेहरवीं⁴⁶ "नासिकाधार" है, जो कि नासिका में होता है। साधक नासिका के अग्रभाग पर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो उसका मन समस्त चंचलताओं का त्याग कर स्वयमेव में ही स्थिर हो जाता है। इसके अभ्यास द्वारा मन की व्यग्रता समाप्त हो जाती है और वह गहनतम समाधि की ओर अग्रसर हो जाता है।

तस्पां उत्पद्यते नादः सूक्ष्म बीजा दिवाङ्कुरः।

तां पश्यन्तीं विदुर्विश्वं येषां पश्यन्ति योगिनः।

- वही पृष्ठ-56 ॥ योग शिखोपनिषद् से उद्धृत ॥

14- चौदहवीं⁴⁷ "कपाटाधार" है। इस आधार पर छः माह तक दृष्टिस्थिर करने से साधक को परमात्म ज्योति पुंज की प्राप्ति होती है। वह सौम्य अन्तर्ज्योति के दर्शन कर लेता है।

15- पन्द्रहवीं⁴⁸ "ललाटाधार" है। इसमें परमात्म ज्योति पुंज को लक्ष्य बनाकर उसका ध्यान करना चाहिए, जिससे साधक मानसिक एवं जैविक शक्ति में असीम वृद्धि को प्राप्त होता है, जिसमें शरीर दिव्यता तथा तेजस्विता को प्राप्त हो जाता है।

16- सोलहवीं⁴⁹ अर्थात् अन्तिम आधार "ब्रह्मरन्ध्र" है। यह आकाश चक्र का स्थान है। इसमें साधक योगी को श्री गुरु के चरण-कमलों का ध्यान करना चाहिए। इससे सच्चिदानन्द स्वरूप श्री गुरु का ध्यान करने से साधक आकाश की तरह पूर्ण व्यापक एवं स्वच्छन्द हो जाता है। इस अवस्था में योगी साधक को गुरु के प्रसाद से शाश्वत, सनातन, परमात्म ज्योति, कैवल्य पद की प्राप्ति होती है। वह सक्षात् शिव स्वरूप हो जाता है।

तीन लक्ष्य :

लक्ष्य से महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का तात्पर्य उन विषयों से है, जिन पर मानसिक-जैविक शक्तियों को उच्चतम आध्यात्मिक स्तर पर उठाने एवं परमात्म सत्ता के दर्शन करने हेतु अस्थायी रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाता है। लक्ष्य अर्थात् विशेष ध्यान केन्द्रित करना। समाधि धारणा के बुने हुए पदार्थ की स्थिति के अनुसार भीतरी, बाहरी और मध्य तीन तरह के लक्ष्य निरूपित किये गये हैं।

1- अन्तर्लक्ष्य :

सुषुम्णा नाडी में कुण्डलिनी शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करना अन्तर्लक्ष्य साधना है। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ आध्यात्म-जिज्ञासु योगी साधको के लिए शरीर के गहन एवं आध्यात्मिक अंगों पर ध्यान केन्द्रित करने के अध्यासार्थ कुण्डलिनी शक्ति, गोल्लाट-मण्डप, भ्रमर गुहा, धुम-धुम कार नाद, नेत्रों के बीच निल ज्योति पर ध्यान केन्द्रित करने की राय देते हैं। उनका कथन है⁵⁰ कि मूलकन्द से सहस्रार पर्यन्त मेरूदण्ड में श्वेत वर्ण की ब्रह्मनाडी सुषुम्णा करना चाहिए, उस सुषुम्णा में कमल तन्तु के समान करोड़ों विजालियों के समान प्रकाशमयी ऊर्ध्व गामिनी कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान से कुण्डलिनी समस्त सिद्धियों को प्रदान करती है। अथवा मस्तक के उपर का भाग गोल्लाट है। गोल्लाट के चल आकार का ध्यान करना चाहिए अथवा मेरूदण्ड के सम्मुख ग्रीवा उपर का स्थान भ्रमर गुफा कहा जाता है। इस भ्रमर गुफा में लाल रंग के भ्रमर के आकार का ध्यान करना चाहिए अथवा दोनों कानों के छिद्रों को दोनों तर्जनी अंगुलियों से यथाक्रम आच्छादित ॥निरुद्ध॥ करना चाहिए, इससे सिर के मध्य भाग में धूं, धूं कार नाद ॥शब्द॥ का श्रवण होता है अथवा नेत्रों में नीली ज्योति वाली पुतली के आकार का ध्यान करना चाहिए। यही अन्तर्लक्ष्य का निरूपण है।

39- सप्तमे हृदयाधारे प्राणं निरोधयेत् कमलविकासो भवति। - वही पृष्ठ - 56 2/16

40- अष्टमे कण्ठाधारे कण्ठभूर्लीचबुकेन निरोधयोगेदडापिगंलयो-
र्वायः स्थिरौ भवित। - वही पृष्ठ-57 2/17

प्रथमतः साधक योगी को समस्त वस्तुओं से ध्यान हटा कर, सुषम्णा मार्ग से उठती हुई महाशक्ति कुण्डलिनी के स्वप्रकाशमय, सर्वालोक मय आध्यात्मिक शरीर पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिससे यह महामाया कुण्डलिनी शक्ति स्वयं को महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी, महा सरस्वती आदि के रूप में अभिव्यक्त करके अनेक प्रकार के आध्यात्मिक और लौकिक वरदान तथा सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। मन आन्तरिक आत्मा पर केन्द्रित हो जाता है तब न केवल मन ही अपितु शरीर भी दिव्य हो जाता है तथा साधक का शिव स्वरूप में तादात्म्य स्थापित हो जाता है।

दूसरे गोलादृ केन्द्र का उल्लेख किया गया है। यह केन्द्र सहस्रार में ललाट के ठीक उपर है। इसके अन्दर एक ज्योति पुञ्ज प्रज्वलित है। समाधिस्थ योगी के समस्त विचारों एवं इच्छाओं से रहित हो गोलाट केन्द्र में प्रज्वलित ज्योति पुञ्ज पर दीर्घकाल तक ध्यान केन्द्रित करने से साधक की चेतना दिव्य प्रकाश से आलोकित हो उठती है तथा उसका व्यक्ति आध्यात्मिक ज्योति से दिव्य हो जाता है।

41- कण्ठभाकुच्य हृदये स्थाप्येच्चिबुकं दृढम्।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरा मृत्युविनाशकः॥
बध्नाति हि शिशोजालमधोगामिन भोजलभृ।
ततो जालन्धरो बन्धेः कण्ठदुःखोऽधनाशनः॥
जालन्धरेकृते बन्धे कण्ठ संकोच लक्षणे।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रकुप्यति॥
कण्ठ संकोचनेनैव दे नाड्यो स्तम्भभेद हृदय।
मध्यचक्रभिदं ज्ञेयं षोडशाधार बन्धनम्॥
ह०प्र० पृष्ठ- 3/70, 71, 72, 73

तीसरे भ्रमण गुहा का उल्लेख आता है। यह स्नायु-दण्ड या रीढ़ संस्थान के ऊपर तथा सहस्रार के पृष्ठ भाग में स्थित है। योगी साधक के इस केन्द्र पर निरन्तर ध्यान एकाग्र करने से कामोत्तेजना तथा इन्द्रियों की उत्तेजनार्थ समाप्त हो जाती है और वीर्य सुरक्षित रहता है। वह शान्त, मुक्त तथा स्थिरता को प्राप्त हो जाता है।

चौथे योगी के लिए मस्तक के भीतर एक विशेष नाद, जिसे भी घुम-घुम कर नाद कहा जाता है, पर ध्यान केन्द्रित करने की राय दी गई है। इस आन्तरिक ध्वनि को सुनने के अभ्यास हेतु योगी को अपने दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से कानों को कस कर इस प्रकार बन्द कर लेना चाहिए कि कोई भी बाह्य ध्वनि उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित न कर ले। जब उसका ध्यान एकाग्र होगा तब वह अपने मस्तिष्क के भीतर धुं धुं की ध्वनि सुनने लगेगा जो क्रमशः धीरे-धीरे ओइम की स्थिर ध्वनि का रूप धारण कर लेगी। तब साधक का मन दिव्यानन्द से भर जायेगा तथा वह अन्य किसी भी प्रकार की ध्वनि सुनना पसन्द नहीं करेगा, तथा साधक को नाद में ही परमात्मा के दर्शन सुलभ हो जायेंगे।

- 42- नवमे घण्टिकाधारे जिह्वाग्र धारयेदमृतकला स्रवीति।
-सि०सि०प० पृष्ठ - 58 2/18
- 43- दशवीं तत्त्वा धारे तत्त्वन्तर्ग में लम्बिकां-चालनदोहनाभ्यां दीर्घीकृत्वा विपरीतेन प्रवेशयेत् काण्ठी भवीति।
- वही पृष्ठ- 58 2/19
- 44- एकादशमय जिह्वाधार तत्र जिह्वाग्रं धारभेत सर्वरोगनाशो भवीति। वही पृष्ठ - 60 2/20

पांचवे महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी योगियों को नेत्रों के आन्तरिक केन्द्र नील ज्योति पर ध्यान एकाग्र करने का संकेत देते हैं। इस ज्योति पर गहन रूप से सतत् चित्त की एकाग्रता से योगी साधक की चेतना और व्यक्तित्व दिव्यता से भर जाता है।

2- बहिर्लक्ष्य :

अन्तर्लक्ष्य के पश्चात् गुरु गोरक्षनाथ जी अनेक बाह्य पदार्थों अर्थात् लक्ष्यों का उल्लेख करते हैं। उनका कथन है⁵¹ कि नासिका के अग्रभाग में दो अंगुल आगे लाल रंग के तेज का ध्यान करना चाहिए अथवा नासिका से दस अंगुल आगे तरंग युक्त श्वेत वर्ण के जल तत्व का ध्यान करना चाहिए अथवा नासाग्र से द्वादश अंगुल की दूरी पर पीले रंग के पृथ्वीतत्व का ध्यान करना चाहिए अथवा आकाश के सम्मुख दृष्टि कर आकाश का ध्यान करना चाहिए। इस तरह साधक ज्योति पुन्ज को देखता है, जिससे चित्त आकाश की तरह निर्मल और व्यापक हो जाता है अथवा ऊपर आकाश की ओर दृष्टि कर आकाश का ध्यान करने से चित्र आकाश की तरह मुक्ति प्रद हो जाता है अथवा दृष्टि को अन्तर्मुखी कर तप्त सोने की रंग वाली पृथ्वी का ध्यान करने से दृष्टि स्थिर होती है। इस तरह अनेक बहिर्लक्ष्य पर ध्यान एकाग्र करने का वर्णन किया गया।

- 45- द्वादशं भूमध्याधारं तत्र चन्द्र मण्डलं धारयेत् शीतलतां भाति। - वही पृष्ठ - 60 2/21
 46- त्रयोदशं नासाधारं तस्याग्रं लक्ष्येन्मनः स्थिरं भवेत्। - वही पृष्ठ - 51 2/22
 47- चतुर्दशं नासामूलकं कपाटाधारं तत्र दृष्टिं धारयेत् षण्मासाज्योति पुन्जं पश्यति। - वही पृष्ठ-61 2/23

बहिर्लक्ष्य से तात्पर्य साधक खुले नेत्रों से मन को बाह्य जगत् की समस्त विभिन्नताओं से रहित कर समस्त बाह्य तत्वों ॥पदार्थों॥ में मन की एकाग्र चित्तता द्वारा परमात्मा की अभिव्यक्ति का अनुभव कर सकता है। इस लक्ष्य के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, विशेष तारा, नक्षत्र, ग्रह, जलते दीपक, प्रज्वलित अग्नि, दिव्य प्रतिभा, पूज्यव्यक्ति के चित्र आदि पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है, जिसमें साधक को परमात्मा की अभिव्यक्ति ही देखने का प्रयास करना चाहिए तथा अन्तिम लक्ष्य समस्त स्वरूपों में परमात्मा का दर्शन करना ही होना चाहिए।

3- मध्यमलक्ष्य :

मध्यम लक्ष्य से महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का तात्पर्य विशेष ध्यान के किसी पदार्थ, जिसे न तो शरीर के भीतर कल्पित किया जा सकता है और न ही बाहर, न मन को जिस पर बिना किसी स्थान पर उसका संकेत पाये केन्द्रित करना होता है, अपितु किसी एक विशेष पदार्थ का विचार मन में संभत कर सम्पूर्ण ध्यान को उसी पर केन्द्रित करना होता है। पदार्थ के लिए साधक की रुचि ही निर्णायक है। उनका कथन है⁵² कि इसमें स्थान विशेष पर लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया जाता है, किसी श्वेत रंग या लाल रंग या काले रंग के पदार्थ पर अथवा अग्निशिखा के आकार वाले पदार्थ पर अथवा ज्योति अथवा विद्युत के ॥समान प्रभायुक्त॥ आकार अथवा सूर्य मण्डलाकार

48- पञ्चदशं ललाटाधारं तत्र ज्योतिःपुञ्ज लक्ष्ये त तेजस्वी भवति। - वही पृष्ठी - 6। 2/24

अथवा अर्द्ध चन्द्राकार अथवा अपने शरीर में ही यद्येष्ट अंग पर मन को एकाग्र-स्थिर कर बिना किसी स्थान विशेष की कल्पना के ही ध्यान को केंद्रित करना चाहिए। इस तरह अनेक प्रकार के मध्यम लक्ष्य पर ध्यान एकाग्र करने का वर्णन किया जाता है।

5- पांच व्योमः

गुरु गोरक्षनाथ जी पंचाकाश की स्थिति के विषय में इस प्रकार संकेत देते हैं⁵³ कि आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्वाकाश और सूर्याकाश - आकाश के पांच भेद हैं, यही व्योम पंचक कहा जाता है। शरीर के बाहर-भीतर अत्यन्त निर्मल निराकर आकाश का ध्यान करना चाहिए अथवा शरीर के बाहर-भीतर अत्यन्त अन्धकार मय पराकाश का ध्यान करना चाहिए, शरीर के भी प्रलयकाल की अग्नि के समान महाकाश का ध्यान करना चाहिए अथवा शीघ्रदाकाश तत्वाकाश का ध्यान करना चाहिए अथवा शरीर के बाहर-भीतर करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमय सूर्याकाश का ध्यान करना चाहिए। इस तरह साधक पाँचों आकाश का ध्यान कर आकाश के समान निर्मल, व्यापक, तेजोमय और दिव्य हो जाता है।

51- बहिर्लक्ष्यं कथ्यते नासाग्राद् बहिर्दृग्गुलद्वयभारक्तं तेजस्तत्त्वं लक्ष्येदथवा दशागुले क्लृप्तो लवदप्तत्वं लक्ष्येदथवा नासाग्रदवा दशागुले पतितवर्णं पार्थिवं तत्त्वं लक्ष्येदथवा काशमुखं दृष्ट्वा डवलोकयेत् किरणानाकुलितं पश्यीत सर्वं निर्मलीकरणमथवोर्ध्वं दृष्ट्यन्तरालं लक्ष्येदाकाशं सदृशचित्तं मक्षिप्रदं भवत्यथवा दृष्ट्यन्त्रस्तप्तकान्धनं सन्निभं भूमिं लक्ष्येददृष्टिः स्थिरा भवति। इत्यनेन कविध बहिर्लक्ष्यम्।

- वही पृष्ठ - 66 2/28

निष्कर्षतः यह दृढ़ धारण प्रस्तुत की जा सकती है कि प्रत्येक योग-प्रक्रिया ॥चाहे वह चक्रों के विषय में हो, आधारों के विषय में हो, लक्ष्यों के विषय में हो अथवा व्योमों के विषय में हो॥ जिनका उल्लेख महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने किया है, वे शरीर व्यवस्था का गहनतम ज्ञान प्राप्त करने तथा शरीर को स्वेच्छानुसार नियन्त्रण में लाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। अतः योगी साधक को उन्हें जानने तथा उन पर सतत ध्यान केन्द्रित करने का अभ्यास करना चाहिए तथा परमात्म तत्व प्राप्ति की ओर अग्रसर होना चाहिए।

52- अथ मध्यमं लक्ष्यं कथ्यते श्वेतवर्णं व रक्त वर्णं वा कृष्णवर्णं वाग्निं शिखाकारं वा ज्योतिरूपं वा विद्युदाकारं वा सूर्यभण्डलाकारं वा उर्ध्वचन्द्राकारं वा यथेष्टं स्थपिण्डमात्रं स्थानवर्णितं मनसा लक्षयेदित्यमेकविधं लक्ष्यम्।
-वही पृष्ठ - 66 2/29

53- अथव्योमं पंचक लक्षयेदाकाशं पराकाशं महाकाशं तत्त्वाकाशं सूर्याकाशमिति व्योमं पंचकं बाह्याभ्यन्तरेऽत्यन्तं निर्मलं निराकारभाकाशं लक्षयेदथवा बाह्याभ्यन्तरेऽत्यन्तान्धकारनिभं पराकाशम् व लो कयेदथवा अस्सन्तकालानल संकाशं महाकाशमवलो कयेदथवा बाह्याभ्यन्तरे नि जतत्वस्वरूपं तथ्वा काशमवलोकायेदथवा बाह्याभ्यन्तरे सूर्य कीर्तिनिभं सूर्याकाशमितलोकयेत् स्वयं व्योमं पंचकावलोनने व्योमं सदृशं भवति।
- वही - 67 2/30

अजपा जाप -

नाथ सम्प्रदाय की विभिन्न साधना पद्धतियों में अजपा जाप गायत्री का एक विशिष्ट स्थान है।

यह जीव ॥प्राण के रूप में॥ हकार की ध्वनि से बाहर जाता है तथा ॥अपान के रूप में॥ सकार की ध्वनि से भीतर आता है। इस प्रकार वह सदा हंस-हंस मन्त्र का जाप करता रहता है। इस क्रम में जीव एक दिन-रात में इक्कीस हजार छः सौ हंस मन्त्र का जाप करता है।⁵⁴ प्राण वायु हकार की ध्वनि से बाहर जाता और सकार की ध्वनि से भीतर आता है। श्वास-प्रश्वास की इसी गति के मध्य जीव द्वारा हंस मन्त्र का स्वतः अनवरत् जाप होता रहता है। अन्नतः गुरु की विशेष अनुकम्पा से यह "हंस" मन्त्र "सोडहं" के रूप में परिणत होता है। यही अजपा गायत्री है। इस "हंस" मन्त्र में ही सम्पूर्ण आध्यात्म तत्त्व महायोग ज्ञान अन्तर्हित है।

अजपा नाम वाली गायत्री ॥जिसके हंस-मन्त्र सोडहं-सोडहं का स्वतः जप होता रहता है॥ योगियों को मोक्ष ॥स्वरूप स्थिति॥ प्रदान करने वाली है। इस गायत्री के संकल्प मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। इस अजपा गायत्री के समान न तो कोई विद्या है, न इसके समान दूसरा जप है और इसकी समता करने वाला भूत-भविष्य का कोई ज्ञान ही नहीं है। इसके समान न कोई तीर्थ है, इसकी समता का न यज्ञ है और इसके समान न दूसरा पुण्य है न होगा, इसके सदृश कोई स्वर्गीय वस्तु भी नहीं है। इसके समान न कोई तप है, इसके समान

न कोई दूसरा ज्ञेय तत्व है, न होगा।⁵⁵ जो योग साधक, योगी अजपा जाप करता है, जिसकी चित्त वृत्ति तैलधारावत् अनवरत "ऊँ" "सोडहं" तथा परमात्मा के इष्ट नाम-मन्त्र के जप में लगी रहती है, जिसका मन ब्रह्मरन्ध्र $\{\text{शून्यपद}\}$ में रमण करता है तथा ऊर्ध्वमुखी रहता है, जिसके इन्द्रिय समूह चंचलता को छोड़कर स्वप्न $\{\text{साधक के वश में}\}$ रहते हैं, जो विनश्वर शरीर को ब्रह्मानुभूति रूपी अग्नि में परिशुद्ध कर देता है, ज्ञान अग्नि में शरीर-आहुति कर उसे निर्मल बना लेता है, उस योग सिद्ध पुरुष की चरण वन्दना साक्षात् योगेश्वर भगवान् शिव भी करते हैं। तात्पर्य यह है कि ऐसा योगी परम शिवैक्य बोध से सम्पन्न होकर शिव-पद में नित्ययुक्त हो जाता है।⁵⁵

इस प्राण-विद्या-स्वरूप हंस-मन्त्र का मूल कौन है, कहाँ से यह मन्त्र उत्पन्न हुआ है? यह बड़े रहस्य का विषय है। यद्यपि हकार और सकार ध्वनियों से आकारित हंस-मन्त्र का, इसके भिन्न-भिन्न दोनों अक्षरों के रहस्य का उद्घाटन अथवा प्रकाशन सच्चे अर्थों में योग सिद्ध गुरु के द्वारा ही होता है तथापि श्वास-प्रक्रिया के मूल रूप में तीन तत्व माने गये हैं-पूरक, रेचक और कुम्भक। सामान्य श्वास प्रक्रिया में पूरक $\{\text{श्वास अन्दर लेना}\}$ तथा रेचक $\{\text{श्वास बाहर फेंकना}\}$ कुम्भक $\{\text{श्वास रोकना}\}$ की क्षणिक स्थिति होती है। अतः सामान्य रूप से प्रत्येक श्वास प्रक्रिया में पूरक और रेचक का विशेष महत्व है। क्योंकि रेचक श्वास में वायु "हं" की ध्वनि के साथ बाहर जाती है तथा पूरक श्वास में वायु "सः" की ध्वनि के साथ अन्दर आती है, इस प्रकार स्वतः हंस मन्त्र का जाप होता रहता

है। "हं" ध्वनि का तात्पर्य है "मैं" अर्थात् जीव और "सः" ध्वनि का तात्पर्य है "वह" अर्थात् विश्वात्मा, ब्रह्म, परमात्म शिव। इस प्रकार यह एक दिव्य विधान है कि रेचक श्वास के साथ जीव स्वयं अनेक बन्धनों से मुक्त होकर ब्रह्माण्ड में विश्वात्मा §परमात्म शिव§ से तत्वात्म्य स्थापित करता है। पूरक श्वास में "वह" अर्थात् विश्वात्मा जीव के शरीर में प्रविष्ट होकर स्वयं को "अहम्" अर्थात् जीवात्मा के रूप में प्रकट करता है। अस्तु इस श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया में जब रेचक, पूरक से पूर्व आता है तब मन्त्र बनता है "हंस" लेकिन यदि इसके विपरीत रेचक के पूर्व पूरक की स्थिति का आभास किया जाय तब "सोडहं" का भाव प्रकट होगा। दोनों का भाव एक ही है - शिवैक्य ।

महन्त अवैद्यनाथ जी ने गोरक्ष-शतक के प्रारम्भ में गोरक्ष-शतक और उसकी महनीयता पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट किया है कि योगशास्त्र तथा योगपरक उपनिषदों में तथा पाशुपत ब्रह्मोपनिषद् में हंस को ब्रह्म स्वीकार किया गया है - हंस का जप ही वर्ण ब्रह्म है, इसी के द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। यही परमात्मा है और पुरुष भी यही है।⁵⁷

अस्तु हमारी स्वाभाविक श्वास-प्रक्रिया की यह एक भव्य एवं दिव्य व्यवस्था है। अतः जीवात्मा को शरीर में निरन्तर प्राण हंस-मन्त्र का अजपा जाप द्वारा सिद्ध करते हुए निवास करना चाहिए। यह अजपा गायत्री परम पद साक्षात् ब्रह्म से साक्षात्कार कराने वाली है। दिव्य आलोक को जन्म देने वाली हैं। यही घट-घट में व्यापक शाश्वत चैतन्य की अभिव्यक्ति का मूल कारण है। कुण्डलिनी

में उत्पन्न हुई यह अजपा गायत्री ही प्राण धारिणी प्राण विद्या, महा विद्या है, जो इसे जानता है वही योग वेता पुरुष है।⁵⁸

नादानुसन्धान :

नाथ-पन्थी योग-साधना में नादानुसन्धान अजपा-गायत्री के सिद्ध होने के बाद की स्वतः फलित क्रिया है। नाद का अनुसन्धान साक्षात् "ऊँ" स्वरूप शब्द ब्रह्म परमात्मा की उपासना है। नादानुसन्धान से अनाहत ध्वनि का श्रवण होता है। इस स्थिति के परे परम शिव का शून्य पद में साक्षात्कार कर जीवात्मा अमृत रस का पान करता है। चित्तको परमात्म-ज्योति का दर्शन होता है। अन्तः भावना ज्ञान के आलोक में जगमगा उठती है।

वस्तुतः साधारण जीव काल नाड़ी {इडा-पिंगला} का आतिक्रमण नहीं कर पाता। इससे उसकी चित्तवृत्तियाँ बहिर्मुखी रहती हैं। इस बहिर्मुखता के कारण जगत् के अन्तस्तल में जो सूक्ष्म नाद निरन्तर आकाश मण्डल में ध्वनित हो रहा है उसे वह सुन नहीं पाता। योग-कौशल, गुरु-कृपा, प्रबल पुरुषकार, तीव्र वैराग्य और पूर्व संस्कार आदि के प्रभेद से यह नाद अथवा अनाहत ध्वनि श्रवण गोचर होती है। अनाहत उसे इस लिए कहा जाता है कि स्थूल दृष्टि से वह बिना आहत किये ध्वनित हो रही है।⁵⁹

योगी द्वारा सोते जागते एक रात दिन में इक्कीस हजार छः सौ "हंस" "सोडहं" मन्त्रों का जाप किया जाता है। तब अनाहत नाद "सोडहं" मन्त्र की अजपा जाप

द्वारा सिद्धि से स्वतः उत्पन्न हो जाता है। अनाहत नाद के सहज उत्पन्न होने से बंकनालि, सुषुम्ना में सूर्योदय, आत्म ज्ञानोदय हो जाता है तथा रोम-रोम में तूर्य नाद का श्रवण होने लगता है, अंग-अंग में अनाहत नाद का संचार हो उठने पर सच्चिदानन्द स्वरूप की परिव्यापित का शरीर के भीतर अनुभव होने लगता है। भ्रमर गुफा, ब्रह्मरन्ध्र में, जहाँ शून्य-ही-शून्य गहनतम नीरवता है, प्रकाश छा जाता है। परम शिव का प्रबुध कुण्डालिनी महाशक्ति से सायुज्य स्थापित हो जाता है। नाभि-स्थान में रहने वाला प्राण हंस उलट कर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित हो जाता है, जीवात्मा परमात्मा में अन्तर्लय अथवा तादात्म्य में आत्म रमण करता है।⁶⁰

प्राण-मन्त्र §प्राण हंस§ की उत्पत्ति ऊँकार से ही है, इसकी अविच्छिन्न धारा अनवरत सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर सच्चिदानन्द की रमणीय, रसमयी अभिव्यक्ति करती रहती है। समस्त सृष्टि, जगत के प्राकट्य का मूल ऊँकार ही है। ऊँकार ब्रह्म ही हमारे नाभिदेश §स्वाधिष्ठान चक्र§ और हृदय अनाहत चक्र में स्वाभिव्यक्त अथवा सहज विद्यमान है। ऊँकार ही देवता §परम शिव महादेव§ हैं, ऊँकार ही गुरु है। योगसिद्धि-पिण्ड में ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के स्तर पर ब्रह्म अलख-निरन्जन का सहस्रार में साक्षात्कार ऊँकार की उपासना से ही सम्भव है। जब तक ऊँकार ब्रह्म, शब्द ब्रह्म की साधना नहीं की जाती है, तबतक सिद्धि नहीं मिल सकती है। मूल ऊँकार का अभिव्यक्त रूप नाद है, नाद ही में ब्रह्मा, नरहरि §विष्णु§ और उमापति §महादेव महेश्वर§ लीन हैं। उनकी लीलाभिव्यक्ति

का माध्यम ऊँकार स्वरूप नाद ही है।⁶¹ अतः योगी योगाभ्यास के द्वारा कुण्डलिनी, प्राण ज्योति को जगाते हुए सहस्रार में उसके प्रवेश करने पर अनाहत नाद, शब्द ब्रह्म के स्वरूप का रसास्वादन करता है। उसे ब्रह्मरन्ध्र में परमात्म ज्योति के दर्शन होते हैं। अनाहत शब्द अत्यन्त रहस्यमय है, जिसके द्वारा ब्रह्मानुभव योग साधना के अमृत फल के समान है।

इस अनाहत ध्वनि के निरन्तर अनुसन्धान द्वारा देह शुद्धि और चित्त की निर्मलता बढ़ती जाती है। मन धीरे-धीरे शान्त और अचंचल होकर इस नाद में रमता जाता है। अन्त में मन इसमें पूर्णतया युक्त होकर लय हो जाता है। यही मन का अमन होना है। इस अवस्था में नाद ध्वनि भी विलीन है, तब चित् स्वरूप आत्मा स्वरूप में अवस्थित होकर साम्यावस्था को प्राप्त होती है और बाह्य प्रकृति के स्पर्श संस्पर्श से मुक्त हो जाती है। साधना काल में जब यह नाद श्रुति गोचर होता है, तब अनन्त प्रकार से सुनाई पड़ता है। मर्दल, शंख, घंटा, वंशी, भ्रमरगुंजन, कीकीणि, वीणा आदि की ध्वनि के समान यह ध्वनित होता है, किन्तु इसकी ध्वनि के प्रकार असंख्य हैं। अन्तिम नाद को दशम नाद अथवा महानाद कहते हैं और पूर्ण अवस्था में वह भी विलीन हो जाता है।⁶²

समस्त योगों में चित्त-वृत्ति-निरोध के उपायों में ॥ नाद की चार अवस्थाएँ - आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति-होती हैं।⁶³

आरम्भ योगी वह है जो, सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए बिना बाधा के एक रस होकर योगाभ्यास में तत्पर रहता है। ब्रह्मचर्य की पूर्ण रूप से रक्षा करना ही आरम्भ दशा की पक्वावस्था है।⁶⁴

§ प्राणायाम के अभ्यास से § जब ब्रह्म-ग्रन्थि का भेदन हो जाता है, तब शरीर के भीतर हृदयाकाश से उत्पन्न आभूषण की सी विचित्र आनन्ददायिनी अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है। उस समय साधक के शरीर से दिव्य गन्ध निकलती है, वह दिव्य चक्षुयुक्त हो जाता है अर्थात् उसकी बुद्धि दिव्य हो जाती है। वह तेजस्वी और नीरोग हो जाता है, उस योगी के हृदय में योग-ज्ञान का प्रकाश भर जाता है। यह योग-साधना की दिशा में प्राणायाम, मुद्राबन्ध, चक्रभेदन और कुण्डलिनी के प्रबोधन द्वारा आरम्भावस्था कही जाती है।⁶⁵

नाद की द्वितीय दशा में कण्ठ देशस्थ विष्णु ग्रन्थि का भेदन हो जाता है। इस अवस्था में योगी शरीर में स्थित कुण्डलिनी महाशक्ति को जगाते हुए तथा षट् चक्रों के भेदन द्वारा प्राण को सुषुम्णा नाड़ी में प्रवाहित करते हुए सहस्रार में द्रवित चन्द्रामृत-अमर वास्णी का रात-दिन आस्वादन करता रहता है। योगी कुम्भक प्राणायाम की विधि से प्राण को संयमित कर सुख-दुःख, स्वाद-विस्वाद आदि द्वन्द्वों से परे होकर परमानन्द में तल्लीन हो जाता है। यह ही योगी की घटावस्था के लक्षण है।⁶⁶

इस अवस्था में प्राण वायु, अपान वायु, नाद और बिन्दु को सम्मिलित करके मध्य चक्र में प्रवेश करती

है। उस समय आसन सिद्ध योगी, योग ज्ञान सम्पन्न तथा देवता के समान हो जाता है, तब विष्णु ग्रन्थि का भेदन होता है और इस तरह अतिशून्य कण्ठदेश में स्थित विशुद्ध चक्र का भेदन हो जाता है, तब परमानन्द की प्राप्ति कराने वाली भेरी का सा शब्द सुनाई पड़ता है, जिसमें योगी पूर्ण निभग्न हो उठता है।⁶⁷

परिचयावस्था में योगी मन और पवन की साधना कर उन्मनी समाधि में लीन होकर अमनस्क-योग के अभ्यास से सच्चिदानन्द स्वरूप परमशिव अलख-निरंजन की अभिन्नता अथवा तादात्म्य लाभ करता है। रात-दिन परम देव परब्रह्म में अन्तर्भूत रहता है। उस समय वह योगी नाना रूपों को धारण करने की सामर्थ्य वाला हो जाता है।⁶⁸

इस परिचयावस्था में जब प्राण वायु विशुद्ध-चक्र का भेदन कर सम्पूर्ण सिद्धियों के केन्द्र महाशून्य अर्थात् भौहों के मध्यवर्ती आकाश में प्रवेश करती है, तब मर्दल नामक वाद्य-विशेष की सी ध्वनि सुनायी पड़ती है। इसके बाद चित्तानन्द को जीत लेने पर अमनस्क अवस्था अथवा उन्मनी-समाधि की प्राप्ति हो जाने पर योगी को सहजनानन्द की प्राप्ति हो जाती है, जिससे वह दोष, दुःख, भूख, निद्रा, बुढ़ापा और मृत्यु से छूट जाता है।⁶⁹

चतुर्थीवस्था में शरीर, मन, प्राण आदि पर विजय प्राप्त कर निष्पत्ति-योगी द्न्दों से परे होकर आत्मस्वरूप में तल्लीन रहता है। जिस तरह लोहा को अग्नि से तपाकर उसे पानी में डालकर निर्मल अथवा शुद्ध किया जाता है, ठीक उसी तरह अनेकानेक कठोर योग साधना के द्वारा

योगी अपने शरीर, नाड़ियों, प्राण को शुद्ध करता है। उन्मनी समाधि की सिद्धि के द्वारा निष्पत्ति-कैवल्य पद की अनुभूति करता है तथा प्रत्येक प्राणी में आत्म भाव रखकर समदृष्टि से सम्पन्न रहता है।⁷⁰

जब प्राण वायु रुद्रग्रन्थि का भेदन करके शर्वपीठ अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में जाती है, तब उसे निष्पत्ति-अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में वंशी और वीणा का सा शब्द सुनाई पड़ता है। योगी शरीर, मन प्राण आदि पर विजय कर दन्तों से परे होकर आत्म स्वरूप में तल्लीन रहकर परमेश्वर शिव के साक्षात्कार द्वारा कैवल्यानुभूति की प्राप्ति करता है। चित्त के एकाग्र होने पर राजयोग होता है तथा योगी सृष्टि और संहार करने की सामर्थ्य से युक्त होकर ईश्वर के समतुल्य हो जाता है।⁷¹

निष्कर्षतः नाद्योपदिष्ट साधना प्रणाली में नादानुसन्धान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। नाद शरीर में ईश्वरानुभव का मूल है। नादानुसन्धान की आरम्भावस्था में योगी शरीर की ओर दृष्टि रखकर साधना करता है, घट योगी काय सिद्धि, सिद्ध-देह की प्राप्ति में संलग्न रहता है। परिचयावस्था में वह मन और पवन की साधना कर उन्मनी समाधि में लीन हो कर परमात्म शिव से तादात्म्य लाभ करता है तथा अन्तिम निष्पत्ति अवस्था में वह मन, प्राण, शरीर आदि पर विजय प्राप्त कर, राग देशादि दन्तों से मुक्त होकर आत्म-स्वरूप में तल्लीन हो जाता है। नादानुसन्धान के द्वारा ही योगी अभ्यन्तर आत्मानुभूति में निरन्तर रमण करता रहता है। नादानुसन्धान से ही समाधि में लीन

योगियों के हृदय में आनन्दानुराग बढ़ता जाता है। प्रारम्भ में योगी अनेक महान गर्जना पूर्ण नादों को सुनता है और जैसे-जैसे अभ्यास की निरन्तरता बढ़ती जाती है वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म शब्द ध्वनि को भी अनुभव करने लगता है।

वस्तुतः अजपा गायत्री "हंस" "सोडहं" के अन्तर में महामन्त्र "ओडम्" निहित है, इस ओडम् से ही समस्त ध्वनियाँ विकसित होत हैं, तथा उसी में विलीन हो जाती हैं। मानव शरीर में यह ओडम् चरमसत्ता, शब्द-ब्रह्म परम शिव निरन्तर अपने को प्रस्तुत करते-रहते हैं जिसे नादानुसन्धान की विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा सहज ही अपने भीतर अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि नाद के अनुसन्धान की चरमावस्था को प्राप्त होने के साथ ही शरीर में आन्तरिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं। शरीर काया दोषों दुःख, निद्रा, क्षुधा, व्याधि, जरा तथा मृत्यु आदि से मुक्त हो जाता है, उन्मत्त तथा आसक्त मन स्थिरता और एकाग्रता को प्राप्त हो जाता है और आत्मा चरम आध्यात्म सत्ता परमात्म शिव में नित्य लीन हो जाता है। अतः नित्य नाद का अनुसन्धान एक योगी के लिए अपरिहार्य है।

- 54- हकारेण बहिर्गच्छति सकारेण विशेत पुनः ।
 हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥
 षटशतानित्वहो रात्रे सहस्राण्येक विशीति ।
 एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वा ॥
 - गो० श० पृष्ठ 9, श्लो-42-43
- 55- अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।
 अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
 अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः ।
 अनया सदृशं ज्ञानं न भूतो न भविष्यति ॥
 अनया सदृशं तीर्थमनया सदृशं क्रतुः ।
 अनया सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति ॥
 अनया सदृशं स्वर्गमनया सदृशं तपः ।
 अनया सदृशं वेद्यं न भूतं न भविष्यति ॥
 - गो०सि०स० पृष्ठ - 99- श्लो०-47-50
- 56- अजपा जपे सुनि मन धरे, पांचौ इंद्री निग्रह करे ।
 ब्रह्म अग्नि में होमै काया, तास महादेव बंदे पाया
 -गो० बा० पृष्ठ -8 सबदी - 18
- 57- हंसात्ममालिका वर्णब्रह्म काल प्रचोदित ।
 परमात्मा पुमान्नीति ब्रह्मसम्पत्ति कारिणी ॥
 -गो०श० पृष्ठ - 13
- 58- कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणधारिणी ।
 प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स योगवित् ॥
 -गो०श० पृष्ठ 10 श्लो 46
- 59- ना० प० पृष्ठ - 184
- 60- छ सै सहस्र इकीसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप ।

बंक नालि में ऊगैसूर, रोम-रोम धुनि बाजै तूर।
उलटै कंवल सहंसदल बास, भ्रमर गुफा महि जोतिप्रकास।

-गो०बा०पृष्ठ - 179 पद - 30

- 61- ऊंकार आछैबाबू मूल मन्त्र धारा,
ऊंकार व्यापीले सकल संसारा।
ऊंकार नाम्नी हृदै देवगुर सोई,
ऊंकार सोध बिना सिधि न होई ॥
नादै लीना ब्रह्मा नादै लीना नरहरि, नादै लीना
उमापति जोग ल्यो धरि-धरि ।
नाद ही तो आछै बाबू सब कहू निधाना,
नाद ही तै पाइये परम निरबांना ॥

-गो०बा०पृष्ठ - 143 पद-12

- 62- ना० प० पृष्ठ - 184

- 63- आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयोऽपि च।
निष्पातः सर्वयोगेषु स्यादवस्थाचतुष्टयम्॥

-ह०प्र०पृष्ठ - 141

- 64- आरम्भ जोगी कथीला एकसार।

षिणा षिणा जोगी करै सरीर विचार।

तलबल ब्यंद धरिबा एक तोल।

तब जाणिबा जोगी आरंभ का बोल॥

- गो० बा० पृष्ठ - 64 सबदी-136

- 65- ब्रह्मग्रन्थिर्मविद्भिन्ना ह्यानन्दः शून्य सम्भवः।

विचित्रः क्वणिको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः॥

दिव्यगन्धो दिव्य चक्षुस्तेजस्वी स्याद रोगवान्।

सम्पूर्ण हृदयः शून्य आरम्भो योगवान्भवेत्॥

-गो०सि०स० पृष्ठ-86

- 66- घट ही रहिबा मन न जाई दूर।
 अह्निस पीवै जोगी बारूणी सूर।
 स्वाद बिस्वाद बाई कालछीन ।
 तब जोनिबा जोगी घट कालछीन ॥
 - गो० बा० पृष्ठ -65 सबदी - 137
- 67- दितीययां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः।
 दृढस्नो भवेद्योगी ज्ञानी देवसमस्तथा ॥
 विष्णुग्रन्थिर्यदा भिन्ना परमानन्दसूचकः।
 अतिशून्यविभेदश्च भेरीशब्दस्तथा भवेत् ॥
 -गो०सि०स०पृष्ठ-87
- 68- परचय जोगी उनमन भेला।
 अह्निसि इच्छया करै देवता स्युं मेला।
 भिन भिन जोगी नानां रूप।
 तब जानिबा जोगी परचय सरूप ॥
 -गो०बा० सबदी - 138
- 69- तृतीया ततोभित्वा विज्ञेयो मर्दलध्वनिः।
 महाशून्यं तदायाति सर्वासीद्धि समाश्रयम् ॥
 चित्तानन्दं ततो जित्वा सहजानन्दसम्भवः।
 दोष-दुःख-क्षुधा-निद्रा-जरा-मृत्यु-विर्वर्जितः ॥
 -गो०सि०स० पृष्ठ 87
- 70- निसर्पती जोगी जानिब कैसा।
 अगनी पांणी लौहामानै जैसा।
 राजा परजा सीम करि देष।
 तब जानिबा जोगी निसर्पति का भेष ॥

- 71- रुद्रग्रन्थिं यदा भित्त्वा शर्व पीठगतोऽर्चनलः ।
निष्पत्तौ वैणवः शब्दः क्वणद्वीणाक्वणो भवेत् ॥
एकीभूतं तदा चित्तं राजयोगाभिधानकम् ।
सृष्टिसंहार कर्ताऽसौ योगीश्वरसमो भवेत् ॥
ह0प्र0-4/76-77 पृष्ठ 144

- अष्टम् अध्याय -

- गोरक्ष दर्शन एवं शैव दर्शन -

- 1- शिव-गोरक्ष
- 2- गोरक्ष मत एवं शैव मत की प्राचीनता
- 3- विभिन्न शैव सम्प्रदाय
- 4- शैव सम्प्रदायों का संगठन
- 5- नाथ सम्प्रदाय में विभिन्न शैव-शाक्तादि मत
- 6- गोरक्ष दर्शन एवं शैव दर्शन

शिव-गोरक्ष :

परवर्ती काल में नाथ सम्प्रदाय में गोरक्षनाथ को शिव के अवतार के रूप में स्वीकार कर लिया गया और यह भी मान लिया गया कि गोरक्षनाथ ने चार कालों में चार भिन्न-2 क्षेत्रों में अवतार लिया।¹

योगेश्वर श्री कृष्ण ने गोरक्षनाथ की बन्दना में कहा है² कि आप विश्व के प्रकाशक हैं, विश्वरूप हैं, विश्व द्वारा बन्ध सदाशिव है, विश्वनामधारी हैं, विश्वनाथ हैं आपको नमस्कार है।

अपि च³ निर्मल स्फटिक के समान उज्ज्वल जिनका गौर वर्ण है, जो जटाजूट धारी है, जो तीन नेत्र वाले, माया रहित, निराकार, निर्विकल्प {समाधि में स्थित} और विशुद्ध {आत्म स्वरूप} तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिदेव स्वरूप और तीनों लोकों के स्वामी है, विश्व जिनका रूप है, जिनका सत्स्वरूप है और श्रीनाथ ही जिनके इष्टदेव हैं, उन श्री गोरक्ष को नमस्कार है। गोरक्षनाथ विद्या पति, मन्त्रों के अधिकृत अधिकारी, ध्यान में एक मात्र ध्येय निरंजन, नित्यनाथ, प्राणी मात्र के स्वामी, नित्यानन्द में निमग्न रहने वाले, मही पति, जगदीश्वर, सबके आराध्यदेव पूर्णनाथ, तेजः स्वरूप, ज्योतिः स्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप से सृष्टि-स्थिति-संहार के कर्ता महान् गुरु भक्तों की आत्मा में रमण करने वाले राम भद्र स्वरूप राम नाथ और जनार्दन रूप है।

शैव मत एवं गोरक्ष मत की प्राचीनता :

गोरक्ष मत एवं शैव मत पर्याप्त प्राचीन है, इसे प्रमाणित करने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती। डा० यदुवंशी का मत है⁴ "पुराणों के समय लगभग छठी ई०श० तक शैव मत पूर्ण विकसित और संगठित हो चुका था तथा वेदोत्तर ब्राह्मण धर्म के दो प्रमुख मतों में से एक बन गया था।" केवल उसके दार्शनिक पक्ष का विकास होता रहा और वह पुराणोत्तर काल में ही जा कर अपनी पूर्ण विकसित अवस्था को पहुँचा। "पुराणोत्तर काल में अगर कोई नई बात हुई तो वह थी - शैव मत के अन्दर ही विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति।"

विभिन्न शैव-सम्प्रदाय :

शैव सम्प्रदाय के अधिक लोक प्रिय तथा व्यापक हो जाने पर इसमें चार अन्य सम्प्रदाय भी हो गये - शैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक। उत्तर का सम्प्रदाय काश्मीर शैव मत तथा दक्षिण का वीर शैव मत के नाम से प्रसिद्ध हुआ इन समस्त सम्प्रदायों के इष्ट देव भगवान शंकर थे।⁵

- 2- विश्वतेजो विश्वरूपं विश्वकथं सदाशिवः।
विश्वनाथ विश्वनाथः श्री गोरक्ष नमोऽस्तु ते॥
-यो०वा०सि०द०वि०पृष्ठ- 13
॥कल्पदुर्मतन्त्र - गोरक्षस्त्रोत्रराज से उद्धृत॥
- 3- शुद्ध स्फटिकसंकाश जटाजूट त्रिलोचनम्।
निरञ्जनं निराकारं निर्विकल्पं निरामयम्॥
त्रिमूर्तिं च त्रिलोकीशं विधिधिष्णु महेश्वरम्।
विश्वरूपं सदाकारं गोरक्ष नाथं दैवतम्॥
विद्यापतिर्मन्त्रनाथो निरञ्जनः।
निर्गुणनाथो भूतपतिर्निर्गुणानन्दो महीपतिः॥

एक अन्य मतानुसार⁶ माहेश्वरों के स्पष्टतः दो स्थूल वर्ग दिखलाई पड़ते हैं। पाशुपत शैव तथा आगामिक शैव। पाशुपत शैवों में पाशुपत, लाकुलीश, कापालिक, नाथ, गोरखनाथी और रसेश्वरधे। दूसरे वर्ग में शैव सिद्धान्ती, तामिल शैव, काश्मीरी शैव और वीर शैवों की गणना की जाती है। पाशुपत लोग शिवावतार स्वीकार करते थे। आगामिक शैव शिवावतार न स्वीकार कर आगमों को अपना मूल ग्रन्थ मानते थे।

डा० नागेन्द्र नाथ उपाध्याय ने कुछ शिलालेखों तथा अन्य ऐतिहासिक आलेखों से प्राप्त महेश्वर सम्प्रदायों का वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है "मत्कापुरम् शिलालेख ॥श०स० ११८३ = वि०स० लगभग १३१८॥ में शैव मत के चार सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है - शैव, कालानन, शिव शासन, तथा पाशुपत। वामन और शिव पुराण, आगम, प्रामाण्य, श्री भाष्य, वाचस्पति मिश्र रचित शारीरक भाष्य, हरिभद्र सूरि रचित षड्दर्शन समुच्चय तथा अन्य आगम ग्रन्थों में इन सम्प्रदायों के उल्लेख मिलते हैं। इनमें से शैव तो शैव सिद्धान्ती थे तथा कालानन को कास्क भी कहा जाता था। पाशुपत सम्प्रदाय की लाकुलीश पाशुपत नाम की एक शाखा भी थी। कापालिक सम्प्रदाय का एक सौम्य सम्प्रदाय भी था, जिसके साथ उसका सम्बन्ध था। दक्षिण के कुछ शिलालेखों में छः शैव सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है -

- १- भैरव, २ - वाम, ३- कालामुख, ४ - महाव्रत,

सर्वाराध्यः पूर्णनाथो द्युतिनाथो द्युतिप्रियो।
सृष्टिनाथः स्थितिनाथो हारनाथो महागुरु ॥

रमयो रामभद्रश्च रामनाथो जनार्दनः।

- गो०सि०स० पृष्ठ - १०६

॥कल्पद्रुमतन्त्र श्री गोरक्ष सहस्रनाम स्त्रोत से उद्धृत॥

5- महाव्रत, 6- शैव। डा0 पाठक का अनुमान है कि वाम और भैरव कापालिक हो सकते हैं। आनन्दीगिरि ॥लगभग 1260 ई0॥ ने अपने शंकर दिग्विजय में शैव, रौद्र, उग्र, भट्ट, जंगम, पाशुपत नाम के छः सम्प्रदायों का उल्लेख किया है।"7

डा0 नागेन्द्र नाथ उपाध्याय ने विविध तथ्यों के आधार पर यह विचार व्यक्त किया है कि लगभग 13 ई0 श0 तक भारत में कालानन, कापालिक, लाकुलीश, पाशुपत और शैव सिद्धान्त नामक पांच शैव सम्प्रदायों का ही अधिक प्रचार था।8

अतः उक्त विवरण के आधार पर यही सम्भावना अधिक प्रतीत होती है कि पूर्व उत्पन्न शैव सम्प्रदाय में कालान्तर में शैव, पाशुपत, कापालिक, कालामुख और कालानन सम्प्रदाय ही प्रमुख रूप में प्रादूर्भूत हुए।

शैव सम्प्रदायों का संगठन :

शैव सन्यासियों के इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि यद्यपि शंकराचार्य के पूर्व शैव सन्यासी विभिन्न शैव सम्प्रदायों के रूप में वर्तमान थे तथापि इन अनेक वैदिक शैव सन्यासियों का पुनः संगठन शंकराचार्य ने ही किया।9

तदनन्तर लगभग 10वीं ई0 शताब्दी के आरम्भ में गोरखनाथ ने उन शेष सन्यासियों को संशुद्ध कर पुनःसंगठित

4- गो0 ना0 पृष्ठ - 68

5- भा0स0 एवं कला पृष्ठ - 160

6- गो0 ना0 पृष्ठ - 68

किया जो वैदिक व्यवस्था तथा जीवन पद्धति का विरोध करते थे अथवा उसे किसी रूप में स्वीकार न कर सके थे।¹⁰

गोरक्षनाथ के पूर्व ऐसे बहुत से शैव, बौद्ध और शाक्त-सम्प्रदाय थे जो वेद बाह्य होने के कारण न हिन्दु थे और न मुसलमान। जब मुसलमानी धर्म प्रथम बार इस देश में प्रचलित हुआ तो नाना कारणों से देश दो प्रतिद्वन्दी, धर्म साधना मूलक दलों में विभक्त हो गया, जो शैव मार्ग और शाक्त मार्ग वेदानुयायी थे, वे वृहत्तर ब्राह्मण प्रधान हिन्दु समाज में मिल गये और निरन्तर अपने को कट्टर वेदानुयायी सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहे। वह प्रयत्न आज भी जारी है। उत्तर भारत में ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जो वेद बाह्य होकर भी वेद सम्मत योग साधना या पौराणिक देव-देवियों की उपासना किया करते थे। वे अपने को शैव, शाक्त या योगी कहते रहे। गोरक्षनाथ ने उनको दो प्रधान दलों में पाया होगा - एक तो वे जो योग मार्ग के अनुयायी थे, परन्तु शैव या शाक्त नहीं थे। दूसरे ॥2॥ वे जो शिव या शक्ति के उपासक थे - शैवागमों के अनुयायी थे - परन्तु गोरक्ष सम्मत योग-मार्ग के उतने नजदीक नहीं थे। इन में जो लोग गोरक्ष सम्मत मार्ग के नजदीक थे उन्हें उन्होंने योग मार्ग में स्वीकार कर लिया, बाकी को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार दोनों ही प्रकार के मार्गों से ऐसे बहुत से सम्प्रदाय आ गये जो गोरक्षनाथ के पूर्ववर्ती थे परन्तु बाद में उन्हें गोरक्षनाथी माना जाने लगा। धीरे-धीरे जब परम्पराएं लुप्त हो गयीं तो उन पुराने सम्प्रदायों के मूल प्रवर्तकों को भी गोरक्षनाथ का शिष्य समझा जाने लगा।¹¹

अतः उक्त विवरण से स्पष्ट है कि शैव सन्यासियों को संगठित करने का कार्य दो ही व्यक्तियों द्वारा किया गया प्रथम शंकराचार्य तथा दूसरे महायोगी गुरु गोरक्षनाथ।

नाथ-सम्प्रदाय में विभिन्न शैव-शाक्तादि मत :

दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के बाद क्रमशः वेद बाह्य सम्प्रदायों की यह प्रवृत्ति बढ़ती गयी कि अपने को वेदानुयायी सिद्ध किया जाय। शैवों ने भी ऐसा ही किया और शाक्तों ने भी, परन्तु कुछ मार्ग इतने वेद विरोधी थे कि उनका सामंजस्य किसी प्रकार इन मतों में नहीं हो सका। वे धीरे-धीरे मुसलमान होते रहे। गोरक्षनाथ ने योग-मार्ग में ऐसे अनेक मार्गों का संघटन किया।¹² शैव सन्यासियों में पाशुपत और कापालिक सन्यासियों का विशेष प्रामुख्य था। गोरक्षनाथ ने शंकराचार्य के पुनः-संगठन से अवशिष्ट शैव एवं शाक्त सन्यासियों का पुनः-संगठन किया था। अधिक संभावना यह है कि ये वैदिक नहीं, अपितु आगमानुयायी सन्यासी रहे होंगे। गोरक्षनाथादि द्वारा संगठित एवं व्यवस्थित नाथ मत में विभिन्न शैव-शाक्त सम्प्रदायों का अन्तर्भाव हो गया था जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि नाथों का कापालिक, पाशुपत, लाकुलीश, अधौरी आदि सम्प्रदायों से घनिष्ट सम्बन्ध रहा होगा। एक विभाजन के अनुसार यदि गोरक्षनाथ पाशुपत थे तो वे एक अर्थ में वैदिक भी हो सकते हैं। जबकि कापालिक मत तौत्रिक अथवा आगमानुयायी था और साथ ही अवैदिक भी। जालन्धर पाद एवं कृष्णपाद के कापालिक मत के नाथ सम्प्रदाय में पूर्ण एवं आंशिक अन्तर्भाव के सम्बन्ध में इस एक कारण का अनुमान किया जा सकता है ।

गहनेश और गहिनीनाथ यदि एक ही हैं और यदि ये गोरक्षनाथ की शिष्य परम्परा में ही थे तो भी वे लाकुलीश मत में अग्रसर हुए थे। गोरक्षनाथ ने सिद्ध मत के चौरंगीनाथ को सम्मान दिया।¹²

अपने गुरु मत्स्येन्द्र के उद्धार के बाद ही गोरक्षनाथ ने विभिन्न शैव-शाक्त सम्प्रदायों का संगठन किया होगा इसी क्रम में कौल मत्स्येन्द्र नाथ की शिष्या विमला देवी और उनके अनुयायी आर्य पन्थी १ जो पूर्वतः शाक्त थे १ नाथ सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त हो गये। रावल लोगों का सम्बन्ध लाकुलीश मत से जोड़ा जा सकता है। कापालिक जालन्धर पाद का पर पन्थ तथा उनके शिष्य कानिफ के बाभारग के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पा पन्थ तो पूर्णतः और बाभारग अंशतः नाथ सम्प्रदाय में स्वीकृत हुआ।¹⁴

इस प्रकार शैव-शाक्तादि मतों के कापालिक, लाकुलीश, सिद्ध, अघोरी आदि विभिन्न वैदिक - अवैदिक सम्प्रदाय एवं उपसम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय में अन्तर्भुक्त हो गये। अतः स्पष्ट है कि नाथ सम्प्रदाय एक अत्यन्त व्यापक सम्प्रदाय रहा होगा, जिसने अपने में उक्त सम्प्रदायों को समेट कर उन्हें संगठित किया ।

7-	गो० ना० पृष्ठ - 70
8-	गो० ना० पृष्ठ - 70
9-	वही पृष्ठ - 78
10-	वही पृष्ठ - 78
11-	ना० स० पृष्ठ - 182
12-	ना० स० पृष्ठ - 182
13-	गो० ना० पृष्ठ - 86
14-	गो० ना० पृष्ठ - 87

गोरक्ष दर्शन एवं शैव दर्शन में एकता :

एक ओर शैव मतावलम्बी शिव-शक्ति के उपासक थे। वे शिव को जगत् कर्ता, पालक, संहारक मानते थे, तो दूसरी ओर शिव-शक्ति का अभेद सिद्धान्त गोरक्षनाथ के मत में मान्य था। पिण्ड में स्थित महामाया कुण्डलिनी शक्ति का उद्बोधन हठ योग क्रियाओं द्वारा प्राप्त कर शिव-शक्ति की अभेदता को प्राप्त किया जा सकता है। शिव एक परम सत्ता है, और सृष्टि उसी का आभास या प्रकाश है। दोनों ही ॥गोरक्ष एवं शैव॥ मतों में इसे स्वीकार किया जाता है।

मत विभिन्नता होते हुए भी लक्ष्य एक ही है और वह लक्ष्य है तत्त्वतः परब्रह्म परमेश्वर शिव को जान लेना। उससे अभेदता को प्राप्त होना। उसी में लीन हो जाना। उसी के सामरस्य को प्राप्त होना, शिव-शक्ति का तादात्म्य स्थापित करना। शिव में स्वस्थ होकर निरुत्थान पद को प्राप्त होना। कहा भी गया है¹⁵ कि जो शुद्ध ॥गुणातीत निर्विकार॥ निराकार ॥अलख-निरन्जन सर्व व्यापक॥, परमानन्द स्वरूप, स्व प्रकाशित ॥ स्व संवेद्य अखण्ड पर ब्रह्म॥ परमेश्वर ॥शिव को तत्त्वतः जान लेता है, वही अवधूत योगी शैव है। जो कर्म जाल रूप पशुत्व ॥जीव भाव॥ का त्याग कर अखण्ड, परात्पर, पूर्णतम परम शिव की उपासना में तत्पर होकर शिव रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है, वही वास्तव में पाशुपत ॥शैव॥ है। जो समस्त भौतिक तत्व के प्रति

15- शुद्धं शान्तं निराकारं परमानन्दं सदोदितम् ।
तं शिवं यो विजानाति शुद्ध शवो भवेत्तु सः ॥

विद्यमान अहंकार भाव का-संसारविद्यमान रूप शत्रु का वीरता पूर्वक दमन कर देता है, वही वीर शैव-लिंग धारी कहा जाता है। जो गुरु से मन्त्र प्राप्त कर उसके द्वारा उपदिष्ट साधन मार्ग पर चलते हुए अपने शिव स्वरूप में बोध युक्त तथा अनन्य रहता है, एक मात्र अपने उपास्य का ही ध्यान और चिन्तन करता है, वही कापालिक कहा जाता है। जो शक्ति को संचार से संकोच कर निरुत्थान स्वरूप स्थिति, चित्त-विश्रान्ति में समाधि में तत्पर होकर अपने अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप में विहार करता है, वही शक्त कहा जाता है। शक्ति सृष्टि का प्रसार प्रकाशित करती है, शिव उसका लयसंहार ॥संकोच॥ करते हैं, शक्ति और शिव में ऐक्य भाव वृद्ध करने वाला सिद्ध योगीराज कहा जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मत विभिन्नता होते हुए भी दोनों के सिद्धान्त किसी न किसी रूप में परस्पर मिलते हुए प्रतीत होते हैं। दार्शनिक विचार धाराओं में प्रायः साम्य ही द्वीगत किया जा सकता है।

क्रियाजालं पशुं हत्वा पतित्वं पूर्णतां गतम् ।
यस्तिष्ठेत पशु भावेन स वै पाशपतो भवेत् ॥
विलयं सर्वं तत्त्वानां कृत्वा संघ्रायते स्थिरम् ।
सर्वदा येन वीरेण लिंगधारी भवेत् सः ।
स्वस्वरूपात्मकं ज्ञानं समन्त्रं तत् प्रणलितम् ।
अनन्यत्वं सदायेन स वै कर्मालिको भवेत् ॥
यः करोति निरुत्थानं कर्तृचित्तं प्रसरेत् सदा ।
तद् विश्रान्तिस्तया शक्या शक्तिः सौहार्दाभिधीयते ।
प्रसरं भासते शक्तिः संकोचं भासते शिवः ।
तयोर्योगस्थ कर्ता यः स भवेत्सिद्धयोगिराट् ॥

नवम् अध्याय

- गोरक्ष दर्शन की प्रमुख देन -

- 1- जीव की बन्धन मुक्ति
- 2- समरसकरण
- 3- अध्यात्मिक आदर्श एवं मानवता के लिए सन्देश

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का व्यक्तित्व सर्वगुण सम्पन्न एवं अर्प्रांतम था उन्होंने अपनी प्रतिभा सम्पन्न वाणी द्वारा लोक मानस के समक्ष जीव के बन्धन मुक्ति, साधनस्य की स्थिति तथा मानव के लिए जो सन्देश प्रस्तुत किया वह एक महान कार्य था।

जीव की बन्धन मुक्ति :

प्राचीन काल से ही अनेक सन्त, महात्माओं, दार्शनिकों एवं तत्व-ज्ञानालोकिता योगियों का मुख्य आधार यही रहा है कि वह किसी भी साधन द्वारा मुक्ति पा जाय। मुक्ति का सामान्य अर्थ है, छुटकारा, निवारण, उद्धार। वस्तुतः मुक्ति की अभीप्सा के पहले मानव जीवन में ऐसी अवस्था अवश्य आती है, जिससे खिन्न होकर वह किसी न किसी रूप में उस अवस्था से छुटकारा पाने का विचार करता है। वह उससे तुरन्त छुटकारा पाना चाहता है।

वह अनुभूयमान अवस्था दुःख है जो न केवल मानव के लिए ही असहनीय है, अपितु समस्त संवेदनशील जीवों के लिए ही कष्टकारी होता है, जिसका निवारण सभी प्राणी चाहते हैं। मानव जीवन में जन्म से मृत्यु तक दुःख साथ-साथ लगे रहते हैं। कुछ अपूर्णतार होती है जो दुःखों को और अधिक कष्टकारी बना देती है। मनुष्य इन्हीं दुःखों से छुटकारा पाने के लिए सतत् संघर्ष करता है। तथा संघर्ष में लगे रहने से वह इन दुःखों से अस्थायी छुटकारा तो पा लेता है किन्तु दुःख है कि जीवन में मूलतः नष्ट नहीं हो पाते तथा निरन्तर दुःख की स्थिति पैदा करने वाले दुसरे कारण पैदा हो जाते हैं। यहाँ तक कि भौतिक मृत्यु

भी जिससे मनुष्य यही समझता है कि वह समस्त दुःखों से छुटकारा पा जायेगा। छुटकारा नहीं दिला सकती, क्योंकि पूर्व जन्म कर्मों के फल भोग हेतु अन्य जन्मों के धारण करने का विश्वास माना जाता है। इस प्रकार मृत्यु पर्यन्त नवीन शरीरों में भी पूर्व जन्म कर्मों के फलस्वरूप दुःखों एवं निरन्तर संघर्षों, अस्थायी सन्तुष्टियों का यह चक्र-क्रम बराबर बना रहता है। जो कभी भी समूल नष्ट नहीं होता है।

तदनन्तर दुःख इच्छाओं को जन्म देता है। इच्छाओं की पूर्ति में कार्य की उत्पत्ति होती है। यद्यपि कार्य दुःखों से अस्थायी मुक्ति तो देते हैं तथापि कुल मिलाकर नष्ट नहीं कर सकते हैं। जबकि एक इच्छा की पूर्ति के बाद पुनः नवीन इच्छाओं का जन्म होता है तथा उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए नवीन कार्यों की उत्पत्ति होती है, जो नवीन दुःखों को पुनः उत्पन्न कर देते हैं। अतः यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है।

मनुष्य के अन्तर्मन में इस एक के बाद एक दुःखों के जन्म से इच्छाएँ, आवश्यकताएँ, असन्तोष, निराशा, अपूर्णता आदि का जन्म होता है तथा निरन्तर मुक्ति पाने के साथ ही वह इन सब के भवैर-जाल में फँसता चला जाता है। यह वह अवस्था है जबकि मनुष्य स्वयं से खिन्न होकर मुक्ति अर्थात् इन सबसे पूर्णतया छुटकारा पाने की ओर प्रवृत्त होता है। उसकी सुप्त शक्तियाँ जागृत और सक्रिय हो जाती हैं।

दूसरी तरफ यह भी है कि जैसे-जैसे मानव अपने लिए सुख और आनन्द के संसाधनों में वृद्धि करता जाता है, वैसे ही वैसे उसके जीवन में दुःखों का भार बढ़ता जाता है। सुख सुविधाओं की खोज के अनुरूप ही दुःखों के स्रोतों में वृद्धि होती जाती है। यद्यपि मनुष्य इस तरफ से सुधार वादी दृष्टिकोण अपनाता है, तथापि वह दुःखों से छुटकारा नहीं पाता। इस दशा में निराशा हो मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। असीम दुःख की अवस्था में एक क्षण ऐसा आता है जबकि मनुष्य उस परम पिता परमात्मा से अपने मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है, किन्तु मोक्ष मिलना आसान नहीं है। हाँ उस ओर गंभीर प्रयास करने से वह अवश्य प्राप्त हो सकता है।

भारत के महान सन्तों एवं तत्व-ज्ञानालोकित योगियों की यह दृढ़ धारणा है कि दुःख पर पूर्ण विजय प्राप्त की जा सकती है जिसका योग एक सुलभ एवं दृढ़ साधन है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का कथन है। कि बन्धनों से जीवात्मा को मुक्त करने के लिए अहंकार को तोड़कर, सद्गुरु परमात्म ज्ञानी की प्राप्ति के लिए योग मार्ग पर चलने से कार्य सिद्धि हो सकती है। योग ही ऐसा मार्ग है, जो निर्मल एवं निष्पक्ष है, इस लिए इस पुण्य मार्ग की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता। अतः मनुष्य जन्म पाकर योग की साधना करनी चाहिए। जीवात्मा के पिण्ड में ही ब्रह्म व्यापक है। जो कुछ हमारे पिण्ड में है, वही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में है और पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड का मूलाधार ब्रह्म है, जो दोनों

में अभिन्न है, इस तथ्य का विचार करने पर ब्रह्म, अलख निरन्जन, परम शिव शून्यगगनस्थ चिन्मय निराकार परमात्मा §अधर§ हमारे शरीर §धर§ में स्थित है। योग की साधना से हठ योग के द्वारा शरीर के अन्तर अवयवों के सूक्ष्म विश्लेषण से स्वरूपानुभूति के प्रकाश में जब पिण्ड में ब्रह्म की विद्यमानता का रहस्य ज्ञान हो जाय, तब अद्वैत, निरन्जन, निराकार अलख ब्रह्म ही अद्वय रूप में सर्वत्र विद्यमान है, इस तरह स्वरूप स्थिति, कैक्य पद में सहज सिद्धि हो जाती है। यही कैक्य पद की प्राप्ति अथवा अलख निरन्जन का दर्शन अथवा साक्षात्कार है।

अन्यत्र भी कहा गया है² कि योग ही सन्मार्ग है। इसलिए जो लोग भक्ति प्राप्त करने के इच्छुक हैं, उन्हें अन्य साधनों की अपेक्षा योग मार्ग का ही सेवन करना चाहिए, जिससे उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाय, जो किसी भी तरह का संकल्प नहीं करते, जो पुण्यात्मा है अथवा जिनके दर्शन मात्र से ही पुण्य की प्राप्ति होत है, जो योग रूपी रत्न के पिटारे हैं और परम पद के प्रत्यक्ष दर्शी हैं वे योगी ही विजयी हैं।

अपि च³ अन्त्य आश्रम में स्थित योगी स्नानादि नित्य कर्म से निवृत्त होकर शुद्ध मन से निर्जन स्थान में सुख पूर्वक आसन में स्थित हो कर ग्रीवा, शिर और शरीर को एक सीध में रखकर, सारी इन्द्रियों को संयमित कर भक्ति पूर्वक गुरु को प्रणाम कर अपने हृदय कमल के मध्य में संकल्प रहित, विशुद्ध, शोक रहित, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप, प्रशान्त, अमृत स्वरूप, परब्रह्म आदि, मध्य

और अन्त से रहित, चिदानन्द, निराकार, अद्भूत, विभु, शिव का चिन्तन करते हैं। मुनि उमाकल्लभ, परमेश्वर प्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, प्रशान्तस्वरूप, समस्त भूतो के मूल कारण, सबके साक्षी, परम ज्योति स्वरूप का ध्यान कर उस ॥परम प्रभु॥ की प्राप्ति करता हैं। वहीं ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अविनाशी, परम-स्वतन्त्र, परात्पर ब्रह्म, विष्णु, प्राण है, वहीं आत्मा है, परमेश्वर है, वह भूत और भविष्य में जो कुछ हो गया और जो होने वाला है, सब कुछ हैं, उस अव्यय-सनातन परमात्मा को जानकर प्राणी मृत्यु का अतिक्रमण करता है, अमरत्व प्राप्त कर लेता है, परम पद में प्रतीष्ठित हो कर स्वस्थ हो जाता है। इसके अतिरिक्त संसार ॥विषय प्रपञ्च॥ के बन्धन से छूटने, मुक्त होने का दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं।

डा० नागेन्द्र नाथ उपाध्याय ने महामहोपाध्याय पीडित गोपीनाथ कविराज द्वारा नाथों के जीवन मुक्ति क्रम पर किए गये व्याख्यान को इस प्रकार वर्णित किया है⁴ कि इस मत के अनुसार सद्गुरु की कृपा से चित्त-विश्रान्ति-लाभ सबसे पहले होना चाहिए, क्योंकि बिना उसके सामरस्य प्राप्ति नहीं हो सकती। जब तक चित्त देहात्मबोध मूलक क्षोभ से मुक्त न हो, तब तक इसमें शान्ति नहीं होती और यथार्थ साधना का प्रारम्भ नहीं होता। चित्त विश्रान्ति से स्वभावतः भगवदानन्द और अनन्त ज्योतिर्यों का आविर्भाव होता है। इस अद्वय प्रकाश से दैत भाव निवृत्त हो जाता है। इसके बाद चित्त शक्ति का प्रकाश होता है, और योगी निज देह के पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करता है। इसका फल है देह-सिद्धि या पिण्ड-सिद्धि। इसका नामान्तर है देह का अमरत्व। इसे

नामान्तर से सिद्ध अवस्था कह सकते हैं। परन्तु अभी भी जो यथार्थ अन्तिम लक्ष्य है, वह दूर है। इस समय योगी की देह ज्योतिर्मय आकार को लेकर प्रकाशमान होती है। यह चैतन्य की सारभूत सत्ता है। परम पद के नित्य सिद्ध प्रकाश के साथ इस प्रकाशमय आकार का एकत्व सम्पादन-सुदीर्घ काल तक आत्मा के स्वरूपानुसंधान में तल्लीन रहने से हो सकता है। यही सामरस्य है। ---- सामरस्य और निरुत्थान दशा, दोनों के अन्तराल में कुछ अवस्थाओं का पता चलता है। पूर्ण स्वतंत्र्य से समन्वित आत्मा का स्फुरण निरुत्थान दशा के नाम से प्रसिद्ध है। ----- नाथ योगियों का लक्ष्य यह है कि पहले पिण्ड-सिद्धि के द्वारा जीवन मुक्ति की प्राप्ति हो। इस समय में कालवचन सिद्ध होता है। अर्थात् काल के प्रभाव से योगी मुक्त हो जाता है। इसके अनन्तर समरसीकरण के द्वारा परामुक्ति की सिद्धि होती है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि पिण्ड-सिद्धि या जीवन-मुक्ति के अनन्तर ओंकार साधना के द्वारा परामुक्ति का आविर्भाव होता है।

अतः सामरस्य की स्थिति को प्राप्त हुआ समस्त क्लेशो से निवृत्ति पा जाता है। मुक्ति अलौकिक सुख एवं दिव्य शान्ति की वह विलक्षण अवस्था है जिसमें मनुष्य में किसी भी प्रकार का सांसारिक मोह शेष नहीं रह जाता है। " अपने ही स्वरूपभूत खण्ड रहित ब्रह्म ज्ञान द्वारा उसमें स्थित अज्ञान को दूर करके, अपने स्वरूपा-खण्ड ब्रह्म खण्ड ब्रह्म के प्रत्यक्षीभूत होने से अज्ञान और उससे उत्पन्न {कार्य} में एकीकृत कर्म सन्देह, विपर्यय आदि को

नष्ट करके सम्पूर्ण बन्धनों से हीन ब्रह्म में निष्ठावान् ॥पुरुष॥
जीवन्मुक्त कहलाता है।" ⁵

बिना योग सिद्धि के मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।
चाहे कोई कितना ही बड़ा " ज्ञानीनिष्ठ, विरक्त, धर्मज्ञ,
जितेन्द्रिय अथवा देवता ही क्यों न हो, योग ॥ज्ञान॥ के
बिना कोई भी जीव मोक्ष पद में स्वस्थ नहीं हो सकता
है।" ⁶

योग सिद्धि के द्वारा ही मनुष्य समस्त सांसारिक
क्लेशों, दुःखों तथा अहंकार आदि भावनाओं के मिट जाने
पर परम पद पर ब्रह्म से सामरस्य की स्थिति प्राप्त हुआ,
मोक्ष को प्राप्त होता है।

समरसकरण :

विभिन्नताओं में अभिन्नता को प्राप्त होना ही समरसकरण
है। जब तत्तत्त्वज्ञानालौकिक योगी अपने चरम आदर्श को प्राप्त
हो जाता है, तब वह इस भौतिक व्यवस्था की समस्त
सीमाओं में अपने आपको पाता है। उस समय वह सूक्ष्म
का स्थूल से, जीवात्मा का परमात्मा से पिण्ड का ब्रह्माण्ड
से अर्थात् समस्त विविधताओं में एकता के दर्शन करता
है। वह अपने आपको सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्यवस्था के प्रत्येक
अणु-परमाणु में, सीमित-असीमित में निहित पाता है तथा
अपने में ही समस्त ब्रह्माण्ड व्यवस्था के दर्शन करने लगता
है। यही सामरस्य की स्थिति है।

अतः पिण्डगत और ब्रह्माण्ड गत परमात्मा के
एकत्व, समरसत्व या समत्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

यह जानना चाहिये कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड, आत्मा और परमात्मा, में कोई भेद नहीं है।

सामरस्य की स्थिति की प्राप्ति के लिए गुरु का होना आवश्यक है। महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का कथन है⁷ कि बड़े-बड़े सिद्ध योगी गुरु के कृपाकटाक्ष और अपने भ्रमों निग्रहादि योग साधना के अनुभव से स्वरूप बोध में समर्थ हो कर अपने व्याप्ति शरीर का निस्त्यानानुभव व्यापक पर पिण्ड में अभेदता के समाश्रय में सामरस्य करते हैं-परमात्म स्वरूप परमपद की प्राप्ति के द्वारा सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाते हैं। जीवात्मा-परमात्मा में पूर्ण अभेदता की प्रतिष्ठा ही व्याप्ति-पिण्ड से परापिण्ड का सामरस्य है अभेद रूप परमपद को चाहने वाले योगी का अपने स्वरूप के अनुसन्धान से स्व-पर-पिण्ड की अभेदता द्वारा निजावेश होता है - वह परमेश्वर को अपने ही स्वरूप में प्रतिष्ठित देखता है। स्वपिण्ड-परापिण्ड की अनुभव की अभेदता के अनुभव से उसे सर्वेश्वर परमात्मा के पिण्ड में आत्मव्यक्ति-निजावेश होता है और इस निजावेश के परिणाम स्वरूप ही निस्त्यान अथवा सामरस्य का उदय होता है, उसे स्वाभिव्यक्तिपूर्वक इसका अनुभव होता है कि यह परापिण्ड-परमात्म पिण्ड मेरा ही व्याप्ति-पिण्ड है। सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा के स्वसंवेद्य अनुभव के चमत्कार से अद्भुत प्रकाश स्वरूप आत्म बोध होता है। इस बोध से द्वन्द्व-परमात्म पिण्ड और स्वपिण्ड में भेद-भाव का अन्त हो जाता है और अखण्ड परमात्म स्वरूप परम पद प्रत्यक्ष हस्ताभलक के समान प्रस्फुटित-स्वप्रकाशित अथवा स्वाभिव्यक्त हो जाता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। व्याप्ति-पिण्ड और परापिण्ड में सामरस्य की प्राप्ति

गुरु के अनुग्रह से होती है। सिद्ध योगियों को इसके लिए सबसे पहले गुरु के चरण में शरणागत होकर उसकी प्रसन्नता से चित्त-वृत्तियों के निरोधपूर्वक स्वरूप ध्यान और समाधि से उपसना में योग साधना में तत्पर होकर स्वीपण्ड से पर पिण्ड पर्यन्त ऐक्य का अनुभव करना चाहिए, इस तरह की साधना से ही तत्क्षण परम पद का अनुभव होता है। इस तरह अपने योग साधना परक अनुभव के प्रकाश में अपने व्यष्टिपिण्ड का ज्ञान प्राप्त कर उसे परम पद में एकीकृत कर तथा उस परम पद को अपने व्यष्टि पिण्ड में एकात्म स्वरूप कर अपने पिण्ड को सच्चिदानन्द स्वरूप में अभिव्यक्त कर पर पिण्ड की उसमें अभिन्नता-अभेदता का महत्व योगी अनुभव करता है और निज पिण्ड परीक्षा से अपने शरीर में भी परमात्म स्वरूप किरण रूप आनन्द का ही विकास है और इस प्रकाश के उन्मेष को अपने ही भीतर समेट कर परमात्मा से अभिन्न अथवा अभेद अनुभव करना ही सामरस्य है। इस प्रकार अपने व्यष्टि-पिण्ड में प्रत्याहरण के परिणाम स्वरूप यह शरीर महाप्रकाश पुञ्ज रूप में आकारित हो उठता है। इस तरह अपने व्यष्टि-पिण्ड में परमात्म प्रकाश के प्रत्याहरण-सामरस्यकरण द्वारा सिद्ध योगी-सिद्ध देह-चिन्मय स्वरूप - स्वानन्दविग्रह की प्राप्ति से चिर काल तक अजर-अमर रहते हैं।

अतः आत्म दर्शी मनुष्य स्वयं की आत्मा को परमात्मा में लीन पाता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का स्वीपण्ड में दर्शन करता है। " जब कुण्डलिनी उपस्थित होकर सहस्रार की ओर अग्रसर होती है तब जीवात्मा भी उसके साथ अग्रसर होकर अन्ततोगत्वा एकत्व प्राप्त कर शिवस्वरूप हो जाती

है। निराकार परमतत्त्व पिण्ड और ब्रह्माण्ड ॥सृष्टि॥ में समान रूपेण व्यापक है। पिण्ड गत और ब्रह्माण्ड गत परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। जब कुण्डलिनी शक्ति उलट कर ब्रह्माण्ड में पहुँच कर परमशिव से मिलन प्राप्त करती है, तब कहा जाता है कि यह पिण्डगत कुण्डलिनी ब्रह्माण्ड गत महाकुण्डलिनी पद को प्राप्त हो गयी अथवा जीव-शिव पद को प्राप्त हो गया है। यही समरसीकरण है।" 8 इसी सामरस्य की अवस्था को प्राप्त हुए साधक योगी के समस्त सांसारिक बन्धन, विघ्न तथा दुःख, मोह, राग, द्वेषादि मूलतः नष्ट हो जाते हैं। तब वह तत्त्वज्ञानी हो जाता है।

कहा गया है⁹ कि "बुद्धि वृत्ति के विस्तार के उदय स्वरूप-चिद् विलास आत्म प्रकाश में ही गुरु के अनुग्रह प्राप्त शिष्यों में मानस व्यापार के निरुद्ध होने पर विश्रान्ति की स्थिति सम्भव होती है, उस विश्रान्ति में समष्टि-व्यष्टि रूप परापिण्ड का ऐक्य-सामरस्य स्थापित होता है। जीवात्मा रूप शिष्य परमात्म पद में गुरु की कृपा से अमेद अभिन्न हो जाता है, उन्हें अखण्ड परमात्म स्वरूप परमात्म पद अथवा परम पद की प्राप्ति हो जाती है।

आध्यात्मिक आदर्श एवं मानवता के लिए सन्देश :

अति प्राचीन काल से ही भारतीय दार्शनिक विचार धारा की सम्पूर्ण गति उस महानतम खोज पर आधारित एवं निरन्तर प्रयत्नशील रही है कि सम्पूर्ण जगत् की व्यावहारिक सत्ताओं के समस्त विभिन्न स्तर उस परमपद पर ब्रह्म की आश्चर्य जनक आत्माभिव्यक्तियाँ हैं। मानव-जीवन का परम आदर्श उस परम पद पर ब्रह्म का प्रत्येक व्यष्टि

शरीर में, प्रत्येक संजीव निर्जीव में, प्रत्येक अणु-परमाणु में तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में दर्शन करना है, जिसके लिए विभिन्न युग-युगान्तरों में योगियों-ज्ञानियों-सन्तो-महात्माओं एवं दाशीनिकों ने इस भारत माता की गोद में जन्म लेकर मानव जीवन के परमलक्ष्य को लोक मानस के समक्ष स्पष्ट रूप में रखने के लिए विभिन्न उपाय एवं मार्ग खोज निकाले हैं।

वस्तुतः सभी युगों में समस्त मानवता के लिए हिन्दु आध्यात्मिक संस्कृति का यह महानतम सन्देश रहा है कि इस जगत् व्यवस्था के समस्त स्तरों में व्याप्त तथा उनसे परे एक दिव्य आलोक मय, परम पद, परम तत्त्व पर ब्रह्म हैं, जिसकी किसी न किसी रूप में सभी मनुष्य उपासना करते रहे हैं तथा कर रहे हैं। यह सम्पूर्ण जगत् व्यवस्था उसी के द्वारा अर्थात् ईश्वरीय नियम द्वारा संगठित एवं शासित है।

इस परम पद पर ब्रह्म परमात्मा से जीवात्मा, जो इस विश्वात्मा की एक सीमित वैयक्तिक आत्माभिव्यक्ति है से तादात्म्य स्थापित करना ही मानव जीवन का चरम आध्यात्मिक आदर्श है।

अस्तु जड़तत्व में आत्म, अनेकता में एकता, क्रिया में स्थिरता, प्रेममयी सेवा में त्याग, दया, श्रद्धाभक्ति आदि-आदि भारत माता के हृदय के यह पवित्र और गरिमामय सन्देश संसार के कोने-कोने में पहुँचाने का कार्य जिन धर्म गुरुओं, सत्यान्वेषियों एवं प्रचारकों द्वारा किया गया उन्हीं सर्वाधिक शक्ति शाली प्रचारकों में से एक थे महायोगी गुरु

गोरक्षनाथ, जिन्हे जन्म देकर भारत माता धन्य हुई जिन्होने सभी वर्गों एवं जातियों के लोगों को गले लगाया तथा उन्हें आध्यात्मिकता-मानवता एवं एकता का मार्ग दिखलाने का प्रशस्त कार्य किया।

उनके उपदेश आज भी उतने ही उपयोगी एवं आदर्शमय है जितने कि उस समय थे, जब वे अपने पवित्र भौतिक शरीर में लोगों को प्रेरण एवं साहस देते माने जाते हैं।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ एक व्यक्ति नहीं वरन् संस्था थे जिन्होने सर्व प्राणी योगियों की संस्था की स्थापना की जिसे सिद्धयोगी, नाथयोगी अथवा अवधूत योगी सम्प्रदाय के रूप में माना जाता है। यह व्यवस्था आज तक की भारतवर्ष में बनी संस्थाओं में सर्वाधिक व्यापक एवं सुनियोजित मठ-व्यवस्था है। इस विशाल भारत देश में ही नहीं अपितु पड़ोसी देशों में भी इस सम्प्रदाय के सक्रिय केन्द्र स्थापित है। इस सम्प्रदाय ने, संस्थापक महायोगी गुरु गोरक्षनाथ के सन्देश प्रचारार्थ समय-समय पर अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न सिद्ध योगियों को जन्म दिया है और यह क्रम आज भी निरन्तर चल रहा है।

गुरु गोरक्षनाथ रहस्य मय योगानुशासन के विभिन्न प्रकारों के कुशलतम् गुरु तथा शिव-शक्ति मत के सर्वाधिक शक्ति शाली प्रचारकों के रूप में प्रसिद्ध है। आपका योग सर्वाधिक व्यापक तथा पूर्ण रूपेण आध्यात्मिक है। योग विद्या और शिव शक्ति दर्शन सम्पूर्ण मानवता के हृदय तथा भारत वर्ष के आध्यात्मिक सन्देश का प्रतिनिधित्व करते

हैं। यह हमारे जीवन का वहीं आध्यात्मिक आदर्श है, जिसे आत्म-विद्या, ब्रह्म विद्या, परा-विद्या, निःश्रेयस-विद्या अथवा आध्यात्मिक-विद्या आदि के रूप में माना अथवा जाना जाता है। यही विद्या मानव जीवन में आनन्द, सौख्य, शान्ति, तथा पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करा सकती है। मानव जाति में प्रेम तथा सेवा भाव पैदा कर एकता एवं स्वछन्दता की स्थापना करा सकती है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी द्वारा प्रचारित, योग का आदर्श मानवता के समक्ष साधन और साध्य के रूप में है। योग का व्यापक अर्थ है समरसकरण अर्थात् पूर्ण मिलन अर्थात् समस्त परिवर्तनशील विभिन्नताओं को एकता में परिवर्तित कर देना ही योग है जिसके द्वारा समस्त विभिन्नताओं में एकता, जड़ तत्व में आत्मा, आत्मा में परमात्मा के दर्शन कर सकें। योग ही वह शक्ति है जो समस्त अन्तर वाह्य इन्द्रियों पर नियन्त्रण करा सकती है। यही नियन्त्रण करने का सर्वाधिक शक्तिशाली मार्ग है, जिसके अनुसन्धान फलस्वरूप मानव एकता, सौन्दर्यानुभव तथा आनन्दोपभोग कर सकता है, परब्रह्म परमेश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है, हृदय पूर्ण शान्ति एवं स्थिरता को बनाए रख सकता है, साथ ही साथ समस्त मानव जाति से प्रेम और सौहार्द का व्यवहार रख सकता है, सामरस्य की स्थिति को प्राप्त कर सकता है, सामरस्य के आदर्श की वास्तविक सिद्धि के लिए अपने मन, बुद्धि तथा समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित कर आलोकित एवं शुद्ध कर सकता है। योगादश में समस्त आन्तरिक एवं वाह्य शक्ति पर नियन्त्रण रखने की पूर्ण क्षमता है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का यही आध्यात्मिक आदर्श एवं पूर्ण मानव जाति के लिए महान् सन्देश है कि योग मार्ग ही श्रेष्ठ मार्ग है यह चरित्र को दृढ़ बनाता है तथा चुने हुए मार्ग पर निरन्तर आगे बढ़ने की मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है, जो जीवन की पूर्णता, आन्तरिक एवं बाह्य सम्बन्धों में एकता अपने में पूर्ण समायोजन, आनन्द एवं शान्ति को सच्चे हृदय से खोजता है उनके लिए योगादर्श ही श्रेष्ठ मार्ग है।

महायोगी गुरु गोरक्षनाथ इतिहास के कितने महान् व्यक्ति थे, उन्होंने कितने अद्भुत कार्य किये थे इस विषय में तो सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के इतिहास को देखने पर ही इंगित किया जा सकता है। संक्षेप में तो यही कहा जा सकता है कि विभिन्नताओं में अभिन्नता तथा अनेकता में एकता का पथ दृढ़ करने का सर्वोत्कृष्ट कार्य आपने किया।

- 1- आपा भोजिबा सतगुर षोजिबा जोगपंथ न करिबा हेला।
फिरि-फिरि मनिषा जनम न पायबा करि लै सिध
पुरिस सूमेला ।।
- 2- धरे अधर बिचारीयां धरी याही में सोय।
धरे अधर परचा हूवा तब दुतीया नाही कोय ।।
- गो० बा० सबदी-203, 218
- 2- सन्मार्गत्वेन योगस्तु सेव्यो हित्वान्य साधनम्
मुमुक्षुभिर्यतस्तेषां पद प्राप्तिः परा भवेत् ।।
योगिनी वीत संकल्पा निर्दन्दाः पुण्य दर्शनाः ।
योग रत्न करण्डास्ते जयन्त्यविधि गोचराः ।।
- गो०सि०स० पृष्ठ - 17
- 3- विविक्त देशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः ।
अन्त्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि निरुध्य भक्त्यास्व गुरुं प्रणम्य ।
हृत्युण्डरीकं विरजं विशुद्धं चिचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ।
अचिन्त्यभव्यक्त भनन्तरूपं शिव प्रशान्तमभृतं ब्रह्मयोनिम् ।।
तमादि मध्यान्तविहीनमेक विभुं चिद्रानन्दम रूपमद्भुतम् ।
उमा सहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीकण्ड प्रशान्तम् ।।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्त साक्षि तमसः परस्तात् ।।
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोडक्षरः परमभः स्वराट् ।।
स एव विष्णुः स प्राणः स कलोडग्नि स चन्द्रमा ।।
स एवं सर्व यद्भूतं यच्च भव्य सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्यु मर्त्येति नान्यः पन्था विभुक्तये ।।
-गो०सि०स० पृष्ठ - 17 ॥ कैक्योर्पनिषद से उद्धृत ॥
- 4- गो० ना० पृष्ठ - 124

- जीवन्मुक्तौ नाम स्वस्वरूपखण्डब्रह्मज्ञानेन तदज्ञानबाधन
द्वारा स्व स्वरूपखण्ड ब्रह्मणि साक्षात्कृते डज्ञानतत्कार्य
संचित कर्मसंशय विपर्यादिनामपि बाधितत्वा दखिल बन्ध
रहितो ब्रह्मनिष्ठः।
- वे० सा० पृष्ठ - 150
- ज्ञान निष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।
बिना योगेन देवाडपि न मोक्ष लभते प्रिये॥
-गो०सि०स० पृष्ठ -67 ॥योगबीज से उद्धृत॥
- तस्माद् गुरु कटाक्ष पातात् स्व संवेद्यतया च महासिद्धयोगिभिः
स्व कीमपिण्ड निरुत्थानानुभवेन समरसं क्रीयत इति
सिद्धान्तः। महा सिद्ध योगिनः स्वस्वरूप तयानुसन्धानेन
निजावेशो भवति निजावेशान्तिः पीडित निरुत्थानदशा
महोदयः कश्चिज्जायते ततः सच्चिदानन्द चमत्काराद्भुताकार
प्रकाश प्रबोधो जायते, प्रबोधदखिलमेतद् दयादय प्रकटतया
चेतन्य भासाभासकं परात्पर परमपदमेव प्रस्फुटं भवतीति
सत्यम्। अतएव महासिद्ध योगिभिः सभ्यग् गुरु प्रसादं
लब्ध्वावधानबलेनैक्यं भजमानैस्तत्क्षणात् परमं पदमेवानुभूयते।
तदनुभवबलेन स्वकीयं सिद्धं सभ्यङ् निजपिण्डं, ज्ञात्वा
तमेव परमपद एकीकृत्य तस्मिन् प्रत्यावृत्त्या रुद्वाम्यन्तरे
स्वीपिण्ड सिद्ध यर्थे महत्त्वमनुभूयते। निज पिण्ड परीक्षा
च स्वस्वरूप किरणानन्दोन्मेष मात्रं भस्योन्यषस्य प्रत्याहरणमेव
समरसकरण भवित। अतएव स्वकीयं पिण्डं मह द्रश्मिपुन्रं
स्वेनैवाकारेण प्रतीभमानं स्वानुसन्धानेन स्व स्मिन्नुरीकृत्य
महासिद्ध योगिनः पिण्ड सिद्धयर्थं तिष्ठन्तीति प्रसिद्धम्
-सि०सि०प० 5/7,8,9,10,11,12

:: परिशिष्ट ::

- ॥क॥ गोरक्ष-वचन-संग्रह
- ॥ख॥ गोरक्ष-चित्र-संग्रह
- ॥ग॥ सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची
- ॥घ॥ मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-सूची
- ॥ङ०॥ नाथ योगी महन्तों की सूची

:: परिशिष्ट "क" ::

- गोरक्ष - वचन - संग्रह -

- दैतादैत विलक्षणम् परमतत्त्वम् -

अदैतं केचिदच्छन्ति दैतमिच्छन्ति चापरे ।
समं तत्त्वं न किन्दन्ति दैतादैत-विलक्षणम् ॥
यदि सर्वं गतोदेवः स्थिरः मूर्खो निरन्तरः ।
अहो माया महामोहो दैतादैत विकल्पना ॥
भावाभाव विनिर्मुक्तं नाशोत्पत्ति विवर्जितम् ।
सर्वं संकल्पनातीतं परब्रह्म तदुच्यते ॥

-शिव-शक्ति-योग -

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः ।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्रचन्द्रिकायोरिव ॥
शिवोऽपि शक्ति-रहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन ॥
स्वशक्त्या सहितः सोऽपि सर्वस्याभासको भवेत् ॥
अलुप्त शक्तिभान्नित्यं सर्वकारतया स्फुरन् ।
पुनः स्वेनैव रूपेण एक एवावशिष्यते ॥
अकुलं कुलमाधते कुल चाकुलमिच्छति ।
जलं बुद्बुदं वद् न्यायात् एकाकारः परः शिवः ॥
प्रसरं भासयेत् शक्ति संकोचं भासयेत् शिवः ।
तयोर्योगस्य कर्ता यः स भवेत् सिद्धयोगिराट् ॥

-ओंकार महिमा -

ओंकारश्च ततोकारोऽकारो बिन्दु-संज्ञकः ।
तिस्रो मात्रा स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥
वचसा तज्जयेद् बीजं वपुषा तत्सम्भ्यसेत् ।
मनसा तत्स्मेरन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति ॥

-जीवात्म-परमात्मनोर भेदः -

आत्मेति परमात्मेति जीवात्मेति विचारणे ।

त्रुयाणामैक्य संभूतिः आदेश इति कीर्तितः ।।

आदेश इति सद्वाणीं सर्वद्वन्द्वक्षयावहाम् ।

योगिनं प्रति वदेत् स वैतत्यात्मानमीश्वरम् ।।

-अजपा गायत्री -

हकारेण बहिर्यातिसकारेण विशेत पुनः ।

हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।।

अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्ष दायिनी ।

अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रभुच्यते ।।

-योगशास्त्र महिमा -

एतच्छास्त्रं महादिव्यं रहस्यं पारमेश्वरम् ।

सिद्धान्त सर्वसारस्य नाना सङ्केत निर्णयम् ।।

सिद्धानां प्रकटं सिद्धं सद्यः प्रत्यय कारकम् ।

आत्मानन्दकरं नित्यं सर्वसन्देह नाशनम् ।।

-व्यष्टि पिण्ड समष्टि पिण्ड एकत्व -

देहेडस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तदीप समन्वितः ।

सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकः ।।

ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहस्तथा ।

पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ।।

सृष्टि संहार कर्तारौ भ्रमन्तौ शशि भास्करो ।

नभोवायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ।।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।

मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्तते ।

जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्रसंशयः ।।

-षडंग-योग:-

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा
ध्यानं समाधिरेतानि योगांगानि वदन्ति षट् ।।
आसनेन रूजं हन्ति प्राणायामेन पातकम् ।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति ।।
मनो धैर्यं धारणया ध्यानाच्चैतन्यमभ्युतम् ।
समाधेर्मोक्षभाप्रोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम् ।।

-कुण्डलिनी शक्ति प्रबोधं -

कन्दोर्ध्वं कुण्डली शक्ति-रण्टधा कुण्डलाकृतिः ।
ब्रह्मद्वारमुखं नित्यं मुखेनाच्छाद्य तिष्ठति ।।
येन द्वारेण गन्तव्यं ब्रह्म स्थानम् नामयम् ।
मुखेनाच्छाद्य तद्द्वारं प्रसुप्ता परमेश्वरी ।।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता सह ।
सूचीवद् गुणामादाय ब्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया ।।
परिस्फुरद् भुजगाकारा पद्ममन्तु निभा शुभा ।
प्रबुद्धा वह्नियोगेन ब्रजत्यूर्ध्वं सुषमणया ।।
उद्घाटयेत् कपाटं तु यथा कुन्चिकयाहठात् ।
कुण्डालिन्या तथा योगी मोक्ष द्वारं प्रभेदयेत् ।।

-चक्राणि -

आधारं प्रथमं चक्रं स्वाधिष्ठानं द्वितीयकम् ।
तृतीयं मणिपूरारव्यं चतुर्थं स्यादनाहतम् ।।
पञ्चमन्तु विशुद्धतारव्यं आज्ञाचक्रन्तु षष्ठकम् ।
सप्तमन्तु महाचक्रं ब्रह्मरन्ध्रे महापथे ।।
चतुर्दलं स्यादाधारे स्वाधिष्ठाने तु षड्दलम् ।
नाभौ दशदलं पद्मं सूर्यासंब्या दलं हृदि ।।

कण्ठे स्यात् षोडशदलं भूमध्ये दिदलन्तथा।

सहस्रदलमारव्यातं ब्रह्मरंध्रे महापथे।।

-देहमध्यस्थ दशवायवः-

प्राणोऽपानः समानश्चोदान व्यानौ च वायवः।

नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनन्जयः ।।

हृदि प्राणो वसेन्नित्यं अपानो गुदमण्डले।

समानौ नाभिदेशे स्याद् उदानः कण्ठमध्यगः।।

व्यानौ व्यापी शरीरे तु प्रधाना पञ्चवायवः।

प्राणाद्याश्चात्र विख्याता नागाद्याः पञ्चवायवः।।

उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः।

कृकरः क्षुतकृञ्जेयो देवदत्तो विजृम्भणे ।।

न जहाति मृतं चापि सर्वव्यापि धनन्जयः।

एते सर्वासु नाडीषु भ्रमन्ते जीवरूपिणः।।

-पिण्ड सिद्धि वेषः -

शंख मुद्राधारणं च केशरोम प्रधारणम्।

अमरीपानममलं तथा मर्दनमुत्तमम् ।।

एकान्तवासो दीक्षा च संध्याजपममायया।

ज्ञानं भैरवमूर्तेस्तु तत्पूजा च यथाविधि ।।

शंखध्मातं सिंहनादं कौपीनं पादुके तथा।

अंगवस्त्रं बहिर्वस्त्रं कम्बलं छत्रमदभुतम् ।।

वेत्रं कमण्डलुञ्चैव भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम्।

कुयदितान् प्रयत्नेन गुरूवन्दन पूर्वकम् ।।

- सद्गुरु - महिमा -

सहजं स्वात्मसीवितिः संयमः स्वस्वीनग्रहः।

स्वोपायं स्वस्वीश्रान्तिः अद्वैतं परमं पदम्।।

तज्ज्ञेयं सद्गुरोर्वक्त्रान्नान्यथा शास्त्र कोटिभिः।।

असाध्याः सिद्धयः सर्वाः सद्गुरोः करूणां विना।
 अतः सद्गुरुः संसेव्यः सत्यमीश्वर भाषितम् ॥
 अनुबुभूषति यो निजविश्रमम्, स गुरुराद सरोरूहभाश्रयेत।
 तदनुसरणात् परम पदम् समरसीकरणं च न दूरतः।
 कथनात् शक्ति पातादा यद्वा पादाव लोकनात् ।
 प्रसादात्सद्गुरोः सम्यक् प्राप्यते परमं पदम् ॥
 वाङ्मात्रादाथ दूर पातात् यः करोति चतत् क्षणात्।
 प्रस्फुटं शाम्भवं वेद्यं स्वसंवेद्य परं पदम् ॥
 करणखण्ड पातेन छित्वा पाशाष्टकं शिशोः।
 सम्यगानन्द जनकः सद्गुरुः सोऽभिधीयते ॥
 किञ्च बहुनोक्तेन शास्त्रकोटि शतेन च।
 दुर्लभा चित्तविश्रान्ति बिंदा गुरुकृपां पराम् ॥
 दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम्।
 दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करूणां विना ॥

:: परिशिष्ट "स" ::

" गोरक्ष - चित्र - संग्रह

8- गो० ना० पृष्ठ - 147

9- सौवत् क्रिया विकरुणोदयचिद् विलासो विश्रान्तिमेव भजतां
स्वमेवीभाति। ग्रस्ते स्ववेग निचये पर्दापण्डमैक्यं सत्यं
भावेत्समरसं गुरू वत्सलानाम् ।

- सि०सि० प० 5/84

:: परिशिष्ट "ग" ::

- सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पत्रपत्रिकादि सूची -

पुस्तक का नाम	संस्करण	लेखक	प्रकाशक	संकेताक्षर
1- अमनस्कयोग	प्रथम	महायोगी गोरक्षनाथ	श्री गोरक्षनाथ मन्दिर गोरखपुर	अ०यो०
2- आत्म दर्शन	प्रथम	नारायण स्वामी	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली	आ०द०
3- आदर्श योगी	---	अक्षय कुमार वन्दोपाध्याय	श्री गोरक्षनाथ मन्दिर गोरखपुर	आ०यो०
4- कठोपनिषद्	बारहवीं	---	मोतीलाल जालान	क०उ०
5- गोरक्षनाथ	प्रथम	डा० नागेन्द्र नाथ उपाध्याय	नागरिप्रचारिणी सभा वाराणसी	गो०ना०
6- गोरक्षनाथ और उनका युग	प्रथम	डा० रंगेय राघव	राम लाल पुरी	गो०ना०पु०
7- गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह	प्रथम	सम्पादक राम लाल श्रीवास्तव	श्री गोरक्षनाथ मन्दिर गोरखपुर	गो०सि०स०
8- गोरख बानी	प्रथम	गोरक्षनाथ	" "	गो०बा०
9- गोरक्ष शतक	प्रथम	गोरक्षनाथ	" "	गो०श०

10- नाथ पंथ	---	डा0एस0पी0चन्दोला	भगवती चन्दोला	ना0प0
11- नाथ सम्प्रदाय	द्वितीय	डा0हजारी प्रसाद दिवेदी	नैवेद्य निकेतन वाराणसी	ना0स0
12- भारतीय संस्कृति एवं कला	तृतीय	डा0राज किशोर सिंह एवं डा0श्रीमति उषा यादव	विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा	भा0स0 एवं
13- भारतीय दर्शन प्रकाश	---	राधेश्याम शर्मा	साहित्य भण्डार मेरठ	भा-द-प्र-
14- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास	प्रथम	बी0एन0लीनया	लक्ष्मी नारायण अग्रावाल	भा0स0 तथा सं0वि0
15- महायोपी गोरखनाथ एवं उनकी तपःस्थली	प्रथम	सम्पादक रामलाल श्रीवास्तव	श्री गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर	म0गो0 एवं उ0 तपःस्थली
16- वेदान्त सार	तृतीय	सदानन्द योगीन्द्र	साहित्य भण्डार मेरठ	वे0स0
17- शब्दकल्पद्रुम	---	---	---	श0क0दु0
18- सिद्ध सिद्धान्त पदार्थ	प्रथम	गुरु गोरखनाथ	श्री गोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर	सि-सि-प-
19- सांख्य कारिका	प्रथम	आचार्य वाचस्पतिमिश्र	रतिरामशास्त्री	सा0का0
20- सारस्वत कुण्डलिनी महायोग	प्रथम	डा0जे0सी0भारतीय	निर्मोही बन्धु प्रकाशन सा-कु-म-	
21- हठयोग प्रदीपिका	प्रथम	योगीन्द्र स्वात्माराम	श्रीगोरखनाथ मन्दिर गोरखपुर	ह0प्र0

गो०ना०च०

22- श्री गोरखनाथ चरित्र प्रथम

डा० चमनलाल गौतम

श्री गोरखनाथ मन्दिर
गोरखपुर

23- श्री महन्त दिग्विजय नाथ प्रथम

:: पत्रिकारै ::

संकेताक्षर

सम्पादक

फ़ा०

ना०सन्देश

पुस्तक का नाम

योगी नरहरिनाथ

अखिल भारत वर्षिय नाथ

1- नाथ-सन्देश

समाज-दिल्ली

2- योग-वाणी

रामलाल श्रीवास्तव

श्री गोरखनाथ मन्दिर

नाथयोग साधना विशेषांक

गोरखपुर

यो०वा०

ना०यो०

सा०वि०

यो०वा०

सि०द०वि०

3- योगवाणी

"

"

"

"

4- योग वाणी

"

"

"

"

यो०वा०

गो०वि०

गोरख विशेषांक

:: परिशिष्ट "घ" ::

- प्रमुख मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र सूची -

- 1- ऊँ रे रुद्रायै नमः शरीरस्थान् सर्वान् रोगान् विद्रावय नाशय ऊँफद् स्वाहा।
सा 70 कु 0 म 0 - पृष्ठ-498
- 2- "ऊँ" कं कंकात्मिकामावाहयाभि कायजान् रोगान विनाशयतु"। अस्य मन्त्र खण्डस्य, न सम्पूर्ण मन्त्रस्य, सम्पूर्ण मन्त्रस्तु विशिष्ट कोल एवं प्रयोज्यः । एतन्तु शरीर रोग विनाशाय खण्ड रूपेण प्रयोक्तव्यः ।
वही पृष्ठ- 504
- 3- ऊँ चन्द्रो मे चान्द्रभासान् रोगान पहरतु। औषधिनाशाय वै नमः। ऊँ स्वात्म सम्बन्धिनः सर्वतः सर्वरोगान् शमय शमय तत्रैव मातय मातय। शक्तिं चोभ्दावयोभ्दावय। इति।
वही- पृष्ठ- 508
- 4- ऊँ नमोऽस्तु दिवाकराय अग्नि तत्त्व प्रवर्धकाय शमय शमय शोषयण अग्नि तत्त्व समतां कुरु कुरु ऊँ ।
वही- पृष्ठ- 509
- 5- ऊँ महाशक्तिं आराधयामि सा मे शक्तिं प्रसीदतु, च चलो मानसं स्थिरतां उपनयतु, स्थिरतामुपनयतु, स्थिरतामुपनयतु। इत्येतत् वारत्रयेण प्रोचार्य सार्विको मन्त्र प्रयोगः।
वही- पृष्ठ- 518

- 6- ऊँ तामाराधययाभि महालायां मनो मे याः लयतां नयति। सा सर्वदा अस्य भद्रं करोति।
अस्य मन्त्रोच्चारणं काले काले सावकाशे च करणीयम्। अनेनापि सुस्थिरमार्गमिष्यति। सा
च अनुभूति परा भविष्यति। कल्याण प्रदा च भविष्यति। वही- पृष्ठ- 523
- 7- ऊँ महाशक्त्यै नमः मनसश्चा चत्ये विनाशय, वारय, वारय, निवारय, निवारय, त्वामावृणोमि
स्थिरं तत् कुरु कुरु स्वाहा। वही- पृष्ठ- 527
- 8- ऊँ चित्तात्मिकां महाचिंतिं चित्तस्वरूपिणीं आराधयामि, चित्तजान्, रोगान् शमय ठं ठं ठं
स्वाहा, ठं ठं ठं स्वाहा।" अस्य मन्त्रस्य प्रयोगेण पिचिस्तजा दोषाः विनश्यन्ति। अस्य मन्त्रस्य
प्रयोगः रात्रौ शयनकाले शय्यायां गतेन केनापि प्रकारेण प्रोच्चारणीयं मन्त्र पीठिका रथा।
वही- पृष्ठ- 539
- 9- ऊँ तं पं दिव्य रूपं दिव्य रूपं या धारयति सा धारा प्रसीदतु, तत्र स्थाश्चितजाः रोगाः
विनश्यतु, इति मन्त्र कायस्थ प्रयोगस्तदैव कर्तव्यः यदा सर्वतोभावेन गति विच्छेदो भवेत्।
वही- पृष्ठ- 544
- 10- " ऊँ सर्व भूत प्रिया सर्वत्र विचरण शीलां सवितुः शक्तिं आवाहयामी। सा मे बुद्धिं निर्मला
करातु ऊँ सं सं सं। सं सं सं। सं सं सं। अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः शयनावसरे शयनोत्थानावसरे
च वारमेकं करणीयः। अस्य मन्त्रोच्चारणेन कालान्तरेण सवितुः महाशक्ति स्वयमेव अन्यकार
स्वरूपकां भ्रमात्मकतां विनाशयिष्यति। वही- पृष्ठ- 559

- ११- ऊं सावित्री आवाहयामि, सा मे बुद्धिं सशेषयतु। अस्य प्रयोगः मध्याह्ने सप्त पंचकेन च करणीयः। अनेनापि बुदे निर्मलत्वं प्रत्यागच्छति। वही- पृष्ठ- 559
- १२- ऊं सौ सौ सौ महासरस्वती बुद्धिं मे निर्मला करोतु। वही- पृष्ठ- 560
- १३- ग्री ग्री ग्री धारणाख्या प्रसीदतु, निर्मलत्वं बुदेश्च प्रयच्छतु। यं लं सं। यं लं सं। वही- पृष्ठ- 560
- १४- " ऊं शैरवांक निलयां भकात्मिकां नमामि, बुद्धि विभ्रमो मे नश्यतु ऊं ऊं ऊं। अस्य मन्त्रस्य प्रयोगस्तदैव कर्तव्यः यदा कोयसमन्विता बुद्धि सम्भवेत्। वही- पृष्ठ- 562
- १५- ऊं क्रीं क्रीं क्रीं, लं लं लं, बुद्धिदोषान् विनाशय, विनाशय, निर्मला कुरु ऊं फट स्वाहा। वही- पृष्ठ- 570
- १६- ऊं कवी हिरण्यात्मिका हिरण्यां हरिणीभाराथयामि। बुद्धिजान् दोषान् विनाशय, शमय, समय, विद्रावय, ऊं ऊं ऊं। वही- पृष्ठ 573
- १७- हकारेण बहिर्गतिं सकारेण विशेष पुनः ।
 "हसंहसेत्यमुं" मन्त्र जीवा जयति सर्वदा।।
 अजयानाम् गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
 अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वं पापै प्रमुच्यते।।

गो०श० पृष्ठ- 9

श्लोक-42, 44

:: परिशिष्ट "इ" ::

- नाथ योगी महन्तो की सूची -

नाम	मंदिर	स्थान	राज्य
1-	श्री महन्त अवेधनाथ जी	गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर	उ०प्र०
2-	श्री महन्त गोविन्द प्याजी	मंगलूर	कर्नाटक
3-	श्री महन्त गोविन्दनाथ राजगुरु	चण्डीगढ़	पंजाब
4-	श्री महन्त गोपाल नाथ	श्रीनगर	११ गढ़वाल
5-	श्री महन्त चेतार्ई नाथजी		कुश्क्षेत्र
6-	श्री महन्त गोष्ठ विहारी देव नाथजी		प० बंगाल
7-	श्री महन्त त्रिलोकी नाथजी	बेरानल	गुजरात
8-	" " नरहरि नाथ जी	नेपाल	
9-	" " नियम नाथ जी	दाङ	नेपाल
10	" " नृपेन्द्र कुमार नाथजी	कटिहार	बिहार
11-	" " दारिका नाथजी	परीदाबाद	हरियाणा
12-	" " फणीन्द्र नाथ, नाथ		बंगाल
13-	" " बुदुनाथ जी	श्री नगर से नीचे	

14-	"	बलदेव नाथजी	कपाली भैरव	हिरद्वार	उ०प्र०
15-	"	भभूल नाथ जी	गोरखनाथ मन्दिर	रमेशनगर	दिल्ली
16-	"	रामनाथ शास्त्री	रमेशनगर	कदली	
17-	"	राजा सोम नाथजी	गोगीश्वर मठ	महाकालपार	कटक
18-	"	स्वामी शिवनाथजी	केयार बैक मठ		हरियाणा
19-	"	शंकर नाथ जी	पयालकुटी	वनारस	उ०प्र०
20-	"	सोमनाथजी	गोरख टिस्ता	आगरा	उ०प्र०
21-	"	शोभानाथ जी	पंचमुखी महादेव	तुलसीपुर	गोण्डा
22-	"	शान्ति नाथजी		अखलबोहर	रोहतक
23-	"	श्रेयोनाथ जी	श्रीमत्यनाथ अड्डा	अम्बाला	पंजाब
24-	"	श्रदानाथ जी	गोरख टिस्ता		राजस्थान
25-	"	हनुमान नाथ	अमृतनाथाश्रम		
26-	"	"	हिंगलज		
27-	"	"	सिक्किम चंगा चिलिंग का मन्दिर		
28-	"	"	पशुनाथ मन्दिर		

श्री महन्त

29-

30-

31-

32-

33-

34-

35-

36-

37-

38-

39-

40-

41-

42-

43-

44-

45-

सवारी कोट सन्त नाथ मन्दिर
उपलनोकोट गोरक्षनाथ का मन्दिर
अल्मोड़ा नन्दी देवी के पास धर्मनाथ मन्दिर

चुनार भवृहरि मन्दिर

झूँसी प्राचीन केन्द्र

नाथ पन्थी मन्दिर

गोरखनाथ मन्दिर

गुग्गा मन्दिर

औधड़ो का मन्दिर

गोरक्ष टिल्ला

तुलसीपुर 30प्र0

स्याल कोट

सुल्तान पुर

किराना पंजाब

नमक पहाड़ निकट पंजाब

सिन्धुनगर घट्ट

नाथ पन्थी मन्दिर कच्छ भुज धीनोधर

गोरखनाथ मन्दिर

गोरखनाथ मन्दिर

गोरखनाथ पहाड़ी

गोरखनाथ-मछन्दर

त्रयम्बक मठ

सतपुड़ा की पहाड़ी खानदेश

सतार वल्लीसराला

अहमदाबाद उत्तर मे

झरवोनटिल्ले धान

नासिक

46-	"	भर्तृहरि मन्दिर	उज्जैन
47-	"	नाथपंथी योगी स्थान	पाह्युन्नी बम्बई
48-	"	महानन्द	हर्गली बम्बई
49-	"	गोरखवंशी योगी स्थान	दमदम-कलकत्ता
50-	"	अलखनाथ मन्दिर	पुरी
51-	"		दक्षिण काजली प्रदेश
52-	"	अंगना	उदयपुर
53-	"		आदिनाथ बंगाल
54-	"	कद्रीमठ	मद्रास
55-	"	गम्भीर मठ	पूना
56-	"	गोरखनाथ टिल्ला	सारमौर स्टेट
57-	"	गोरक्षक्षेत्र	गिरनार पर्वत
58-	"	चन्द्रनाथ	बंगाल
59-	"	चमूलगिरिमठ	मद्रास
60-	"	नीलकंठ महादेव	आगरा

61-	श्री महन्त	नीहर मठ	बीकानेर
62-	"	पीरसोहर	जम्मू
63-	"	भृङ्गरि गुफा	ग्वालियर
64-	"	भर्तृहरि गुफा	गिरनार
65-	"	मंगलेश्वर	आगरा
66-	"	महानाद मन्दिर	वर्दवान
67-	"	महामन्दिर मठ	जोधपुर
68-	"	योगीगुहा	दीनाज पुर
69-	"	योगी भवन	बगड़ा
70-	"	योगी मठ	बंगाल
71-	"	श्रीनाथ मन्दिर	मदिनीपुर
72-	"	हाड़ी भरंगनाथ मन्दिर	उदयपुर
73-	"	हिगुंजा मठ	मैसूर
74-	"	पातजल योगाश्रम	जयपुर
75-	"		हरिद्वार

नाथ निरंजन की आरती

नाथ निरंजन आरती साज ।
गुर के सबहुं भालरि बाजै । टेक ।
अनहद नाद गगन में गाजै ।
परम जोति तहां आप विराजै । १ ।
दीपक जोति अषंडत बाती ।
परम जोति जगै दिन राती । २ ।
सकल भवन उजियारा होई ।
देव निरंजन और न कोई । ३ ।
अनंत कला जाके पार न पावै ।
संघ, मृदंग, धुनि बेनि बजावै । ४ ।
स्वाति बूंद लै कलस वंदाऊं ।
निरति सुरति लै पहुष चढ़ाऊं । ५ ।
निज तत नांव अमूरति मूरति ।
सब देवां सिरि उदबुदि सूरति । ७ ।
आदिनाथ नाती मछेन्द्रनाथ पूता ।
आरती करै गोष औधूता । ७ ।
[गोरखबानी पद-६२]

